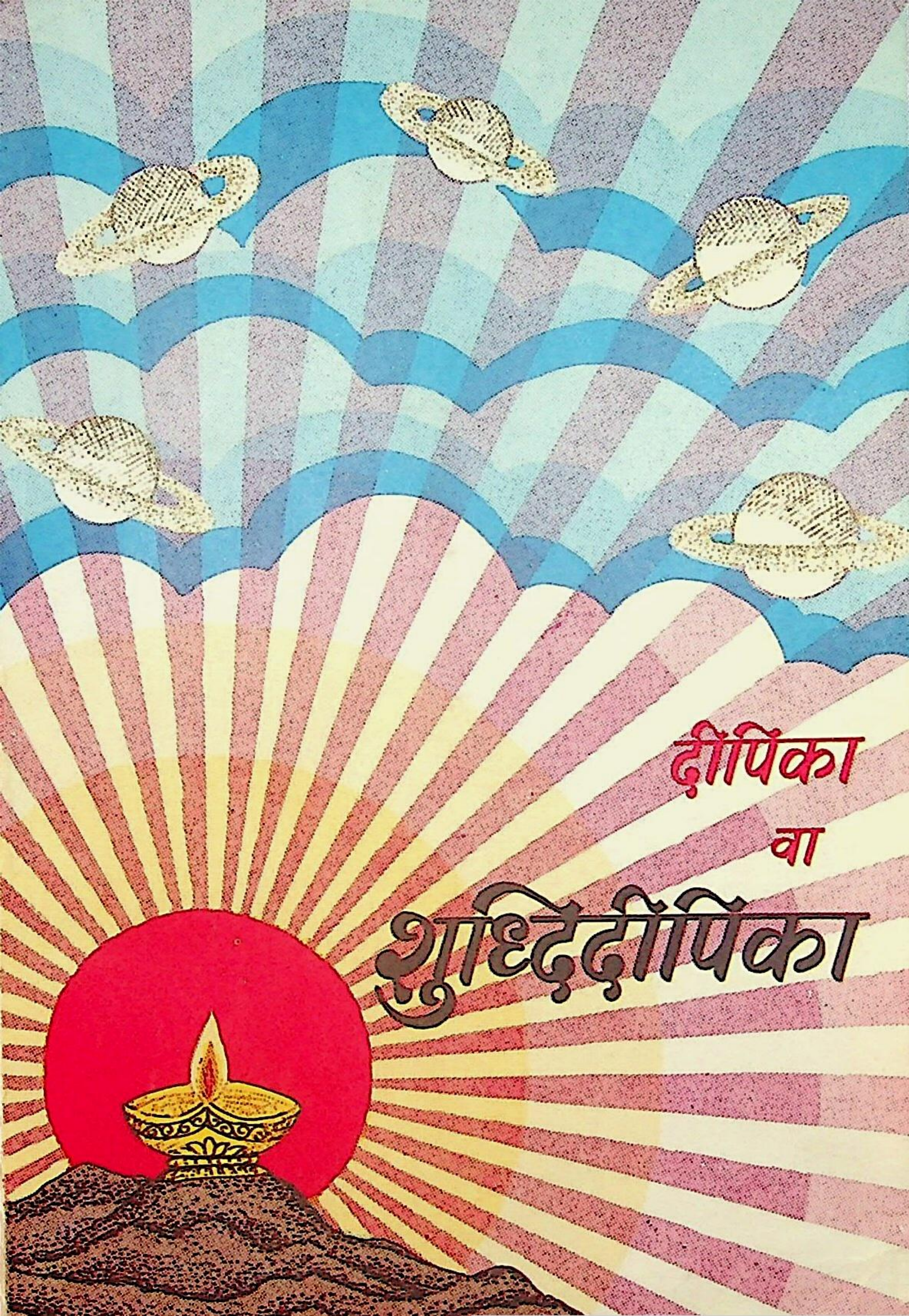

दीपिका
वा
शुध्दिदीपिका

॥ श्रीः ॥

दीपिका

वा

शुद्धिदीपिका

(ज्योतिःशास्त्रम्)

महामहोपाध्यायश्रीश्रीनिवासप्रणीत

मुरादाबादस्थमिश्रसुखानन्दसूरिसूनु-
पंडितकन्हैयालालमिश्रकृत-

हिन्दीटीकासहित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई

संस्करण : फरवरी २०१४, संवत् २०७०

मूल्य १०० रुपये मात्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http;//www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate.
Pune -411 013.

समर्पण

श्रीमान् अखण्डप्रतापशाली सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी करकमलेषु

मान्यवर महोदय !

श्रीमानकी उस गुणग्राहकताने-जिसके मकरन्दसे-समस्त भारतके समस्त गुणीजन झौर झौर कर अपने गुणको श्रीमान्पर न्योछावर करदेते हैं, मेरे हृदयमंदिरमेंभी ऐसा स्थान किया है किं जिसका सांगोपांग वर्णन होना लेखनीकी शक्तिसे बाहर है। कविगणोंके उस कथनको, कि सहस्रमुख शेषजीभी श्रीमान्‌के गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहींहै श्रीमान्‌की गुणग्राहकताने चरितार्थ करके दिखायाहै। भारतवर्षके नगर नगर और ग्राम ग्रामसे सहस्रों विद्वान् और गुणी जन श्रीमान्‌की प्रशंसा करते हैं, परन्तु यथावत् फिरभी नहीं करपाते। अत्युक्ति नहीहै, श्रीमान्‌का सरलस्वभाव-विनीत वार्त्तालाप और दीन तथा दुखियोके दुःखसे कातरता-संसारमें ऐसा कौन है जिसके हृदयक्षेत्रमें अलौकिक प्रेम और भक्तिका प्रादुर्भाव नहीं करती।

इस अनुग्रहीतपर श्रीमान्‌की जो दया और श्रद्धा रहतीहै-उसका यथावत् धन्यवादभी मुझसे नहीं बनता।

प्रेमकी डोरसे बँधाहुआ दूर देशमें निवासकरतेभी अपनेको श्रीमान्‌केनिकटहीं अनुभव करताहूं, यह केवल मात्र श्रीमान्‌के दयातन्त्रके प्रयोगका फल है।

इस दुर्दशाके समय जब भारतवर्षमें नानाप्रकारके अमूल्य ग्रंथ विना मांझीकी नावके समान अविद्याके समुद्रमें निमग्नहुए जारहेथे-श्रीमान्‌ने अपने इस जगद्विख्यात "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस को स्थापित कर दीन-भारतकी इस टूटी फूटी पूँजीकी रक्षा करदीहै, जीर्ण ग्रंथोंका पुनरुद्धार करनेके अतिरिक्त श्रीमान्‌ने समयानुसार यथासंभव पुरस्कार देदेकर भाषा और संस्कृत साहित्यके नवीन कीटोंको अनुपम-पराग बनादिया है। देखाजाताहै कि देशमे अब अधिक सज्जनोंको पुस्तकोंके पढने

और लिखनेका उत्साह बढ गया है और इस उन्नतिका विशेष कारण श्रीमान्‌का ''यंत्रालय'' और ''श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार'' पत्रहै॥ स्थान स्थान में छोटे बडे-सबके पास एक न एक पुस्तक श्रीमान्‌के पुस्तकालयकी मिलती है, यह सत्यता का प्रत्यक्ष-प्रमाण है कि आजतक इस यंत्रालयकी पुस्तकसे किसीको अप्रसन्न होता नहीं देखा और न सुना है। पुस्तकोंका आकार, कागज, अक्षर, जिल्दबँधी सबही ऐसी मनोहर होती है कि बडे स्नेहसे मनुष्य उसको देखते है।

ज्योतिषशास्त्रका जैसा उद्धार श्रीमान्‌ने किया है और नानाभाँतिके संस्कृत तथा भाषाके ग्रंथ प्रकाश कर सर्व साधारणको सुगमता-कीहै वह सराहनी-यहै,-अतएव यह ''शुद्धिदीपिका'' भी जो श्रीश्रीनिवासदासजीकी --- ज्योतिषविद्याकी चमत्कृत् बुद्धिका एकमात्र उदाहरण है, श्रीमान्‌के करकमलोंमें समर्पित करताहूं और स्वीकार करलेनेकी आशासे कोटिशः धन्यवाद प्रदान करता हूँ।

''शुद्धिदीपिका'' भी श्रीमान्‌की ग्रंथमालामें सम्मिलित होकर शुद्ध हुई। इति।

फाल्गुन शुक्ल ४ भौमवार
सम्वत् १९६२
२७-२-०६

ज्योतिषविद्याका लघुसेवक-
कृपापात्र-कन्हैयालाल मिश्र।
मुरादाबाद-सिटी.

भूमिका ।

प्रियपाठकवृन्द!

आपको इस ग्रंथ का परिचय कराने से पूर्व मैं आपकी सेवा में यह कहना आवश्यक समझता हूं कि, ज्योतिषशास्त्र क्या वस्तु है? भारतवर्ष सरीखे देश में इसका प्रचार क्यों हुआ? और आधुनिक विद्वन्मंडली तथा विद्याहीन समाज की इसके विषय में क्या सम्मति है?

अपनी उन्नतिशील अवस्था में भारतवर्ष संसार के समस्त देशों में सर्वोपरि माना गया है, उस गौरवपूर्ण काल में भी भारतवर्ष के त्रिकालज्ञ मुनि और ऋषिगण उन्नति के एक मात्र कारण धर्म को भूल नहीं गये थे, उन्होंने सरल और स्वाभाविक बातों में भी न्यूनाधिक धर्म का संयोग रखा था, और यही कारण है कि कैसे ही दुर्दिन आने पर और नाना प्रकार के कष्ट भोगने पर भी धनहीन, विद्याहीन और बलहीन होकर भी आर्य संतान धर्म के मूलमंत्र को अपने हृदय से निकाल नहीं सकी है।

वह स्वाभाविक बात है और प्रत्येक व्यक्ति को इसका पूर्ण अनुभव है कि नीम के वृक्ष के नीचे बैठने से शीतल पवन का सेवन होता है और उसकी गंध शरीर को स्वास्थ्यकर है। गूलर के वृक्ष की छाया का आश्रय लेने पर नशीली गंध आती है: स्वच्छ पत्थर की चौकी पर बैठने से सुख प्राप्त होता है, मलीन वस्त्र रोग करनेवाले होते हैं, इत्यादि। नित्य की घटनाओं से क्या पंडित क्या अबोध सभी पुरुष अनुभवी हैं, किंतु जो वस्तु परोक्ष में है, जिनका ज्ञान असाधारण है, जिनको गुण शत और सहस्र वर्ष के मनन करने से भी पूर्णतया स्पष्ट नहीं होता; उन अगम्य वस्तुओं के यथार्थ ज्ञान की क्रिया का नाम "ज्योतिष-शास्त्र" है, जिस प्रकार निकटवर्ती पदार्थ अपना दोष और गुण प्रकट करते हैं–उसी भाँति दूर स्थित पदार्थों का गुण और दोष भी अपना प्रसार करता है, पृथ्वी सूर्य चद्रमा आदि ग्रह विद्वानों के अनुभव से सिद्ध हुआ है कि, पृथक् पृथक् पिंड हैं, और यह सूर्य मण्डल में एक दूसरे की आकर्षण शक्ति से स्थित हैं, उसी आकर्षण शक्ति ने इनमें अनेक प्रकार की गति उत्पन्न की है, जिसके द्वारा यह चमकते हुए तारागणों से भरा हुआ आकाश मण्डल ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर बराबर चक्र के समान नाचता है।

बड़े बड़े पाश्चिमी विद्वानों ने भी यही निश्चय किया है कि, सूर्यादिक आकाश स्थित पिंड है और परस्पर आकर्षण करने से यह सब चलायमान होते हैं और अपनी अपनी पृथक् पृथक् गति के अवलम्बन से आकाश में चक्र लगाते हैं।

त्रिकालज्ञ विद्वानों के सहस्रों वर्ष के अहर्निश परिश्रम से इन गगनविहारी पिण्डों की यथार्थ गति का ज्ञान हुआ है। इनकी किस समय में कहा स्थिति होगी? उस स्थिति से एक दूसरे पिंड पर क्या प्रभाव होगा? उस पिण्ड के प्राणी उस प्रभाव का क्या फल पावेंगे? पृथक् पृथक् व्यक्ति उस फल के कितने भाग का अधिकारी है? इन्हीं सब प्रकरणों के सविस्तर चिट्ठे का नाम "ज्योतिषशास्त्र" है। संसार में एक के आधार से दूसरे का आधार है। उसी भाँति ज्योतिषशास्त्र का समस्त भण्डार गणितशास्त्र के आधार से चलता है। अनुभवी आचार्यगणों ने उसी गणित से निकले हुए फल को फलित के नाम से पुकारा है और उस फल के अशुभ दोषों को निवारण करने के लिये जप और दान निर्माण किये हैं। धर्मधुरीण भारत के आचार्यगणों ने धर्म की श्रेष्ठता स्थापन करने को ही ज्योतिष के शुभाशुभ फल के निमित्त जप दानादि क्रिया का प्रचार किया है।

उस सच्चिदानन्द की प्रधान शक्ति माया से पूरित संसार में प्राणीगण सदैव सतृष्ण रहते हैं। भारतवर्ष के बुद्धिमान् और विद्वानों ने लोभाकर्षित मायाच्छन्न रहते भी असत्य का मार्ग ग्रहण नहीं किया और इस यथार्थवादी ज्योतिषशास्त्रको अपना भूत भविष्यत् वर्तमान का साक्षी बनाया; और इसमें विश्वास किया आज तक भारतवर्ष में इस विद्या का बड़ा सत्कार होता है। विद्वन्मण्डली गणित द्वारा प्राप्तफल को विश्वासपूर्वक यथार्थ मानती है; और विद्याहीन अपण्डित अपने गुरु:पुरोहित पण्डित अथवा मिश्र को अलौकिक सिद्ध प्रतीत कर इसमें विश्वास करते हैं। अन्य देश के विद्वान् भी इसके सत्य होने में विरोध नहीं करते, बरन् भविष्यत् के अमगल से दु:खी तथा शुभ से प्रसन्न होना बुद्धिमानी न जानकर इस ओर ध्यान नहीं देते।

भारतवर्ष में जहां इस विद्या में विश्वास माना गया है। इस विद्या के अनेक उत्तमोत्तम ग्रंथ बने हैं और नाना प्रकार की टीका उन पर होकर सर्वसाधारण की सुगमता का मार्ग स्वच्छन्द किया जा रहा है। इसी विचार ने मेरा ध्यान भी इस ओर को आकर्षित किया, अत एवं यह 'शुद्धिदीपिका' सेवा में अर्पण है।

इसमें दीपिका के मूलश्लोक और प्रत्येक श्लोक का सरल भाषानुवाद है। इसमें गणित की कोई विशेष क्रिया न होने पर भी ग्रहों का आद्योपान्त विस्तार पूर्वक वर्णन किया है, उनके फलादेश को कथन किया है और यथावसर उनके अशुभ ग्रहों का यथावत् समाधान दान तथा जप बताया है।

जिनके उदय होने से जगत् के प्राणी मात्र परमानंद उपभोग करते हैं; जिनके अस्त होने पर संपूर्ण संसार अंधकार से ढ़क जाता है उपरांत ब्राह्मणगण जिनके तेजोपुंज की आराधना करके चतुर्वर्ग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) का फल प्राप्त करते हैं उन्हीं भगवान् आदित्य (सूर्य) की कृपा से पण्डित श्रीनिवासकृत "दीपिका" ग्रंथ का अनुवाद समाप्त हुआ। दीपिका ग्रंथ जैसा जटिल है अनेक सहृदय पाठक इसको जानते हैं मेरी इच्छा थी कि ग्रंथ का अविकल अनुवाद किया जाय, यथाशक्ति यत्न में भी त्रुटि नहीं हुई है किंतु तथापि

जिस जिस श्लोक में टीका की सहायता विना दंभस्फुट नहीं हुआ है, उस उस श्लोक में कुछेक विलक्षणता भी घटित हो सकती है। अनुवाद के दोष गुण के विचार का भार निर्मत्सर पाठकगणों के प्रति ही न्यस्त रहा। जो हो, प्रकाशक श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदय ने दीपिका ग्रंथ के अनुवाद करने का मुझको अनुरोध किया मैंने पण्डित चद्रकांत न्यायरत्न महाशय का स्वलिखित दीपिका ग्रंथ अन्यान्य पुस्तकों से मिलाकर पुस्तकांतर के जिन सव श्लोकों में पाठांतर दिखाई दिया है उसको यथास्थान में संयोजित कर वह पुस्तक आदर्श बनाय अनुवाद कार्य शेष किया है। दीपिका के हेडिङ्ग श्लोकों के अंत में थे पाठकों के सुभीते के लिये वह सव श्लोकोंके पूर्व में दिये गये हैं। संस्कृत टीकाकार गोविन्दानंद कविकङ्कण भट्टाचार्य ने ग्रंथ का नाम "शुद्धिदीपिका" रखा है उसी के अनुसार प्रति पृष्ठ के ऊपर 'शुद्धिदीपिका' 'भाषाटीकासमेत'। इस प्रकार हेडिंग दिया गया है। पाठकगण शुद्धिदीपिका ग्रंथ का नाम देखकर प्राचीन ज्योतिष रत्नदीपिका ग्रंथ के प्रतिहतादर न हों। द्वितीय टीकाकार राघवाचार्य कर्तृक यह ग्रंथ दीपिका संज्ञा से अभिहित हुआ है। स्मार्त्त रघुनंदन भट्टाचार्य इत्यादि ग्रंथकारों ने भी अपने अपने ग्रंथ के स्थान स्थान में इस ग्रंथ को दीपिका के नाम से लिखा है अत एवं टाइटल पेज पर 'दीपिका वा शुद्धिदीपिका' इस प्रकार मुद्रित हुआ है।

उपसंहार में मैं अपने परमप्रिय मित्र–स्वैर जिला अलीगढ़ निवासी पण्डित श्रीवनवारीलालजी पचौरी को अनेकानेक धन्यवाद प्रदान करता हूं कि जिन्होंने इस पुस्तक के अनुवाद करने में मेरी वहुत कुछ सहायता की है और सदैव इसी प्रकार कृपा करने का वचन दिया है आशा है कि, वह अपने वचन को सदा स्मरण रखकर मुझ पर इसी प्रकार कृपा दृष्टि बनाये रहेंगे।

अव यह ग्रंथ सब प्रकार से अलंकृत कर अपने परम शुभचिंतक श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस के मालिक मुम्बई को सर्वसत्व सहित समर्पण कर दिया है जो अनेक प्रकार के दान सन्मान से नित्य हमारा उत्साह बढ़ाते रहते हैं।

यदि पाठकगणों को इसके द्वारा कुछ भी लाभ हुआ तो परिश्रम सफल समझा जायेगा।

सज्जनों का कृपापात्र—

फाल्गुन शुक्ल ४ भौमवार
सम्वत् १९६२
२७-२-६

कन्हैयालाल मिश्र।

(दीनदारपुरा) मुरादाबाद-सिटी

॥ श्रीः ॥

शुद्धिदीपिकाकी विषयानुक्रमणिका

विषय.	पृष्ठ.
प्रथमोऽध्यायः	
मंगलाचरणम्	१
ज्योतिषशास्त्रप्रशंसा	२
दैवज्ञप्रशंसा	२
सूर्याद्युत्पत्तिः	२
कालनरोत्पत्तिः	३
अजादिराशिभिः कालनरस्यांगविभागः	३
राशिकथनम्	३
राशिस्वरूपकथनम्	४
नक्षत्रराशिविभागः	३
राशिनामधिष्ण्याद्देवताकथनम्	५
द्विपदचतुष्पदराशिकथनम्	५
कीटसरीसृपराशिकथनम्	६
ग्राम्यारण्यराशिकथनम्	६
जलजराशिनिर्णयः	६
मेषादिराशीनां वर्णकथनम्	७
राशीनां क्रूरसौम्यादिविवेकः	७
सामान्यतो राशिसंज्ञा	८
मेषादीनां विशेषसंज्ञाकथनम्	८
वेशिस्थानादिकथनं लग्नहोराकथनञ्च	८
राश्यधिपकथनम्	९
रव्यादेरुच्चनीचकथनम्	९
मूलत्रिकोणकथनम्	११
मूलत्रिकोण्यंशकथनम्	११
नवांशवर्गोत्तमकथनम्	११
होराद्वादशांशद्रेष्काणव्यवस्था	१२
जलदहनमिश्रद्रेष्काणव्यवस्था	१३
सौम्यरूपद्रेष्काणव्यवस्था	१३
फलपुष्पयुतरत्नभाण्डान्वितद्रेष्काणव्यवस्था	१४
रौद्रद्रेष्काणव्यवस्था	१४
उद्यतास्त्रद्रेष्काणव्यवस्था	१४
सर्पनिगडद्रेष्काणव्यवस्था	१४
व्याडद्रेष्काणव्यवस्था	१५
पाशधारिपक्षिद्रेष्काणव्यवस्था	१५
त्रिंशांशविवेकः	१५
षड्वर्गविवेकः	१६
राशीनां दिग्विवेकः	१६
पृष्ठोदयादिविवेकः	१६
पत्यादियोगादिना राशिबलाबलम्	१७
केन्द्रादिस्थानबलम्	१७
राशीनां दिग्बलम्	१८
राशीनां कालबलम्	१९
अंशबलाबलविवेकः	१९
राशीनां वश्यावश्यकथनम्	१९
राश्युदयकथनम्	२०
भावविवेकः	२१
अरात्यादिभावापवादः	२२
उपचयविवेकः	२२
केन्द्रादिविवेकः	२२
त्रिकोणादिविवेकः	२३

विषय.	पृष्ठ.
लग्नाद्दशमादिस्थनामानि	२३
द्वितीयोध्याय:	
कालनरस्यात्मादिव्यवस्था ग्रहाणां नृपत्वादिव्यवस्था च	२४
आत्मादिग्रहाणां नृपत्वादिग्रहाणां च बलाबलवशात् पुरुषस्यात्मादीनां बलाबलत्वानिर्णयो नृपत्वादि निर्णयश्च	२४
ग्रहाणां वर्णकथनम्	२५
ग्रहाणां विशेषसंज्ञाकथनम्	२५
पापसौम्यविवेक:	२६
दिक्पतिविवेक:	२६
जात्यधिपकथनम्	२६
वेदाधिपकथनम्	२७
पुरुषाद्यधिपकथनम्	२७
ग्रहाणां नैसर्गिकमित्रकथनम्	२७
सूर्यादिक्रमेण नैसर्गिकशत्रुकथनम्	२८
तत्कालमित्रारिविवेक:	२८
ग्रहाणां दृष्टिस्थाननिर्णय:	२९
ग्रहाणां स्थानबलम्	२९
स्थानबलात श्रेष्ठमध्याल्पत्वनिर्णय:	३०
ग्रहाणां दिग्बलम्	३०
ग्रहाणां चेष्टाबलम्	३१
चन्द्रबलम्	३२
ग्रहाणां ऋतुबलम्	३३
ग्रहाणां प्रहरबलमर्द्धप्रहरबलश्च	३४
ग्रहाणां निसर्गबलकथनम्	३४
माण्डव्योक्तगोचर:	३५
वराहोक्तगोचरोऽयम्	३५
गोचरशुभाशुभकालनिर्णय:	३६
गोचरापवाद:	३७
अथाष्ट्रवर्गस्तत्र सूर्यस्य	३७
चन्द्रस्य	३८
कुजस्य	३९
बुधस्य	४०
गुरो:	४१
शुक्रस्य	४२
शने:	४२
लग्नाष१वर्ग:	४३
राहोरष्टवर्ग:	४४
पुस्तकान्तरे	४५
चन्द्रबलात् ग्रहशुद्धि:	४७
ग्रहाणां त्रिविधशान्तिकथनम्	४८
ग्रहस्नानम्	४८
ग्रहपूजा	४८
नैवेद्यविधि:	४९
चित्रौदनकथनम्	५०
शान्त्यर्थ औषधिधारणम्	५०
धातुद्रव्यधारणम्	५१
ग्रहसमिध:	५१
ग्रहहोम:	५२
दक्षिणाविवेक:	५२
तृतीयोध्याय:	
चन्द्रताराशुद्धिप्रशंसा	५३
चन्द्रशुद्धि:	५३
चन्द्रस्य वामवेधेन शुद्धि:	५३
चन्द्रस्य विशेषशुद्धि:	५४

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
पक्षादौ चन्द्रशुद्धिकथनम्	५५	देशान्तरे वाराधिकार:	६६
चन्द्रदोषशान्तये स्नानम्	५५	विशषतो वारफलम्	६७
चन्द्रदोषोपशांतये देयद्रव्याणि	५५	तिथीनां नामानुरूपफलकथनम्	६८
तारानिर्णय:	५६	अवमत्र्यहस्पर्शविवेक:	६८
पञ्चमादिताराफलम्	५६	त्र्यहस्पर्शनिन्दा	६९
ताराप्रतीकार:	५६	नक्षत्रदेवताकथनम्	६९
नाडीनक्षत्राणि	५७	अशुभनक्षत्रगण:	७१
नाडीनक्षत्रशुभाशुभकथनम्	५७	ऊर्ध्वाननक्षत्रगण:	७१
अन्यच्च	५७	पार्श्वाननक्षत्रगण:	७२
नाडीनक्षत्रफलम्	५९	अधोमुखनक्षत्रगण:	७२
निरुपद्रवसोपद्रवनाडीनक्षत्रकथनम्	६०	स्थिरनक्षत्रगण:	७२
नाडीनक्षत्रशान्ति	६०	तीक्ष्णनक्षत्रगण:	७३
ग्रहणगतनाडीनक्षत्रफलम्	६१	उग्रनक्षत्रगण:	७३
ग्रहणगतनाडीनक्षत्रस्नानम्	६१	क्षिप्रनक्षत्रगण:	७३
नाडीनक्षत्रेण पापग्रहसंक्रमणफलम्	६१	मृदुनक्षत्रगण:	७३
नाडीनक्षत्रेण पापग्रहसंक्रान्तिप्रतीकार:	६१	मृदुतीक्ष्णनक्षत्रगण:	७४
विषुवादिसंक्रांतिनिर्णय:	६२	चरनक्षत्रगण:	७४
रविशुद्धि:	६२	एकदैवोग्रादिसप्तनक्षत्रनिर्देश:	७४
रविशान्तिस्नानम्	६२	पुनक्षत्रगण:	७५
जन्मनक्षत्रेण रविसंक्रमणफलम्	६३	नित्ययोगा:	७५
जन्मर्क्षे रविसंक्रान्तिस्नानम्	६३	निषिद्धयोगानां वर्जनीयांशनिर्णयो विहितानां नामानुरूपफलनिर्णयश्च	७६
स्वनक्षत्रेण जन्मदिवसफलम्	६३	त्र्यमृतयोग:	७६
अनृक्षयोगेन शनिभौमयोर्वासरे जन्मदिनफलम्	६४	अमृतयोगकथनम्	७७
जन्मनक्षत्रेण भौमशनिवारफलम्	६४	अमृतयोगप्रशंसा	७८
जन्मदिनशांति:	६४	पापयोगकथनम्	७८
सर्वोषधि:	६५	सिद्धिदग्धपापयमघण्टयोगा:	७९
चतुर्थोऽध्याय:		उत्पातादियोग:	८१
वारगुणा:	६६	क्रकचयोग:	८१

विषय.	पृष्ठ.
यमघण्टमृत्युयोगादिनां त्याज्यकालनिर्णय:	८१
क्रकचाद्यपवाद:	८२
देशविशेषे योगव्यवस्था	८२
साधिपबवादिकरणकथनम्	८२
बवादिकरणोत्पत्तिकथनम्	८३
साधिपशकुन्यादिकथनम्	८४
भद्राकथनम्	८४
विष्टुपयोगकथनम्	८५
योगादिप्रतीकार:	८५
वारवेला	८६
कालवेला	८६
कालवेलायास्त्याज्यताकथनम्	८७
दिवसस्य पञ्चदशमुहूर्ताधिपनक्षत्रकथनम्	८७
रात्रे: पञ्चदशमुहूर्त्ताधिपनक्षत्रकथनम्	८८
मुहूर्तसंज्ञा	८८
पञ्चमोऽध्याय:	
चन्द्राद्यशुभकथनम्	८९
निरंशादिवर्ज्जनम्	८९
कालाशुद्धिकथनम्	९०
उद्धाहाद्यशुद्धि:	९०
जीवातिचारादिषु व्रतीद्वाहनिषेध:	९०
जीवातिचारापवाद:	९१
यामित्रवेध:	९१
विद्धनक्षत्रवर्जनम्	९१
खर्जूरवेध:	९२
विद्धनक्षत्रपादवर्जनम्	९२
सप्तशलाकावेध:	९२
वेधनिर्णयश्च	९२
सप्तशलाकावेधे विवाहनिषेध:	९३
कन्यालक्षणम्	९३
विवाहसमयेवादिवादिरवश्रवणेन वृषादिदर्शनेन च दम्पत्यो:शुभ कथनम्	९३
विवाहप्रश्नसमये कुक्कुरादिरवश्रवणेन वरस्य व्याध्याद्यशुभकथनम्	९४
विवाहप्रश्नसमये कन्याया: कृकलासादिस्पर्शनेन कुलटात्वानिर्देश: शय्यादिभंगेन वधव्यादिनिर्देशश्च	९४
विवाहप्रश्नसमये कन्याया जन्मरायादिभिर्द्दम्पत्यो: शुभकथनम्	९४
प्रश्नलग्नावुरुदष्टयादिस्थचन्द्रेण दम्पत्यो: सम्पत्तिकथनम्	९५
प्रश्नोंदयादष्टमादिस्थचन्द्रादिभिर्वैधव्यकथनं तत्कालनिर्णयश्च	९५
मदनलग्नात्सप्तमस्थभौमादिभि: कन्यायामरणादिकथनम्	९६
एकराश्यादिमेलकानां शुभफलकथनम्	९६
नाडीषडष्टकादिमेलकानामशुभ कथनम्	९७
द्विर्द्वादशनवपञ्चकयोरपवाद:	९७
अन्यश्च	९८
भ्रमप्रमादोत्पन्नषडष्टकादिमेलाक प्रतीकार:	९८
वरणादिषु वैवाहिकतिथिनक्षत्रादिभि: शुद्धिग्रहणप्रतिपादनम्	९९
वैवाहिकनक्षत्रादिकथनम्	१००
वैवाहिकनक्षत्राणां गण्डपादवर्ज्जनम्	१०१
कन्यादिलग्नस्थनवांशस्योत्कर्षकथनम्	१०१
स्वस्वामिनिरीक्षितलग्नजामित्रनवांशवाशेन दम्पत्यो: शुभकथनम्	१०२

विषय.	पृष्ठ.
सुतहिबुकयोग:	१०१
गोधूलियोग:	१०३
गोधूलिप्रशंसा	१०३
गुणबाहुल्यादल्पदोषस्याफलत्वकथनम्	१०३
परित्यागकथनम्	१०४
नववध्वागमनम्	१०४
बालबन्ध:	१०५
फलबन्ध:	१०५
ऋतुनिरूपणम्	१०६
अथ निषेक:	१०६
गर्भाधानादिमासनाथैर्गर्भस्य शुभाशुभकथनम्	१०७
अथ पुंसवनम्	१०७
अथ पंचामृतम्	१०८
घटीदानम्	१०८
सीमन्तोन्नयनम्	१०९
पष्ठोऽध्याय:	
जातसंप्रत्यय:	११०
जारयोग:	१११
जारजयोगभङ्ग	१११
त्रिविधरिष्टकथनम्	११२
गण्डयोगकथनम्	११२
गडकालकथनम्	११२
गण्डरिष्टफलम्	११२
गण्डशान्ति:	११३
सूर्यरिष्टम्	११४
चन्द्ररिष्टम्	११४
चन्द्ररिष्टापवाद:	११४
पापयुक्तचन्द्ररिष्टम्	११५

विषय.	पृष्ठ.
पापमध्यगतचन्द्ररिष्टम्	११५
क्षीणेन्दुरिष्टम्	११५
मेषादिनां त्रिंशांशे विशेषपरिष्टम्	११५
त्रिविधभौमपरिष्टम्	११६
बुधरिष्टम्	११६
गुरुरिष्टम्	११७
शुक्ररिष्टम्	११७
शनिरिष्टम्	११७
राहुरिष्टम्	११८
केतुरिष्टम्	११८
द्रेष्काणरिष्टम्	११८
लग्नाधिपरिष्टम्	११८
सौम्यग्रहरिष्टम्	११९
पापग्रहरिष्टम्	११९
मातृरिष्टम्	११९
रिष्टशान्तियोग:	१२०
परमोच्चस्थरव्यादिसद्ग्रहाणामायुर्दाय:	१२०
परमनीचस्थानामायुर्हानि:	१२१
चक्रपात:	१२१
पापयुक्ते लग्ने सर्वग्रहाणामायुर्हास:	१२२
ग्रहाणामंशायुर्गणनम्	१२३
लग्नस्यांशायुयर्गणनम्	१२३
शत्रुक्षेत्रादिष्वायुर्हानि:	१२४
तर्गोत्तमादिष्वायुर्वृद्धि:	१२४
मानुषादीनां परमायु:संख्या	१२४
परमायुष: कोष्ठी	१२५
दशाकथनम्	१२६
दशानिर्णय:	१२६
शुभदशाफलम्	१२७

विषय.	पृष्ठ.
लग्नदशाद्रेष्काणफलकथनम्	१२७
नैसर्गिकदशाकथनम्	१२७
दशाफलानिर्णय:	१२८
अष्टमचन्द्रादिदशाफलम्	१२९
शिरश्छेदादिकारकदशाकथनम्	१२९
दशारिष्टम्	१२९
अन्तर्दशाविभाग:	१३०
अन्तर्दशाच्छेद:	१३०
रव्यादिसत्पदशासु अन्तर्दशा कथनम्	१३०
मध्यादिरिष्टान्तर्दशाकथनम्	१३१
पापग्रहान्तर्दशाकथनम्	१३२
लग्ने शत्रेरन्तद्दर्शारिष्टम्	१३२
पापग्रहान्तर्दशयोरपवाद:	१३२
रिष्टप्रतीकार:	१३३
राजयोग:	१३३
स्वग्रहस्थितसुहृद्ग्रहफलम्	१३३
व्योश्यादियोग:	१३३
व्योश्यादिफलम्	१३४
अनफादियोग:	१३४
अनफादियोगफलम्	१३५
अन्यथा केमद्रुगयोगभंग:	१३५
लग्नचन्द्रोपचयस्थशुभग्रहैर्वसुमत्तानिरूपणम्	१३६
सूर्यकेन्द्रादिस्थचन्द्रवशेन विनयवित्तादीनामधमत्वादिनिरूपणम्	१३६
ग्रहयोगफलम्	१३७
प्रव्रज्यायोग:	१३७
प्रवज्यानिर्णय:	१३८
संख्यायोग:	१३८
संख्यायोगफलम्	१३९
राशिशीलम्	१३९
नक्षत्रशीलम्	१४०
दृष्टिफलम्	१४०
भावफलम्	१४१
मिश्रफलम्	१४१
कारकतानूयोगौ	१४२
स्त्रीणां रूपादिनिर्णय:	१४२
सप्तमस्थभौमादिफलम्	१४२
वैधव्यनिर्णय:	१४३
विषमस्थानादिलग्नकथनम्	१४३
सप्तमोऽध्याय:	
अथ नामकरणम्	१४४
निष्कारणम्	१४४
ताम्बूलदानम्	१४५
प्राग्भूम्यपवेशनम्	१४५
अन्नप्राशनम्	१४६
नवान्नभक्षणम्	१४६
अथ चूडाकरणम्	१४७
नित्यक्षौरम्	१४८
कर्णवेध:	१४८
विद्यारम्भ:	१४९
अथोपनयनम्	१४९
समावर्तनम्	१५०
धनुर्विद्यारम्भ:	१५१
नृपाभिषेक:	१५१
नववस्त्रपरिधानम्	१५२
अलङ्कारपरिधानम्	१५२
खड्गादिधारणम्	१५३

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
नवशय्याद्युपभोग:	१५३	ग्रहसंस्थाने वृष्टिज्ञानम्	१६४
क्रयविक्रयनक्षत्राणि	१५३	कार्तिके वातादिज्ञानम्	१६४
धनप्रयोगनिषेध:	१५४	गजवाजिक्रिया	१६४
अश्विन्यादिनक्षत्राणां तारक संख्याकथनम्	१५४	नवदोलाद्यारोहणम्	१६५
विवाहे तन्नक्षत्रतारकसंख्यापरिमित-वत्सरैर्वैवाहिकनक्षत्रोक्तशुभाशुभकथनं रोगोत्पत्तिनक्षत्रपरिमितदिनै रोगोपशमनकथनञ्च	१५५	पुष्करिण्यारम्भ	१६५
		वृक्षादिरोपणम्	१६६
		देवताघटनम्	१६६
		सामान्यदेवप्रतिष्ठा	१६६
मरनप्रदरोगजन्मनक्षत्रकथनम्	१५५	हरिप्रतिष्ठा	१६७
मरणप्रदरोगापवाद:	१५६	हरिप्रतिष्ठायां विशेषतिथिकथनम्	१६७
प्रश्नलग्नवशेन रोगोपशमनानुपशमनज्ञानम्	१५६	महादेवप्रतिष्ठा	१६८
प्रश्नलग्ने रोगोपशमयोगकथनम्	१५७	दीक्षाग्रहणम्	१६८
प्रश्ने रोगिणां मरणयोगद्वयकथनम्	१५७	परीक्षाविधि	१६८
परदेशस्थस्य रोगज्ञानं मरणज्ञानं च	१५७	नौकाघटनम्	१६९
औषधकरणम्	१५८	घटनस्थानान्नौकाचालनम्	१६९
औषधभक्षणम्	१५८	नौकायात्रा	१६९
बस्तिबिरेचनवधे शुद्धि:	१५९	नौकायात्रायां नक्षत्रनिन्दाकथनम्	१७०
रोगिस्नानम्	१५९	वास्तुलक्षणम्	१७०
नृपादिदर्शनम्	१६०	वास्तुभूमे:प्लवलक्षणम्	१७१
नाट्यारम्भ:	१६०	वास्तुभूमे:पूर्वाद्यष्टदिक्षु जलाशयफलम	१७१
हलप्रवाह:	१६०	गृहारम्भ:	१७१
बजिवपनम्	१६१	नक्षत्रशुद्ध्या वासगृहस्थाननिर्णय:	१७२
मेधिकरणम्	१६१	वाट्यां प्रशस्तवृक्षरोपणम्	१७२
धान्यच्छेदनम्	१६१	वाट्यां वृक्षरोपणनिषेघ:	१७२
धान्यादिसंस्थापनम्	१६२	नागशुद्ध्या वास्तुस्थाननिर्णय:	१७३
धान्यादिवृद्धिकथनम्	१६२	एकशालादिव्यवस्था	१७३
धान्यमूलज्ञानम्	१६२	पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु गृहबन्धध्रुवा:	१७४
गवां यात्रादिकम्	१६३	वायव्यादिचतुष्कोणेषु गृहबन्धध्रुवकथनमुभयत: स्वेच्छानुरूपचतु:संख्या दानेन ध्रुववृद्धिश्च	१७४
प्रश्नात्सद्यो वृष्टिज्ञानम्	१६३		

विषय.	पृष्ठ.
गृहाणामायज्ञानम्	१७४
गृहाणां नक्षत्रानयनम्	१७५
गृहाणां व्ययकथनम्	१७५
गृहाणां नक्षत्रव्यवस्था	१७५
गृहारम्भे लोकपालदिपूजा	१७५
गृहारम्भे ब्रह्मादिपूजा	१७६
सूत्रच्छेदादिफलम्	१७६
गृहार्घ्यदानाय स्थापितकलशभङ्गादिफलम्	१७६
सूत्रदानसमयेकुब्जादिदर्शननिषेध:	१७६
सूत्रदानकाले हुलहुलादिश्रवणफलम्	१७७
सूत्राद्यारोपणव्यवस्था	१७७
द्वारव्यवस्था	१७८
गृहप्रवेश:	१७८
गृहप्रवेशविधि:	१७९
अनियतकालिकश्राद्धविधि:	१७९
शान्तिकपौष्टिकशुद्धि:	१७९
अष्टमोऽध्याय:	
जेययातृविवेक:	१८०
दैवहीने दैवान्वितलक्षणम्	१८०
त्रिविधोत्पातनिर्णय:	१८१
त्रिविधोत्पातशान्ति:	१८१
वेलामण्डलनिर्णय:	१८१
नक्षत्रमण्डलनिर्णय:	१८२
मण्डलस्थशुभाशुभनिर्णय:	१८२
मण्डलाधिपाना फलपाककाल:	१८३
भूकम्पनिर्घातयो: पाककालनिर्णयो मण्डलैस्त्रिविधोत्पातानञ्च	१८४
मण्डलशान्ति:	१८४
पार्ष्णिग्राहादिविवेक:	१८४
आक्रन्दादिविवेक:	१८५
षड्गुणव्यवस्था	१८५
चतुरुपायव्यवस्था	१८६
विज्ञातजन्मायुर्दशान्तर्दशादे: पुरुष स्य यात्रोदानाधिकारकथनम	१८७
अविदितजन्मायुर्दशान्तर्दशादे:पुरुष स्यप्रश्ननिमित्तादिभि: यात्राविधिनिषेधकथनम्	१८७
यात्राप्रश्नविधि:	१८७
यात्राप्रश्ने लग्नाज्जयनिर्णय	१८८
यात्राप्रश्ने सिद्धिप्रदयोगद्वयकथनम	१८९
यावाप्रश्नेऽशुभयोगद्वयकथनम्	१८९
यात्राप्रश्ने मृत्युप्रदयोगचतुष्टयकथनम्	१८९
यात्राप्रश्ने मृत्युयोग:शत्रुवृद्धिसहित क्षुधामृत्युप्रदयोगाञ्च	१८९
यात्राप्रश्ने त्रासादिप्रदयोग:	१९०
यात्राप्रश्ने बन्धादिप्रदयोग:	१९०
यात्राप्रश्ने शत्रुक्षययोगाष्टककथनम्	१९०
यात्राप्रश्ने क्रूरसौम्यग्रहाणां निधनाद्यवस्थित्या शुभाशुभयोगातिदेश:	१९१
यात्राप्रश्ने यात्राजातकोक्तशुभाशुभयोरतिदेश:	१९१
योरतिदेय:	१९१
यात्रासमयकथनम्	१९२
यात्रायां निषिद्धवारकथनम्	१९२
यात्रायां निषिद्धतिथिकथनम्	१९३
नक्षत्राणां दिग्व्यवस्था	१९३
यात्रायां निषिद्धनक्षत्रगण:	१९४
यात्रायां समयविभागव्यवस्थया	

विषय.	पृष्ठ.
निषिद्धनक्षत्रकथनं सार्वकालिक सार्वद्वारिकनक्षत्रकथनञ्च	१९५
यात्रायां करणव्यवस्था	१९६
यात्रादिषु मुहूर्त्तव्यवस्था	१९६
यात्रायां चन्द्रशुद्धिः	१९६
यात्रायां ताराशुद्धिः	१९७
यात्रायामशुभलग्नकथनम्	१९७
यात्रायां शुभलग्नादिकथनम्	१९८
यात्रायां होराफलम्	१९८
यात्रायां द्रेष्काणफलम्	१९९
यात्रायां द्वादशांशत्रिंशांशफलम्	१९९
यात्रायां रविशुद्धिः	२००
यात्रायां लग्नादिस्थचन्द्रशुद्धिः	२००
यात्रायां कुजशुद्धिः	२००
यात्रायां लग्नादिस्थबुधशुद्धिः	२०१
यात्रायां लग्नादिस्थगुरुशुद्धिः	२०१
यात्रायां लग्नादिस्थशुक्रशुद्धिः	२०१
यात्रायां लग्नादिस्थशनिराहुशुद्धि	२०२
यात्रायां लग्नादिस्थकेतुशुद्धिः	२०२
यात्रायां लग्नस्थनिषिद्धग्रहनिर्णयः शून्यकेन्द्रवक्रिकेन्द्रनिषेधश्च	२०२
ग्रहाणां जन्मनक्षत्राणि	२०३
यात्रायां लग्नस्थग्रहापवादः	२०३
स्वदिक्स्थलालटिग्रहादौ यात्रानिषेधः	२०४
निषेधः	२०४
अष्टदिक्षु लालाटिककथनम्	२०४
पुरः शुक्रप्रतीकारः	२०५
चन्द्राद्यनिष्टम्	२०५
व्यतीपातादिषु यात्राफलम्	२०५
अवमादिषु यात्रानिषेधः	२०६
विवाहदिनादिषु यात्रानिषेधः	२०६
धरित्रीप्रदयोगः	२०६
किम्बसुयोगः	२०७
विनासमरयोगः	२०७
विनारणयोगः	२०७
अरिप्रध्वंसयोगः	२०८
शशितामरसयोगः	२०८
शिलाप्रतरणयोगः	२०८
अरिशलभयोगः	२०९
अरिवैनतेययोगः	२०९
अरियोषाभरणयोगः	२०९
राजयोगः	२१०
राजयोगफलम्	२१०
उषायोगप्रशंसा	२१०
विजयस्नानम्	२११
यात्रायां लोकपालादिपूजा	२११
प्रथमबलिदानम्	२१२
द्वितीयप्रथमबलिदानस्वीकारः	२१२
यात्राग्रहणम्	२१२
यात्राक्रमः	२१३
यात्रासमये हस्तिनोऽशुभेङ्गितानि	२१३
यात्रासमयेऽश्वस्याशुभेङ्गितानि	२१४
यात्रासमयेऽश्वस्य शुभेङ्गितानि	२१४
यात्रायां स्वयमशक्तौ द्रव्यप्रस्थापनविधिः	२१५
प्रस्थानविधिः	२१५
माङ्गल्यद्रव्यादिकथनम्	२१५
अमङ्गल्यद्रव्यकथनं यात्रायां तेषां दर्शनादिभिरशुभनिर्देशश्च	२१७

विषय.	पृष्ठ.
स्वप्नदर्शनफलम्	२१७
यात्रायां मनःशुद्धिप्रशंसा	२१७
पूर्वादिचतुर्दिक्षुभोजनविधिः	२१८
यात्रासमये वातशुभलक्षणम्	२१९
वैजयिकम्	२१९
यात्रासमये देहस्पन्दनफलम्	२१९
यात्रासमये ध्वजभंगादिभिरशुभकथनम्	२१९
बलोत्साहेन शुभकथनम्	२२०
यात्रायां क्रव्यात्पक्षिभिःशुभाशुभकथनम्	२२०
गच्छतो वामहस्तशुभशकुनानि गच्छतो दक्षिणस्थशुभाशुभशकुनानि	२२१
दग्धादिनिर्णयः	२२१
हर्म्यादिस्थानस्थितशकुनस्य शुभकारकत्वकथनम्	२२२
चितादिस्थानावस्थितशकुनस्याशुभत्वम्	२२२
यात्रायां काकस्य शुभत्वम्	२२३
यात्रायां काकाशुभत्वम्	२२३
गवादिचेष्टावशेन शुभाशुभकथनम्	२२३
शिवाचरितशुभाशुभकथनम्	२२४
कुक्कुरशुभाशुभकथनम्	२२४
शकुनापवादः	२२४
युगपद्दृष्टस्य शुभाशुभशकुनद्वयस्य बलाबलयोगफलनिर्देशः	२२५
रिक्तकुम्भस्यानुकूलत्वादिना शुभकथनम्	२२५
यात्रायामुत्तानशय्यादीनां दर्शनादिभिरशुभकथनम्	२२५
क्षुतफलम्	२२६
अशुभशकुनप्रायश्चित्तम्	२२६
बलादिषु दद्रुविचर्चिकादिरोगोत्पत्त्या अशुभफलनिर्देशः	२२७
सुखोदर्कजयलक्षणानि	२२७
असुखोदर्कजयलक्षणानि	२२७
ब्राह्माणादीनां धनग्रहणनिषेधस्त्यक्तवाहनादीनां हनननिषेधश्च	२२८
यथोक्त शास्त्रार्थकारिणो राज्ञःपरमाभ्युदयकथनम्	२२८
अथ परीक्षाविधिः	२२९
अग्निग्रहंणम्	२२९
मोक्षदीक्षा	२३०
जन्मसमये मरणसमये वा मोक्षनिर्णयः	२३०
निधनस्थग्रहवशेन मरणनिर्णयः	२३०
बलवद्ग्रहदर्शनादिभिर्निर्याणनिर्णयः	२३१
अग्रयादिना शवपरिणतिनिर्णयः	२३१
उपसंहारः	२३२

इति शुद्धिदीपिकास्थानुक्रमणिका समाप्ता

॥ श्रीः ॥

शुद्धिदीपिका

हिन्दीटीकासमेता

मङ्गलाचरणम्

नत्वा व्योमासनस्थं त्रिभुवननमितं देवमाद्यं दिनेशं
तारानक्षत्रराशिग्रहकुलतिलकं सर्वरीशं च नत्वा ।
नत्वा कर्मस्वभावं प्रतिपदगहनं प्राक्कृतं कर्मबीजम्,
अज्ञानान्धस्य जन्तोर्भ्रमपटहरणं लिख्यते शास्त्रसारम्॥१॥

ग्रंथारम्भ में ग्रंथकार मंगलाचरण करते हैं। आकाशरूप विस्तृत आसन के ऊपर आसीन त्रिलोकीद्वारा वन्दनीय सबके आदिभूत देवराज सूर्यनारायण को तथा तारा नक्षत्र राशि और ग्रहादि के अधिपति चन्द्रमा को एवं पूर्वजन्मार्जित पद २ के ऊपर अतिकठिन कर्मबीज को प्रणाम करके अज्ञान से अन्धे हुए मनुष्यों के भ्रमरूप आवरण को हटाने वाले शास्त्र सार को लिखता हूं॥१॥

तृष्णातरंगदुस्तरसंसाराम्भोधिलंघने तरणिः ।
उदयवसुधाधरारुणमुकुटमणिः पातु वस्तरणिः ॥१॥

तृष्णारूपी तरंग द्वारा दुस्तर संसार रूप समुद्र से पार होने के लिये नौका स्वरूप और उदय पर्वत के अरुणवर्ण मुकुटमणि स्वरूप वह सूर्य देव तुम्हारी रक्षा करें॥१॥

अस्तं गतवति मिहिरेऽतिमलिनदोषाकुले च गोविभवे ।
उद्वाहादिषु शुद्धिग्रहणार्थं दीपिका क्रियते ।।२।।

वराहमिहराचार्य की मृत्यु के पीछे विवाहादि कर्मोपदेशक प्रमाणादि का अभाव होने से विवाहादि कर्मों की शुद्धि के लिये मैं इस "शुद्धिदीपिका" नामक ग्रन्थ को प्रकट करता हूं।।२।।

शास्त्रप्रशंसा

विफलान्यन्यशास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम् ।
सफलं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्राकौं यत्र साक्षिणौ ।।३।।

ज्योतिष के अतिरिक्त जो सब शास्त्र हैं, वह प्रायः समस्त ही विवाद पूर्ण हैं और साक्षात् सम्बन्ध में उनसे फल प्रत्यक्ष नहीं होता, अतएव ज्योतिष के अतिरिक्त अन्य शास्त्र विफल हैं, और चन्द्र तथा सूर्य साक्षात् सम्बन्ध में फल देते हैं इस कारण "ज्योतिषशास्त्र" सफल कहा गया हैं।।३।।

मुहूर्त्ततिथिनक्षत्रमृतवश्चायनानि च।
सर्वाणि व्याकुलानि स्युर्न स्यात् साम्वत्सरो यदि ।।४।।

मुहूर्त्त, तिथि, नक्षत्र, ऋतु और अयन इत्यादि समस्त ही दैवज्ञ के अभाव में व्याकुल होते हैं, अर्थात् दैवज्ञ के न होने से किस समय में कौन मुहूर्त्त, कौन तिथि, कौन नक्षत्र और कौन अयनादि होगा, कुछ भी स्थिर नहीं हो सकता।।४।।

सूर्य्याद्युत्पत्तिः

तमस्तोमावृते विश्वे जगदेतच्चराचरम् ।
राशिग्रहोडु संघातं सृजन्सूर्योऽभवत्तदा ।।५।।

यह विश्व (संसार) सृष्टि के पहिले अंधकार समूह से ढका हुआ था, उसी समय में परम पुरुष भगवान् स्थावर जंगमात्मक जगत् मेषादि बारह राशि, रव्यादि नवग्रह, और अश्विन्यादि नक्षत्रों की

सृष्टि करके स्वयं सूर्यनाम से प्रकाशित हुए थे।।५।।

कालनरोत्पत्तिः

ततः प्रभृति जन्तूनां सदसत्कर्मसूचकः ।
होराख्यो वर्त्तते कालो ह्यहोरात्रेऽत्र लोपतः ।।६।।

सृष्टि के पीछे अहोरात्रि शब्द के "अत्र" यह ओ अक्षर लोप होकर प्राणियों का सद् असत् कर्म सूचक काल होरानाम से अभिहित हुआ था।।६।।

अजादिराशिभिः कालनरस्यांगविभागः

शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिबस्तिगुह्यसंज्ञकानि ।
ऊरू जानुकजंघे चरणाविति राशयोऽजाद्याः ।।७।।

अब मेषादि राशि के द्वारा कालपुरुष का अंग विभाग कहा जाता है। मेषादि—बारह राशि क्रमशः कालपुरुष के मस्तकादि बारह अंग हैं, अर्थात् मेषराशि कालपुरुष का मस्तक, वृष मुख, मिथुन दोनों बाहु, कर्क हृदय, सिंह उदर, कन्या कटि, तुला बस्ति (नाभिकाअधो भाग) वृश्चिक गुह्य , धनुः दोनों ऊरु, मकर दोनों जानु कुंभ दोनों जंघा, और मीन राशि कालपुरुष के दोनों चरण होते हैं। इस कालपुरुष के अंगविभाग क्रम मे जात बालक को भी लग्न से गणना करके मस्तकादि बारह अंग की कल्पना करनी चाहिये और तस्कर के शारीरिक चिह्नादि का भी इसी के द्वारा अनुमान करे।।७।।

राशिकथनम्

मेषवृषमिथुनकर्कटसिंहाः कन्या तुलाथ वृश्चिकभम् ।
धनुरथ मकरः कुम्भो मीन इति च राशयः कथिताः ।।८।।

अनंतर मेषादि बारह राशि के नाम कथित होते हैं– मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनुः, मकर, कुंभ और

मीन यह बारह राशि कही गई हैं।।८।।

राशिस्वरूपकथनम्

सप्तविंशतिभैर्ज्ज्योतिश्चक्रं स्तिमितवायुगम् ।
तदर्क्कांशो भवेद्राशिर्नवर्क्षचरणाङ्कितः ।।९।।

ज्योतिश्चक्र में राशि विभाग कथित होता है। सत्ताईस नक्षत्रयुक्त ज्योतिश्चक्र निश्चल वायु के ऊपरी भाग में स्थित है। इस चक्र के द्वादशभाग के एक एक भाग में अर्थात् नव नव पाद में सवा दो २ नक्षत्र में एक एक राशि होती है। यथा:- अश्विनी नक्षत्र के चार पाद, भरणी के चार पाद और कृत्तिका नक्षत्र के प्रथम पाद में मेष राशि होती है। कृत्तिका के शेष तीन पाद, रोहिणी के चार पाद, और मृगशिरा के प्रथम दो पाद में वृष राशि होती है। इसी प्रकार नव नव पाद में अपरापर समस्त राशि जाननी चाहिये।।९।।

नक्षत्रराशि विभागः

अश्विनीमघमूलादौ मेषसिंहहयादयः ।
विषमर्क्षाणि वर्त्तन्ते पादवृध्या यथोत्तरम् ।।१०।।

अन्य प्रकार से राशि नक्षत्र विभाग कथित होता है- अश्विन्यादि आश्लेषा पर्यंत नव नक्षत्र, मघादि ज्येष्ठा पर्यंत नव नक्षत्र, और मूलादि रेवतीपर्यंत नव नक्षत्र में यथासंख्या मेषादि चार राशि, सिंहादि चार राशि और धनुः इत्यादि चार राशि होती हैं अर्थात् मेषादि सिंहादि और धनुः इत्यादि चार चार राशि ही विषम नक्षत्र के एक एक पाद वृद्धि क्रम से निवृत्त होती हैं, यथा विषम तृतीय नक्षत्र कृत्तिका के प्रथम पाद में मेषराशि की निवृत्ति होती है इसी प्रकार पंचम मृगशिर के दूसरे पाद में वृष की निवृत्ति, सप्तम पुनर्वसु के तीसरे पाद में मिथुन की निवृत्ति, और नवम अश्लेषानक्षत्र के चौथे पाद में कर्क राशि की निवृत्ति होती है और

मघा से गणना करने पर विषम नक्षत्र में अर्थात् उत्तराफाल्गुनी में प्रथम पाद में सिंह की निवृत्ति, चित्रा के दूसरे पाद में कन्या की निवृत्ति, विशाखा के तीसरे पाद में तुला की निवृत्ति होती है और मूल से गणना करके विषमनक्षत्र उत्तराषाढ़ के प्रथम पाद में धनु की निवृत्ति, धनिष्ठा के दूसरे पाद में मकर की निवृत्ति पूर्वाभाद्रपद के तीसरे पाद में कुंभ की निवृत्ति और रेवती नक्षत्र के चौथे पाद में मीन राशि की निवृत्ति होती है।।१०।।

राशिनामधिष्ण्याद्दैवताकथनम्

मत्स्यों घटी नृमिथुनं सगदं सवीणं,
चापी नरोऽश्वजघनो मकरो मृगास्यः ।
तौली सशस्यदहनाप्लवगा च कन्या,
शेषाः स्वनामसदृशाः खचराश्च सर्वे ।।११।।

राशियों के अधिष्ठात्री देवता वर्णित होते हैं—यथा अन्योन्य पुच्छाभिषक्त, परस्पर गात्रनिरीक्षक और रक्तमुख दो मछली मीन राशि, कंधे पर घट धारण किये मनुष्य कुंभ राशि, स्त्री और पुरुष मिथुन राशि, जिनमें स्त्री वीणा धारिणी और पुरुष गदाधारी है, अश्व के जंघा की समान जंघायुक्त और धनुर्धारी पुरुष धनु राशि, मृग के मुख की समान मुखयुक्त मकर राशि, तराजू हाथ में लिये पुरुष तुला राशि, नांव पर चढ़ी शस्य अग्नि हाथ में लिये कुमारी कन्या राशि, इनके अतिरिक्त जो मेषादि सब राशि हैं, वह अपने अपने नाम के सदृश हैं अर्थात् मेष मेषाकृति, वृष वृषाकार, सिंह सिंहाकृति, कर्क कर्कट सदृश और वृश्चिक वृश्चिकाकृति है, यह मेषादि सब राशि ही यथा योग्य स्थान में वास करती हैं।।११।।

द्विपदचतुष्पदराशिकथनम्

मिथुनतुलाघटकन्या द्विपदाख्याश्चापपूर्वभागाश्च ।

मृगधनुराद्यन्तार्द्धे वृषाजसिंहाश्चतुश्चरणाः ॥१२॥

द्विपद और चतुष्पद राशि कथित होती हैं– मिथुन, तुला, कुंभ कन्या और धनुष का पूर्वार्द्ध भाग द्विपद राशि है, मकर का पूर्वार्द्ध भाग, धनुष का शेषार्द्ध, वृष मेष और सिंह चतुष्पद राशि हैं॥१२॥

कीटसरीसृपराशिकथनम्

कर्कटवृश्चिकमीना मकरान्त्यार्द्धश्च कीटसंज्ञास्युः ।
वृश्चिकराशिर्मुनिभिः सरीसृपत्वेन निर्द्दिष्टः ॥१३॥

कीटादि संज्ञा कथित होती हैं–कर्क, वृश्चिक, मीन और मकर के शेषार्द्ध भाग को कीट राशि कहा जाता है, विशेषतः वृश्चिक राशि सरीसृप कहकर निर्दिष्ट है॥१३॥

ग्राम्यारण्यराशिकथनम्

ग्राम्या मिथुनतुलास्त्रीचापालिघटा निशासु वृषमेषौ ।
मकरादिमार्द्धसिंहौ वन्यौ दिवसेऽजवृषभौ ॥१४॥

ग्राम और आरण्य राशि कथित होती हैं मिथुन, तुला, कन्या, धनुः, वृश्चिक और कुम्भ यह कई ग्राम्य राशि हैं। रात्रि में वृष और मेष ग्राम्य राशि के नाम से विख्यात होती हैं, मकर का प्रथमार्द्ध भाग और सिंह वन्य (आरण्य) राशि हैं और दिन में मेष एवं वृष वन्य राशि कहकर अभिहित होती हैं॥१४॥

जलजराशिनिर्णयः

जलजौ कर्कटमीनौ मकरान्तार्द्धंचशिवमते कुम्भः ।
राशिस्वरूपमेतन्मार्कंडेयादिभिः कथितम् ॥१५॥

जलज राशि कथित होती हैं। कर्क मीन और मकर का शेषार्द्ध भाग जलजराशि है और शिव पण्डित के मत से कुम्भ राशि को भी जलज राशि कहा जाता है। मार्कंडेय इत्यादि मुनियों ने राशि का स्वरूप इस प्रकार वर्णन किया है॥१५॥

मेषादिराशीनां वर्णकथनम्

अरुणपीतहरितपाटलपाण्डुविचित्राः सितेतरपिशंगौ ।
पिंगल कर्ब्बुरबभ्रुकमलिना रुचयो यथासंख्यम् ॥१६॥

मेषादि राशि का वर्ण कथित होता है मेष राशि रक्तवर्ण, वृष शुक्लवर्ण, मिथुन हरितवर्ण, कर्क पाटल (श्वेतरक्त) वर्ण, सिंह राशि पाण्डु (ईषत् शुक्ल) वर्ण, कन्या राशि विचित्र (नाना) वर्ण, तुला कृष्णवर्ण, वृश्चिक पिशंग (कद्रुपिंगल) वर्ण, धनु, अग्निवर्ण, मकर शबलवर्ण कुंभ कपिलवर्ण और मीन राशि कृष्णवर्ण होती है॥१६॥

राशीनां क्रूरसौम्यादिविवेकः

क्रूरोऽथ सौम्यः पुरुषोऽङ्गना च,
ओजोऽथ युग्मं विषमः समश्च ।
चरस्थिरद्व्यात्मकनामधेया,
मेषादयोऽमी क्रमशः प्रदिष्टाः ॥१७॥

राशियों की क्रूरादिसंज्ञा कथित होती हैं मेषादि बारह राशि दो दो क्रम से क्रूर और सौम्य, पुरुष और स्त्री, ओज और युग्म, विषम और सम नाम से विख्यात होती हैं, और मेषादि तीन क्रम से चर स्थिर और द्व्यात्मक अर्थात् द्विस्वभाव संज्ञा से अभिहित होती हैं, यथा–मेष, क्रूर, पुरुष, ओज, विषम और चरराशि। वृष सौम्य, अंगना, युग्म, और स्थिर राशि। मिथुन क्रूर, पुरुष, ओज, विषम और द्व्यात्मकराशि। कर्क सौम्य, अंगना, युग्म, सम और चरराशि। सिंह क्रूर, पुरुष, ओज, विषम और स्थिर राशि। कन्या सौम्य, अंगना, युग्म, सम और द्व्यात्मक राशि। तुला क्रूर, पुरुष, ओज, विषम और चर राशि। वृश्चिक सौम्य, अंगना, युग्म, सम और स्थिर राशि। धनु:क्रूर, पुरुष, ओज, विषम और द्व्यात्मक राशि।

मकर सौम्य, अङ्गना, युग्म, सम और चर राशि। कुंभ क्रूर, पुरुष, ओज, विषम और स्थिर राशि। मीन सौम्य, अङ्गना, युग्म सम और द्व्यात्मक राशि है।।१७।।

सामान्यतो राशिसंज्ञा

राशिनामानि च क्षेत्रं भमृक्षं गृहनाम च ।
मेषादीनाञ्च पर्य्यायं लोकादेव विचिन्तयेत् ।।१८।।

साधारण रूप से राशि संज्ञा कथित होती है–यथा –क्षेत्रभ ऋक्ष, और गृहनाम अर्थात् गृहवाचक शब्द द्वादश राशिवाचक हैं (क्षेत्र वा भ इत्यादि प्रत्येक शब्द से ही राशि को समझना) अन्यान्य पर्याय लोक परम्परा से अवगत हो जाते हैं।।१८।।

मेषादीनां विशेषसंज्ञाकथनम्

क्रियताबुरिजितुमकुलीरलेय पाथेययूककौर्प्याख्याः ।
तौक्षिक आकोकेरो हृद्रोगगश्चान्त्यभश्चेत्थम् ।।१९।।

अनंतर राशियों की विशेष संज्ञा कथित होती है। मेष का अन्य नाम क्रिय, वृष का नामांतर ताबुरि, मिथुन का दूसरा नाम जितुम, कर्क का अन्य नाम कुलीर, सिंह का नामांतर लेय, कन्या का दूसरा नाम पाथेय, तुला का नामांतर यूक, वृश्चिक का अन्य नाम कौर्पी, धनुः की संज्ञान्तर तौक्षिक, मकर का अन्य नाम आकोकेर, कुंभ का नामांतर हृद्रोग और मीन का दूसरा नाम अन्त्यभ है।।१९।।

वेशिस्थानादिकथनं-लग्नहोराकथनञ्च

वेशिः सूर्य्याद्द्वितीयर्क्षं स्वामिदिक्संज्ञितः प्लवः ।
राशीनामुदयो लग्नं होरा राश्यर्द्धलग्नयोः ।।२०।।

अब वेशि आदि स्थान कथित होते हैं सूर्य जिस राशि में स्थित हो उसकी पर राशि अर्थात् दूसरे स्थान का नाम वेशि है और उस

राशि के अधिपति ग्रह की दिक् का नाम प्लव है, मेषादि द्वादश राशि के उदय का नाम लग्न है और राशि के अर्द्ध और लग्नार्द्ध को होरा कहते हैं॥२०॥

राश्यधिपकथनम्

कुजशुक्रबुधेन्द्वर्कसौम्यशुक्रावनीभुवाम्।
जीवार्किभानुजेज्यानां क्षेत्राणि स्युरजादयः ॥२१॥

राशियों के अधिपति कथित होते हैं मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र, रवि, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, और बृहस्पति इन सब ग्रहों के क्षेत्र मेषादि बारह राशि होती हैं अर्थात् मेष के अधिपति मंगल, वृष के अधिपति शुक्र, मिथुन के अधिपति बुध, कर्क के अधिपत्ति चन्द्र, सिंह के अधिपति रवि, कन्या के अधिपति बुध, तुला के अधिपति शुक्र, वृश्चिक के अधिपति मंगल, धनु के अधिपति बृहस्पति, मकर और कुंभ के अधिपति शनि और मीन राशि के अधिपति बृहस्पति होते हैं॥२१॥

रव्यादेरुच्चनीचकथनम्

सूर्य्याद्युच्चान्क्रियवृषमृगस्त्रीकुलीरान्त्ययूके,
दिग्वह्नीन्द्रद्वय तिथिशरान् सप्तविंशांश्च विंशान् ।
अंशानेतान् वदति यवनश्चान्त्यतुंगान् सुतुंगान्,
तानेवांशान्मदनभवनेष्वाह नीचान् सुनीचान् ॥२२॥

अनंतर रव्यादि ग्रहका उच्च नीचत्व कथित होता है मेष, वृष, मकर, कन्या कर्क, मीन, और तुला इन सात राशि का संख्यानुसार दश, तीन, अट्ठाईस, पंचदश, पंच, सप्तविंशति, (२७) और विंशति (२०) अंशक्रम से रवि, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, और शनि इन सात ग्रहों का उच्चस्थान होता है, यवन मुनि ने इस प्रकार कहा है और इन समस्त अंश के अन्त्य भाग का नाम सुतुङ्ग है

और उच्च राशि को सप्तम राशि में दश, तीन इत्यादि अंश रव्यादिग्रह का नीच स्थान और अन्त्यांश को सुनीच स्थान कहा जाता है। यथा मेष राशि का एकादशांश रवि का उच्च स्थान, और दशांश का शेषार्द्ध (दशमांश) सुतुङ्ग स्थान। वृष राशि के तीन अंश चन्द्र का उच्च स्थान और तृतीयांश चरमांश सूच्च स्थान मकर राशि के अट्ठाईस अंश मंगल का उच्चस्थान और अट्ठाईस अंश का शेषांश सुतुङ्ग स्थान। कन्या राशि का पंचदशांश बुध का उच्च स्थान और पंचमदशांश का शेषांश सूच्च स्थान। कर्क राशि का पंचमांश बृहस्पति कां उच्च स्थान और पंचमांश सुतुङ्ग स्थान। मीन राशि के सत्ताईस अंश शुक्र का उच्च स्थान और सत्ताईस अंश का शेषांश सूच्च स्थान। तुला राशि के बीस अंश शनि का उच्च स्थान और वीस अंश का चरमांश सुतुंगस्थान होता है। इसी प्रकार मेष का सप्तम तुला राशि का दशांश रवि का नीच स्थान और दशमांश सुनीच स्थान। वृष राशि का सप्तम वृश्चिक है, उसके तीन अंश चन्द्र का नीच स्थान और तृतीयांश सुनीच स्थान। मकर राशि का सप्तम कर्क, उसके अट्ठाईस अंश मंगल का नीच स्थान और अट्ठाईस अंश का शेषांश सुनीच स्थान। कन्या राशि का सप्तम मीन, उसके पंचदशांश बुध का नीच स्थान और पञ्चदशांश का चरमांश सुनीच स्थान। कर्क राशि का सप्तम मकर, उसके पंचांश बृहस्पति का नीच स्थान और पंचमांश सुनीच स्थान। मीन के सप्तम कन्या राशि के सत्ताईस अंश शुक्र का नीच स्थान और सत्ताईस अंश का शेषांश सुनीच स्थान तुला के सप्तम मेष राशि, उसके वीस अंश शनि का नीच स्थान और विंशति अंश का चरमांश सुनीच स्थान होता है, यह सब अंश राशि के त्रिंशांश (तीस अंश) में जानने चाहिये।।२२।।

मूलत्रिकोणकथनम्

सिंहवृषाजप्रमदाकार्म्मुकभृत्तौलिकुम्भधराः ।
सूर्य्यादीनां मूलत्रिकोणभवनान्यनुक्रमशः ॥२३॥

सूर्यादि ग्रहों का मूलत्रिकोण कथित होता है-सिंह, वृष, मेष, कन्या, धनु, तुला और कुंभ यह सात राशि क्रमशः रव्यादि सप्तग्रहों की मूल त्रिकोण होती हैं अर्थात् रवि का सिंह, चन्द्र का वृष, मंगल का मेष, बुध की कन्या, बृहस्पति का धनु, शुक्र का तुला और शनि ग्रह का मूल त्रिकोण कुम्भ राशि होती है॥२३॥

मूलत्रिकोणांशकथनम्

रविभौमजीवभार्गवशनैश्चराणां त्रिकोणभागाः स्युः ।
नखरविदिक्तिथिनखराज्ञेन्दोर्द्दिग्भांशकाः सूच्चात् ॥२४॥

रव्यादि सात ग्रहों की क्रमानुसार सिंहादि सप्त राशि मूलत्रिकोण होने पर भी सिंह राशि के वीस अंश रवि के, मेष राशि के बारह अंश मंगल के, धनु राशि के दश अंश बृहस्पति के, तुला राशि के पन्द्रह अंश शुक्र के और कुम्भ राशि के वीस अंश शनि के मूलत्रिकोणांश होते हैं बुध और चन्द्र के विशेष हैं, इस बुध के सूच्चांश, कन्या राशि के पन्द्रह अंश के पीछे दशांश और चन्द्र के सूच्चांश वृष राशि के तृतीयांश के पीछे सत्ताईस अंश मूल त्रिकोण होता है॥२४॥

नवांशवर्गोत्तमकथनम्

चराणां सत्रिकोणानां तच्चराद्या नवांशकाः ।
राशीनां स्वनवांशो यः स वर्गोत्तमसंज्ञकः ॥२५॥
चराणां प्रथमोऽशश्च स्थिराणां पंचमस्तथा ।
द्व्यात्मकानां तथा चान्त्यः स वर्गोत्तमसंज्ञकः ॥२६॥

नवांश कथित होता है-मेष, कर्क, तुला, और मकर, इन चारों

चरराशि की और इन चरराशि की पंचम और नवम राशि की नवांश गणना इन चरराशि से ही करनी चाहिये, स्वस्व राशि का जो नवांश है, उसको वर्गोत्तम कहते हैं। चर (मेष, कर्क, तुला और मकर,) राशि का प्रथम अंश ही वर्गोत्तम संज्ञा में अभिहित होता है। स्थिर अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ राशि का पांचवां अंश वर्गोत्तम नाम से कथित होता है और द्व्यात्मक अर्थात् मिथुन, कन्या,धनु और मीन राशिके नवांशको वर्गोत्तम कहते हैं।।२५-२६।

होराद्वादशांशद्रेष्काणव्यवस्था

होरे विषमेऽर्केन्द्वोः समराशौ चन्द्रसूर्य्ययोः क्रमशः ।
स्वगृद्द्वादशभागा द्रेष्काणाः प्रथमपंचनवपानाम् ।।२७।।

होरादि कथित होता है। राशि (लग्न) के अर्द्धभाग को होरा कहा जाता है विषम राशि के (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुंभ के) प्रथम होरा रवि का और द्वितीय होरा चन्द्र का होता है और समराशि अर्थात् वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन के प्रथम होरा चन्द्र का और द्वितीय होरा रवि का होता है। राशि (लग्न) को द्वादश भाग में विभक्त करने से एक एक भाग को द्वादशांश कहा जाता है। प्रथम द्वादशांश के स्वीय राश्यधिपति ही अधिपति होते हैं, द्वितीय तृतीय इत्यादि द्वादशांश के अधिपति द्वितीय तृतीय राशि के अधिपति क्रम से जानने चाहिये। जिस प्रकार मेष लग्न के प्रथम द्वादशांशपति मंगल, द्वितीय द्वादशांश पति शुक्र, तृतीय द्वादशांशपति बुध इत्यादि। राशि (लग्न) को तीन भाग में विभक्त करने से एक एक भाग का नाम द्रेष्काण है। प्रथम द्रेष्काण का अधिपति लग्नाधिपति ग्रह, द्वितीय द्रेष्काण का अधिपति लग्न से पंचम राशि का अधिपति ग्रह, और तृतीय द्रेष्काण

का अधिपति नवमराशि का अधिपति ग्रह होगा। जिस प्रकार मेष लग्न के प्रथम द्रेष्काण का अधिपति मेषाधिपति मंगल, द्वितीय द्रेष्काण के अधिपति धनु का अधिपति बृहस्पति होता है, ऐसे ही वृष लग्न के प्रथम द्रेष्काण का अधिपति वृषाधिपति शुक्र, द्वितीय द्रेष्काण का अधिपति कन्याधिपति, बुध तृतीय द्रेष्काण का अधिपति मकराधिपति शनि, मिथुन लग्न के प्रथम द्रेष्काण का अधिपति मिथुनाधिपति बुध, द्वितीय द्रेष्काण का अधिपति तुलाधिपति शुक्र, तृतीय द्रेष्काण का अधिपति कुम्भाधिपति शनि, कर्क लग्न के प्रथम द्रेष्काण का अधिपति कर्कटाधिपति चन्द्र, द्वितीय द्रेष्काण का अधिपति वृश्चिकाधिपति मंगल, तृतीय द्रेष्काण का अधिपति मीनाधिपति बृहस्पति। इसी प्रकार अन्यान्य लग्न में भी द्रेष्काणाधिपतिका निर्णय करना चाहिये।।२७।।

जलदहनमिश्रद्रेष्काणव्यवस्था

सदसद्ग्रहद्रेष्काणा जलदहनाख्याः प्रकीर्त्तिताः क्रमशः ।
पापयुताः सलिलाख्या मिश्रा दहनाश्च सौम्ययुताः ।।२८।।

शुभ और अशुभ ग्रह के समस्त द्रेष्काण क्रमशः जल और दहनसंज्ञा से अभिहित होते हैं अर्थात् शुभ ग्रह के (चंद्र बुध बृहस्पति और शुक्र के) द्रेष्काण का नाम जल है, अशुभग्रह के (रवि, मंगल और शनि के) द्रेष्काण का नाम दहन है। शुभ ग्रह का जलद्रेष्काण पाप ग्रहयुक्त होने से उसको मिश्र कहा जाता है और पाप ग्रह का दहन द्रेष्काण शुभ ग्रहयुक्त होने से भी मिश्र संज्ञा से अभिहित होता है।।२८।।

सौम्यरूपद्रेष्काणव्यवस्था

नृयुग्ममीनयोराद्यौ मध्यौ कर्कटचापयोः ।
कन्यान्तः सौम्यरूपाख्या द्रेष्काणाः पञ्च कीर्त्तिताः ।।२९।।

मिथुन और मीन लग्न का प्रथम द्रेष्काण, कर्क और धनु का दूसरा द्रेष्काण और कन्या लग्न का तीसरा द्रेष्काण, इन पांच द्रेष्काण को सौम्यरूप कहते हैं।।२९।।

फलपुष्पयुतरत्नभाण्डान्वितद्रेष्काणव्यवस्था

द्रेष्काणः कर्कटाद्यस्तु फलपुष्पयुतः स्मृतः ।
रत्नभाण्डान्वितौ ज्ञेयौ धनुर्म्मत्स्यतुलादिमौ ।।३०।।

कर्क लग्न का प्रथम द्रेष्काण फलपुष्पयुत संज्ञा से अभिहित होता है और धनु का द्वितीय द्रेष्काण और तुला के प्रथम द्रेष्काण को रत्नभाण्डान्वित कहते हैं।।३०।।

रौद्रदेष्काणव्यस्था

रौद्रमेषमृगालीनां मध्यान्ताः कुम्भजास्त्रयः ।
नृयुक्कर्कतुलान्तिमौ मीनमध्यः सिंहाद्यमध्यमौ ।।३१।।

मेष, मकर और वृश्चिक के दूसरे और तीसरे द्रेष्काण एवं कुंभ के पहिले दूसरे और तीसरे द्रेष्काण को रौद्र कहते है। तथा मिथुन और तुला के तीसरे द्रेष्काण मीन के दूसरे द्रेष्काण एवं सिंह के पहिले और दूसरे द्रेष्काण को भी रौद्र कहा जाता है।।३१।।

उद्यतास्त्रद्रेष्काणव्यवस्था

उद्यतास्त्रानृयुङ्मेषमृगकुम्भझषास्त्रयः ।
चापाद्यन्तौ तुलान्त्यश्च मध्यौ सिंहादिनामकौ ।।३२।।

मिथुन, मेष, मकर और कुंभ के पहिले दूसरे और तीसरे द्रेष्काण, धनु के पहिले और तीसरे द्रेष्काण, तुला के तीसरे द्रेष्काण एवं सिंह और कन्या के दूसरे द्रेष्काण का नाम उद्यतास्त्र है।।३२।।

सर्पनिगडद्रेष्काणव्यवस्था

मीनकर्कटयोरन्त्यौ वृश्चिकस्याद्यमध्यमौ ।
सर्पाश्चत्वार एवैते द्रेष्काणा निगडाश्च ते ।।३३।।

मीन और कर्क का तीसरा द्रेष्काण वृश्चिक का पहिला और दूसरा द्रेष्काण इन चार द्रेष्काणका नाम सर्प निगड कहा जाता है।।

व्याडद्रेष्काणव्यवस्था

व्याडाः कुम्भालिमध्याद्याः कर्किमीनान्त्यसम्भवौ ।
सिंहाद्यन्त्यौ मृगान्त्यश्च तुलामध्यान्तसम्भवौ ।।३४।।

कुंभ और वृश्चिक के दूसरे तथा पहिले द्रेष्काण कर्क और मीन के तीसरे द्रेष्काण, सिंह के पहिले और तीसरे द्रेष्काण, मकर के तीसरे द्रेष्काण, एवं तुलाके दूसरे और तीसरे द्रेष्काणका नाम व्याड है।।

पाशधारिपक्षिद्रेष्काणव्यवस्था

वृषाद्यमकराद्यन्ता द्रेष्काणाः पाशधारिणः ।
तुलामध्यान्त सिंहाद्याः कुम्भाद्याः पक्षिणः स्मृताः ।।३५।।

वृष के पहिले द्रेष्काण तथा मकर के पहिले और तीसरे द्रेष्काण को पाशधारी कहते हैं। तुला के दूसरे और तीसरे द्रेष्काण, सिंह के पहिले द्रेष्काण और कुंभ के पांचवे द्रेष्काण का नाम पक्षि है।। ३५।।

त्रिंशांशविवेकः

कुजयमजीवज्ञसिताः पञ्चेन्द्रियवसुमुनीन्द्रियांशानाम् ।
विषमे समेषु तत्क्रमतस्त्रिंशांशपाः कल्प्याः ।।३६।।

अनंतर राशि (लग्न) का त्रिंशांश कथित होता है। लग्न को तीस भाग में विभक्त करने से एक एक भाग को त्रिंशांश कहा जाता है। विषम (मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुंभ) राशि के प्रथम पांच भाग का अधिपति मंगल, फिर पांच भाग का अधिपति शनि, आठ भाग का अधिपति बृहस्पति, इसके पीछे सात भाग का अधिपति बुध, और शेष पांच भाग का अधिपति शुक्र ग्रह होता है। समराशि का त्रिंशांश विपरीत भाव से देखना चाहिये अर्थात् वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशि के प्रथम पांच भाग शुक्र

के, फिर सात भाग बुध के, फिर आठ भाग बृहस्पति के पांच, भाग शनि के और शेष पांच भाग मंगल ग्रह के होंगे।।३६।।

षड्वर्गविवेक:

क्षेत्रं होराथ द्रेष्काणो नवांशो द्वादशांशक: ।
त्रिंशांशकश्च वर्गोऽयं त्र्याद्यैर्यो यस्य तस्य स: ।।३७।।

अब षड्वर्ग कथित होता है। क्षेत्र, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिशांश को षड्वर्ग कहते हैं और क्षेत्र होरा इत्यादि एक एक को भी वर्ग कहा जाता है। त्र्यादि वर्ग अर्थात् तीन वर्ग का अधिपति एक ग्रह होने पर उत्पन्न हुआ बालक उसी ग्रह के आकार को प्राप्त होता है।।३७।।

राशीनां दिग्विवेक:

प्रागादिककुभां नाथा यथासंख्यं प्रदक्षिणम् ।
मेषाद्या राशयो ज्ञेयास्त्रिरावृत्तिपरिभ्रमात् ।।३८।।

दिगधिपति राशि कथित होती है। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, और उत्तर इन चार दिशा में त्रिरावृत्ति (तीन २.बार) परिभ्रमण द्वारा मेषादि बारह राशि क्रमश: अधिपति होती हैं यथा मेष, सिंह और धनु, यह तीन राशि पूर्वदिशा की अधिपति। वृष, कन्या और मकर, दक्षिण दिशा की अधिपति। मिथुन, तुला और कुंभ, पश्चिम दिशा की अधिपति। और कर्क, वृश्चिक तथा मीन राशि उत्तर दिशा की अधिपति हैं।।३८।।

पृष्ठोदयादिविवेक:

गोजाश्विकर्किमिथुना: समृगा निशाख्या:
पृष्ठोदया विमिथुना: कथितास्त एव ।
शीर्षोदया दिनबलाश्च भवन्ति शेषा
लग्नं समेत्युभयत: पृथुरोमयुग्मम् ।।३९।।

पृष्ठोदयादिसंज्ञा कथित होती है, वृष मेष, धनु, मिथुन और मकर यह सब राशि रात्रि संज्ञक अर्थात् रात्रि में बलवान् होती हैं। मिथुन के अतिरिक्त वृष, मेष, धनु और मकर राशि को पृष्ठोदय कहा जाता है। ऊपर सब राशि अर्थात् सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और कुंभ शीर्षोदयसंज्ञा से अभिहित होती हैं और दिन में बली होती हैं। मिथुन राशि की भी शीर्षोदयसंज्ञा है। मीनलग्न की पृष्ठोदय और शीर्षोदय यह दोनों संज्ञा हैं और दिन रात्रि सब समय में ही मीन राशि बलवान् होती है।।३९।।

पत्यादियोगादिना राशिबलाबलम्

पतितं प्रियबुधसौम्योच्चरस्थैर्युतवीक्षितो बली राशिः ।
स्वल्पबलोऽन्यैर्म्मिश्रैर्मध्ये सर्व्वायुतेक्षितस्त्वबलः ।।४०।।

पत्यादि ग्रह के योगादि द्वारा राशि का बलाबल कथित होता है, यथा मेषादि राशि अपने अपने अधिपति ग्रह द्वारा. स्वस्व अधिपति ग्रह के मित्र ग्रह द्वारा शुभाशुभ युक्त बुध ग्रह द्वारा, शुभग्रह द्वारा और उच्चस्थित ग्रह द्वारा युक्त वा ईक्षित (देखी हुई) होने पर बलवान् होती हैं और पत्यादिग्रह से युक्त वा ईक्षित न होने पर प्रत्येक पाद में बली होती है। इसी प्रकार शुभग्रह के द्वारा दृष्ट होने पर चतुर्थांशबल, पाप ग्रह के देखने पर हीनबल, पत्यादिग्रह और अन्यान्य ग्रह के द्वारा वीक्षित वा युक्त होने पर मध्य बल और सब ग्रहों के द्वारा दृष्ट वा युक्त न होने से बलहीन होती है।।४०।।

केन्द्रादिस्थानबलम्

केन्द्रस्थान् प्रबलान् राशीन् मध्यान् पनफराश्रितान् ।
आपोक्लिमगतान् गार्गिः सर्वान् हीनबलान् वदेत् ।।४१।।

स्थानबल कथित होता है केन्द्र (लग्न चतुर्थ सप्तम और दशम) स्थान स्थित समस्त राशि पूर्ण बली होती हैं अर्थात् इन सब स्थानों में स्थित ग्रहगण पूर्ण बली होते हैं। पनफर अर्थात् लग्न के द्वितीय, पंचम, अष्टम और एकादश स्थान स्थित ग्रह अर्द्धबली और आपोक्लिम अर्थात् लग्न के तृतीय, षष्ठ, नवम और द्वादश स्थान स्थित ग्रह हीनबल (पादबली) होते हैं।।४१।।

राशीनां दिग्बलम्

नरास्तु बलिनो लग्ने चतुर्थे जलराशयः ।
सप्तमे वृश्चिकश्चैव दशमे पशवस्तथा ।।४२।।

राशि का दिग्बल कथित होता है, मिथुन, तुला, कुंभ, कन्या और धनु का पूर्वार्द्ध यह सब नर राशि लग्न में जाने से पूर्वदिग् बली होती है, क्योंकि राशि के उदय का नाम लग्न है और उदय भी पूर्व दिशा में ही होता है। मीन, कर्क और मकर का परार्द्ध यह जलराशि लग्न के चौथे स्थान में स्थित होने से उत्तरादिक् बली होती है, क्योंकि चक्र भ्रमण के क्रम से चतुर्थ राशि ही उत्तर दिशा में अवस्थित होती है। वृश्चिक राशि सप्तमस्थ होने से पश्चिमदिक् बली होती है। क्योंकि, लग्नसे सप्तराशि में अस्त का नियम अस्त भी पश्चिम दिशा में ही होता है। मेष, वृष, सिंह, धनु का पूर्वार्द्ध और मकर का पूर्वार्द्ध यह सब पशु राशि के लग्न के दशमस्थ होने पर दक्षिणदिक् बली होगी, क्योंकि लग्न का दशमाधिपति दक्षिण दिशा में स्थिति करता है, इसी कारण लग्न के सप्तस्थ नर राशि हीन बल होती है, दशमस्थ जलराशि भी हीनबल होती है, और लग्न के चतुर्थस्य चतुष्पादराशि और लग्नगत वृश्चिक राशि भी हीनबल होती है। परंतु जलराशि और पशुराशि लग्नगत होने पर अर्द्धबली होती है।।४२।।

राशीनां कालबलम्

दिनभागे मनुष्यास्तु निशायास्तु चतुष्पदाः ।
सन्ध्याद्वयेऽवशेषास्तु बलिनः परिकीर्तिताः ।।४३।।

दिन भाग में मनुष्य राशि (मिथुन, तुला, कुंभ, कन्या और धनु का पूर्वार्द्ध) बलवान्। रात्रिकाल में चतुष्पद अर्थात् मेष, वृष, सिंह, धनुराशि का शेषार्द्ध बलवान् दोनो संध्या में मनुष्य राशि और चतुष्पद राशि के अतिरिक्त सब राशि बलवान् होती हैं। इस स्थान में एक पाद मात्र बल जानना चाहिये।।४३।।

अंशबलाबलविवेकः

यस्तु यस्यांशपो राशेस्तद्बलादंशको बली ।
अबलस्तस्य दौर्बल्ये मध्यमे मध्यमः स्मृतः ।।४४।।

जिस राशि का जो ग्रह नवांशाधिपति है, उसके बलवान् होने पर उस राशि का वह नवांश बलवान् होता है और नवांशाधिपति के दुर्बल होने पर राशि का नवांश हीनबल और नवांशपति के मध्यम होने पर राशि का नवांश मध्यम बल होता है।।४४।।

राशीनां वश्यावश्यकथनम्

द्विपदवशगाः सर्व्वे सिंहं विहाय चतुष्पदाः,
सलिलनिलया भक्ष्या वश्याः सरीसृपजातयः ।
मृगपतिवशे तिष्ठन्त्येते सरीसृपराशयो,
ह्यकथितग्रहेष्वेवं ज्ञेयं जनव्यवहारतः ।।४५।।

सिंह राशि के अतिरिक्त समस्त चतुष्पद राशि द्विपद राशि के वशीभूत होती हैं। जलद राशि अर्थात् मीन कर्क और मकर का परार्द्ध द्विपद (मनुष्य) राशि का भक्ष्य है. जलजराशि और

सरीसृपराशि द्विपदराशि के वश्य हैं, सरीसृप के अतिरिक्त समस्त द्विपद और चतुष्पद राशि सिंह राशि के वशीभूत होती हैं। जिन राशियों का वश्या वश्य नहीं कहा गया, उनके वश्यावश्य का विचार लोक व्यवहाराधीन जानना चाहिये, जिस प्रकार वृष के वशीभूत मेष इत्यादि।।४५।।

राश्युदयकथनम्

रामोऽगवेदैर्ज्जलधिस्तु मैत्रैर्ब्बाणो रसैः पंचखसागरैश्च।
बाणः कुवेदैर्विषयोऽङ्कयुग्मैः क्रमोत्क्रमान्मेषतुलादिमानम्४६

लग्नमान कथित होता है। राम ३ तीन, अंग ७ सप्त, वेद ४ चार अर्थात् (मेष लग्न का मान ३।४७ पल) जलधि ४ चार, मैत्र १७ सत्रह (वृष का मान ४।१७ पल) वाण ५ पांच, रस ६ छै, अर्थात् (मिथुन का मान ५।६ पल) पञ्च ५ ख० शून्य सागर ४ चार (कर्क का मान ५।४० पल) बाण ५ पंच, कु १ एक, वेद ४ चार अर्थात् (सिंह का मान ५।४१ पल) विषय ५ पंच अंक ९ नौ युग्म २ दो (कन्या लग्न का मान ५।२९ पल) तुला इत्यादि का मान इसके विपरीतभाव से जानना चाहिये। अर्थात् तुला का मान ५।२९ पल, वृश्चिक का मान ५।४१ पल, धनु का मान ५।४० पल, मकर का मान ५।६ पल, कुंभ का मान ४।१७ पल, मीन का मान ३।४७ पल होता है।।४६।।

भावविवेकः

सामर्थ्यं तनु कल्प्यते समुदये वित्तं कुटुम्बं ततो,
ऽविक्रान्तिं सहजं तृतीयभवने योधं च संचिन्तयेत्।
बंधुं बाह्यसुखालयान्यपि ततो धीमन्त्रपुत्रांस्ततः,
षष्ठेऽथ क्षतविद्विषौ मदगृहे कामं स्त्रियं वर्त्म च।।४७।।

रन्ध्रायुर्मृतयोऽष्टमे गुरुतपो भाग्यानि चित्तं तत ,
मानाज्ञास्पदकर्मणां दशमभे कुर्य्यात्ततश्चिन्तनम् ।।
प्राप्त्यायावथ चिन्तयेद्भवगृहे रिःफे तु मन्त्रिव्ययौ,
सौम्यस्वामियुतेक्षणैरुपचयश्चैषां क्षति श्चान्यथा ।।४८।।

तन्वादि द्वादशभाव कथित होते हैं। लग्न में सामर्थ्य शरीर और आरोग्यता का विचार करना चाहिये। लग्न के दूसरे स्थान में वित्त (धन) और कुटुम्ब का विचार करे। लग्न के तीसरे स्थान में विक्रम, सहोदर और सैन्य का विचार करना चाहिये। चौथे स्थान में बन्धु, वाहन (सवारी) सुख और गृह की चिन्ता करे। पांचवे स्थान में बुद्धि, मंत्रण और पुत्र इन सबका विचार करे। छठे स्थान में क्षत और शत्रु की चिन्ता करनी चाहिये। सातवें स्थान में काम स्त्री और मार्ग इन सबका विचार करना उचित है। लग्न के आठवें स्थान में रन्ध्र (अपवाद) परमायु और मरण का विचार करे। नवम स्थान में गुरु (पिता माता इत्यादि) तपस्या, भाग्य और चित्त इन सबकी चिन्ता करनी चाहिये। दशवें स्थान में मान, आज्ञा, स्थान और कर्म का विचार करना उचित है। ग्यारहवें स्थान में प्राप्ति और आयकी चिंता करे। लग्न के बारहवें स्थान में मंत्री और व्यय का विचार करना चाहिये। फलतः द्वादशभाव का विचार करने के समय जो जो भाव शुभग्रहयुक्त वा स्वामिग्रहयुक्त हो अथवा शुभग्रह के द्वारा वा स्वामिग्रह के द्वारा जो जो स्थान दृष्ट हो उस उस भाव को शुभ जानना चाहिये। और इसके विपरीत अर्थात् शुभग्रह वा स्वामिग्रह के द्वारा दृष्ट अथवा युक्त न होकर केवल पापग्रह के द्वारा दृष्ट अथवा पापग्रहयुक्त होने पर उस उस भाव की हानि अर्थात् अशुभ होता है। किंतु शुभाशुभ के द्वारा दृष्ट वा शुभाशुभ युक्त होने से मिश्रफल होता है।।४७–४८।।

अरात्यादिभावापवाद:

अरातिव्रणयोः षष्ठे चाष्टमे मृत्युरन्ध्रयोः ।
व्ययस्य द्वादशस्थाने वैपरीत्येन चिन्तनम् ।।४९।।

छठे स्थान में शत्रु और व्रण की चिन्ता, आठवे स्थान में मृत्यु और रन्ध्र की चिन्ता और बारहवें स्थान में व्यय की चिन्ता विपरीतभाव से करनी चाहिये अर्थात् छठे, आठवें और बारहवें स्थान में शुभग्रह वा स्वामिग्रह के स्थित होने पर वा उक्त समस्त स्थान शुभग्रह या स्वामिग्रह के द्वारा दृष्ट होने पर छठे स्थान में शत्रु और व्रण की हानि, आठवें स्थान में मृत्यु और अपवाद की हानि और बारहवे स्थान में व्यय की हानि होगी और फिर इन सब स्थानों में पापग्रह के अवस्थित होने पर वा पाप ग्रहों के द्वारा उक्त सब स्थान दृष्ट होने पर इन सबकी वृद्धि होगी।।४९।।

उपचयविवेक:

अथोपचयसंज्ञा स्यात्त्रिलाभरिपुकर्मणाम् ।
न चेद्भवन्ति ते दृष्टाः पापस्वस्वामिशत्रुभिः ।।५०।।

उपचयादिसंज्ञा कथित होती है। राशि वा लग्न के तीसरे, ग्यारहवें, छठे और दशवें स्थान का नाम उपचय है, किंतु उक्ततृतीयादिस्थान यदि पापग्रह अथवा स्वीयस्वामिग्रह अथवा स्वामिग्रह के शत्रुग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो इन सब स्थानों की उपचयसंज्ञा नहीं होगी।।५०।।

केन्द्रादिविवेक:

केन्द्रचतुष्टयं कन्टकञ्च लग्नास्तदशचतुर्थानां संज्ञा ।
परतः पनफरमापोक्लिमसंज्ञितञ्च तत्परतः ।।५१।।

लग्न और लग्न से चौथे, सातवें और दशवें स्थान का नाम केन्द्र चतुष्टय और कन्टक है। लग्न के दूसरे, पांचवें आठवें और ग्यारहवें

स्थान का नाम पनफर है। लग्न के तीसरे, छठे, नवे और बारहवें इन सब स्थानों का नाम आपोक्लिम है।।५१।।

त्रिकोणादिविवेकः

पञ्चमं नवमञ्चैव त्रिकोणं समुदाहृतम् ।
चतुर्थमष्टमञ्चैव चतुरस्रं विदुर्बुधाः ।।५२।।

लग्न के पांचवें और नवम स्थान का नाम त्रिकोण तथा चौथे और आठवें स्थान को पण्डितों ने चतुरस्र कहा है।।५२।।

लग्नाद्दशमादिस्थाननामानि

खं मेषूरणमास्पदे मदनभे यामित्रमस्तद्युने,
द्यूनञ्चाथ सुहृद्गृहेतु हिबुकं पातालमम्भोऽपि च ।
दुश्चिक्यं सहजे वदन्ति मुनयो रिक्तं तथा द्वादशे,
षट्कोणं रिपुमन्दिरे नवमभे त्र्याद्यं त्रिकोणं पुनः ।।५३।।

इति राशिनिर्णयोनाम प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

लग्न के दशवें स्थान का नाम ख अर्थात् आकाश पर्यायिक शब्द और मेषूरण सातवें स्थान का नाम यामित्र, अस्त, द्युन और द्यून चौथे स्थान का नाम हिबुक, पाताल और जलपर्यायिक शब्द तीसरे स्थान का नाम दुश्चिक्य, बारहवें स्थान का नाम रिःफ, छठे स्थान का नाम षट्कोण और नवें स्थान का नाम त्रिकोण होता है।।५३।।

इति श्री शुद्धिदीपका भाषाटीकायां राशिनिर्णयो
नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

द्वितीयोऽध्यायः

कालनरस्यात्मादिव्यवस्था ग्रहाणां नृपत्वादिव्यवस्था च ।

कालात्मा दिनकृन्मनस्तु हिमगुः सत्वं कुजोज्ञो वचो,
जीवो ज्ञानसुखे सितश्च मदनो दुःखं दिनेशात्मजः ।
राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतौ नेता कुमारो बुधो,
जीवो दानवपूजितश्च सचिवः प्रेष्यः सहस्रांशुजः ।।१।।

ग्रहनिर्णयाध्याय कहा जाता है। इस अध्याय में ग्रहों का कालरूप और नृपादि संज्ञा का वर्णन किया जायगा। कालपुरुष का सूर्य आत्मा, चन्द्र, मन, मंगल सत्व अर्थात् शौर्य, बुध वाक्य, बृहस्पति ज्ञान और सुख, शुक्र और शनि दुःख, रवि और चन्द्र यह दोनों ग्रह राजा, मंगल, सेनापति, बुध युवराज, बृहस्पति और शुक्र मंत्री तथा शनि ग्रह भृत्य हैं।।१।।

आत्मादिग्रहाणां नृपत्वादिग्रहाणां च बलाबलवशात्
पुरुषस्यात्मादीनां बलाबलत्वनिर्णयो नृपत्वादिनिर्णयश्च ।

बलाबलाद्ग्रहाणां स्यादात्मादीनां बलाबलम् ।
नृपाद्याः प्रबलाः कुर्य्युः स्वं रूपं शनिरन्यथा ।।२।।

पूर्व वचनोक्त आत्मादि ग्रहों के और नृपादिग्रहों के बलाबल द्वारा पुरुष की आत्मादि का बलाबल निर्णय और नृपादि निर्णय होता है। ग्रहों के बलवान् होने पर आत्मादि भी बलवान् होता है और ग्रहों के हीनबल होने पर आत्मादि दुर्बल होता है, किंतु शनिग्रह इसके विपरीत फल देता है। अर्थात् बलवान् होने से थोड़ा

दुःख और हीनबल होने से अधिक दुःख देता है। जन्म समय में नृपादि (सूर्यादि) ग्रह के प्रबल होने से नृपत्वादि (राज्यपद प्राप्ति को) प्रदान करते हैं और शनि इसके विपरीत फल देता है अर्थात् ग्रह प्रबल होने पर प्रेष्यत्व (सेवकत्व) नष्ट करता है और दुर्बल होने पर प्रेष्यत्व की वृद्धि करता है।।२।।

ग्रहाणां वर्णकथनम्

रक्तश्यामो भास्करो गौर इन्दुः,
नात्युच्चाङ्गो रक्तगौरश्च वक्रः ।
दूर्व्वाश्यामो ज्ञो गुरुगौरगात्रः,
श्यामः शुक्रो भास्करिः कृष्णदेहः ।।३।।

ग्रहों का वर्ण कथित होता है। सूर्य ग्रह रक्त श्याम वर्ण चन्द्र गौरवर्ण, मंगल अनुच्चाङ्ग (ठिंगना) और रक्तगौर वर्ण, बुध दूर्व्वादल श्यामवर्ण, बृहस्पति गौरवर्ण, शुक्र श्याम वर्ण और शनि ग्रह कृष्णवर्ण है।।३।।

ग्रहाणां विशेषसंज्ञाकथनम् ।

हेलिः सूर्य्यश्चन्द्रमाः शीतरश्मिः,
हेमा विज्ज्ञो बोधन श्चेन्दुपुत्रः ।
आरोवक्रः क्रूरदृक्चावनेयः,
कालो मन्दः सूर्य्यपुत्रोऽसितश्च ।।४।।
जीवोऽङ्गिराः सुरगुरुर्व्वचसां पतीज्यौ,
शुक्रो भृगुर्भृगुसुतः सित आस्कुजिच्च ।
राहुस्तमोऽगुरसुरश्च शिखी च केतुः,
पर्य्यायमन्यमुपलभ्य वदेच्च लोकात् ।।५।।

ग्रहों की संज्ञान्तर कथित होती है। यथा सूर्य का नामांतर हेलि, चंद्र का अन्यनाम शीतरश्मि, बुध का नाम हेमन्, विद्, ज्ञ, इन्दुपुत्र,

मंगल के नाम आर, वक्र, क्रूरदृक् और आवनेय, शनि का नाम काल, मन्द, सूर्यपुत्र और असित, बृहस्पति का अन्यनाम जीव, अंगिरा, सुरगुरु, वचसां पति, और इज्य, शुक्र का नाम शुक्र, भृगु, भृगुसुत, सित और आस्कुजित, राहु का नाम तम अगु और असुर केतु का नामांतर शिखी, इनके अतिरिक्त ग्रहों के और जो सब नाम हैं, वह लोक परंपरा से जानने।।४–५।।

पापसौम्यविवेकः

अर्द्धोनेन्द्वर्कसौरारारा: पापा ज्ञस्तैर्युतोऽपरे ।
शुभाः पापौ तमःकेतू विष्णुधर्मोत्तरोदितौ ।।६।।

पापग्रह और शुभग्रह का निर्णय होता है। अर्द्ध ऊन अर्थात् कृष्णाष्टमी के पर से शुक्लाष्टमी पर्यंत चन्द्र और रवि, शनि और मंगल, एवं पापयुक्त बुध, पापग्रह। अपर अर्थात् पूर्णचन्द्र बृहस्पति और शुक्र तथा पाप अयुक्त बुध, यह सब शुभग्रह एवं राहु और केतु विष्णुधर्मोत्तर ग्रंथ के मत से पापग्रह हैं।।६।।

दिक्पतिविवेकः ।

सूर्य्यः शुक्रः क्षमापुत्रः सैंहिकेयः शनिः शशी ।
सौम्यस्त्रिदशमंत्री च प्राच्यादिदिगधीश्वराः ।।७।।

दिक्पति कथित होते हैं। सूर्यग्रह पूर्वदिशा का अधिपति, शुक्र अग्निकोण का अधिपति, मंगल दक्षिण दिशा का अधिपति, राहु नैऋतकोण का अधिपति, शनि पश्चिम दिशा का अधिपति, चन्द्र वायुकोण का अधिपति, बुध उत्तर दिशा का अधिपति, और बृहस्पति ईशानकोण का अधिपति होता है।।७।।

जात्यधिपकथनम्

ब्राह्मणे शुक्रवागीशौ क्षत्रिये भौमभास्करौ ।
चन्द्रो वैश्ये बुधः शूद्रे पतिर्मन्दोऽन्त्यजे जने ।।८।।

जाति के अधिपति कथित होते हैं। शुक्र और बृहस्पति, ब्राह्मण जाति के अधिपति, मंगल और सूर्य क्षत्रियजाति के अधिपति, चन्द्र वैश्य जाति का अधिपति, बुध, शूद्र जाति का अधिपति और शनिग्रह अन्त्यज जाति का अधिपति है।।८।।

वेदाधिपकथनम्

ऋग्वेदाधिपतिर्जीवो यजुर्व्वेदाधिपः सितः ।
सामवेदाधिपो भौमः शशिजोऽथर्व्ववेदराट् ।।९।।

वेदाधिपति कहते हैं। ऋग्वेद का अधिपति बृहस्पति, यजुर्वेद का अधिपति शुक्र, सामवेद का अधिपति मंगल और अथर्ववेद का अधिपति बुध ग्रह है।।९।।

पुरुषशद्यधिपकथनम्

पुंसां सूर्य्यारवागीशा योषितां चन्द्रभार्गवौ ।
क्लीबानां बुधमन्दौ च पतयः परिकीर्त्तिताः ।।१०।।

पुरुषादि अधिपति कथित होते हैं। सूर्य, मंगल और बृहस्पति, पुरुष के अधिपति, चन्द्र और शुक्र स्त्री जाति के अधिपति तथा बुध और शनि क्लीब जाति के अधिपति हैं।।१०।।

ग्रहाणां नैसर्गिकमित्रकथनम्

मित्राणि सूर्य्याच्छशिभौमजीवाः,
सूर्य्येन्दुजौ सूर्यशशाङ्कजीवाः ।
आदित्यशुक्रौ रविचन्द्रभौमा,
बुधार्कजौ चन्द्रजभार्गवौ च ।।११।।

ग्रहों के नैसर्गिक (स्वाभाविक) मित्र कथित होते हैं चन्द्र, मंगल और बृहस्पति रवि के मित्र, सूर्य और बुध चन्द्र के मित्र, सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति मंगल के मित्र, रवि और शुक्र बुध के मित्र, रवि चन्द्र और मंगल बृहस्पति के मित्र, बुध और शनि शुक्र के मित्र एवं

बुध और शुक्र और शनि के मित्र हैं।।११।।

सूर्यादिक्रमेण नैसर्गिकशत्रुकथनम्

सितासितौ चन्द्रमसो न कश्चिद्,
बुधः शशी सौम्यसितौ रवीन्दू,
रवीन्दुभौमा रवितस्त्वमित्रा,
मित्रारिशेषश्च समः प्रदिष्टः ।।१२।।

ग्रहों के स्वाभाविक शत्रु कथित होते हैं। सूर्य का शत्रु शुक्र और शनि, चन्द्र का शत्रु नहीं है, मंगल का शत्रु बुध,बुध का शत्रु चन्द्र, बृहस्पति का शत्रु बुध और शुक्र, शुक्र का शत्रु रवि और चन्द्र एवं शनि का शत्रु रवि, चन्द्र और मंगल होता है और मित्र तथा शत्रु के अतिरिक्त ग्रह समसंज्ञा में अभिहित होते हैं।।१२।।

तत्कालमित्रारिविवेकः

हितसमरिपुसंज्ञा ये निसर्गे रिरुक्ता,
अधिहितहितमध्यास्तेऽपि तत्कालमित्रैः ।
रिपुसमसुहृदाख्या ये निसर्गे प्रदिष्टा,
ह्यधिरिपुरिपुमध्याः शत्रुभिश्चिन्तनीयाः ।।१३।।

ग्रहों के अधिमित्रादि कथित होते हैं। ग्रहों में जो जिसका स्वाभाविक मित्र सम और शत्रु होता है वह तात्कालिक मित्र होने पर क्रमशः अधिमित्र, मित्र, और सम होता है अर्थात् स्वाभाविक मित्र, तात्कालिक मित्र होने पर अधिमित्र स्वाभाविक सम तात्कालिक मित्र होने पर मित्र और स्वाभानिक शत्रु तात्कालिक मित्र होने से सम होगा जो स्वाभाविक शत्रु सम और मित्र कहकर कथित है, वह तात्कालिक शत्रु होने पर क्रमशः अधिशत्रु शत्रु और सम नाम से विख्यात होगा अर्थात् स्वाभाविक शत्रु तात्कालिक शत्रु होने पर अधिशत्रु, स्वाभाविक समतात्कालिक शत्रु होने से शत्रु

और स्वाभाविक मित्र तात्कालिक शत्रु होने से सम होगा।।१३।।

ग्रहाणां दृष्टिस्थाननिर्णयः

त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तगानवलोकयन्ति चरणाभिवृद्धितः।
रविजामरेज्यरुधिराः परे च ये क्रमशो भवन्ति किल वीक्षणेऽधिकाः ।।१४।।

अब ग्रहों की दृष्टि होती है। तीसरे और दशवें स्थान में, नवें और पांचवें घर में चौथे और आठवें स्थान में एवं सातवें घर में एक एक पाद वृद्धि क्रम से ग्रहों की दृष्टि रहती है। किंतु तीसरे और दशवें स्थान में शनिग्रह की पूर्णदृष्टि नवे और पांचवें स्थान में बृहस्पति की पूर्णदृष्टि, चौथे और आठवे स्थान में मंगल की पूर्णदृष्टि और सातवें स्थान में रवि, चन्द्र, बुध, शुक्र, शनि बृहस्पति और मंगल की भी संपूर्ण दृष्टि होती है।।१४।।

ग्रहाणां स्थानबलम्

स्वोच्चत्रिकोणहित भस्वगृहादिवर्ग,
संस्थाः समे शशिसितौ विषमेऽवशेषाः ।
पुंस्त्रीनपुंसकखगाभमुखान्त्यमध्य,
संस्थाः शुभेक्षितयुताः स्थितिवीर्य्यवन्तः ।।१५।।

त्रिकोण, मित्रगृह, अपने गृह, अपने होरा, अपने द्रेष्काण, अपने नवांश, अपने द्वादशांश, और अपने त्रिंशांश में ग्रहों के स्थित होने पर स्थान बली होते हैं। इसी प्रकार सम (वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन) राशि में चन्द्र और शुक्र बलवान् विषम (मेष, मिथुन, सिंह, तुला धनु और कुंभ) राशि में रवि, मंगल, बुध, बृहस्पति, और शनिग्रह बलवान् होता है और रवि, बृहस्पति तथा मंगल यह पुंग्रह राशि के प्रथम द्रेष्काण में शुक्र और चन्द्र यह दोनों

स्त्रीग्रह दूसरे द्रेष्काण में बलवान् रहते हैं शुभग्रह दृष्ट वा शुभग्रह युक्त ग्रहगण भी स्थान बली होते हैं।।१५।।

स्थानबलात् श्रेष्ठमध्याल्पत्वनिर्णयः

स्वोच्चे स्थिताः श्रेष्ठबला भवन्ति,
मूलत्रिकोणे स्वगृहे च मध्याः ।
इष्टेक्षिता मित्रगृहाश्रिता वा,
वीर्यं कनीयः समुपावहन्ति ।।१६।।

स्थानबल के संबंध में विशेष कथित होता है। ग्रह उच्च राशि में स्थित होने से पूर्ण बली, मूल त्रिकोण में होने से त्रिपाद बली और स्वीय घर वा स्वीय होरादि में स्थित होने से अर्द्धबली होते हैं और ग्रहद्वारा दृष्ट वा मित्रादि वर्गस्थ होने से पादमात्र बली होते हैं।।१६।।

ग्रहाणां दिग्बलम्

लग्ने सौम्यसुराचार्य्यौ कुजार्कौ दशमे तथा ।
द्यूने सौरिश्चतुर्थे तु सितेन्दू दिग्बलान्वितौ ।।१७।।

दिग्बल वर्णित होता है। लग्न में बुध और बृहस्पति होने से पूर्वदिग्बली होते हैं, क्योंकि राशि के उदय का नाम लग्न है और वह लग्न पूर्वदिशा में ही उदय होती है लग्न के दशम राशि में स्थित मंगल और रवि दक्षिण दिग्बली हैं क्योंकि, लग्न की दशम राशि दक्षिण दिशा में ही वास करती है, लग्न के सप्तम राशिस्थ शनि पश्चिम दिग्बली है क्योंकि सप्तम राशि में अस्त होता है और वह अस्त पश्चिम दिशा में ही होता है, लग्न की चतुर्थ राशि में स्थित शुक्र और चन्द्र उत्तर दिग्बली हैं, क्योंकि लग्न का चतुर्थ राशि चक्रभ्रमण क्रम से उत्तर दिशा में ही स्थित रहता है।।१७।।

ग्रहाणां चेष्टाबलम्

नरयुवतिविहङ्गा राशिषट्के मृगादौ,
शनिरपि शशिभादौ चन्द्रजस्तूभयस्थः ।
विपुलविमलदेहा वक्रिणः सूर्यमुक्ताः ,
शशियुतिजयभाजश्चेष्टया वीर्यवन्तः ।।१८।।

चेष्टा बल कथित होता है। नरग्रह (पुंग्रह) रवि, मंगल और बृहस्पति, स्त्रीग्रह, चन्द्र और शुक्र यह मकर से मिथुन पर्यंत छः राशि में बलवान् रहते हैं अर्थात् मकर राशि से दश दश पल वृद्धि क्रम से मिथुन राशि में पूर्णबली होते हैं, फिर कर्क से दश दश पल हानि क्रम से धनुराशि में संपूर्ण बलहीन होते हैं। शनि कर्क राशि से दश दश पल हानि क्रम से मिथुन राशि में संपूर्ण बलहीन रहता है। बुध ग्रह मिथुन और धनुराशि में अर्द्धबली होता हैं, किंतु दोनों राशि में दश दश पल हानि और वृद्धि द्वारा विचारना होगा मंगलादि ग्रहगण अतिशय, साफ रश्मियुक्त होनेसे एक पाद मात्र बली होते हैं, अनस्तगतवक्री ग्रह संपूर्ण बली होते हैं। बुध और शुक्र ग्रह वक्री अवस्था में पादस्थ होने पर उनका बलीभाव होता है, चंद्रयुक्त ग्रह और युद्धविजयी ग्रहगण एकपाद मात्र बली होते हैं, इसी समस्त बल को चेष्टाबल कहा जाता है।।१८।।

ग्रहाणां पक्षो बलित्वं वत्सरमासद्युकाल होराधिपानां पाठ क्रमेण यथोत्तरमधिकबलित्वं ग्रहाणां दिनरात्रिबलित्वञ्च दर्शितम् ।।

सौम्याः सितेऽन्यतोऽन्ये वत्सरमासाद्युकालहोरेशाः ।
बलिनोऽह्नचर्केज्यसिता द्युनिशं ज्ञो नक्तमिन्दुकुज सौराः ।।

ग्रहों का पक्षादिबल कथित होता है शुभग्रह शुक्लपक्ष में बलवान् होते हैं और कृष्णपक्ष में अशुभ ग्रह (रवि, मंगल, शनि और पापयुक्त बुध) बलवान् होते हैं। शुक्ल प्रतिपदा से प्रतितिथि में चार चार पल वृद्धिक्रम से पूर्णिमा तिथि में शुभग्रह संपूर्ण बली होते हैं और कृष्णप्रतिपदा से प्रतितिथि में चार चार पल ह्रासक्रम से अमावास्या में संपूर्ण बलहीन होते हैं कृष्ण प्रतिपदा से प्रतितिथि में चार चार वृद्धि क्रम से अमावस्यातिथि में पापग्रह संपूर्ण बली होते हैं और शुक्लप्रतिपदा से प्रतितिथि में चार चार पल ह्रास क्रम से पौर्णमासी में संपूर्ण बलहीन होते हैं। वत्सराधि पति, मासाधिपति, दिवाधिपति, और कालहोराधिपति बलवान् होता है अर्थात् वर्षाधिपति पादबली, मासाधिपति द्विपादबली, दिनाधिपति त्रिपादबली, और कालहोराधिपति संपूर्ण बली होता है। दिन में रवि, बृहस्पति और शुक्र ग्रह बलवान् रहता है; बुध ग्रह दिन रात इन दोनों में समान बलवान् है। रात्रि में चन्द्र मंगल और शनैश्चर संपूर्ण बलवान् होते हैं।।१९।।

चन्द्रबलम् ।

(अत्र तु पापग्रहणे क्षीणेन्दोर्न ग्रहणम् । यथाहयवनेश्वरः)
मासे तु शुक्लप्रतिपक्षवृते पूर्व्वे शशी मध्यबलो दशाहे ।
श्रेष्ठो द्वितीयेऽल्पबलस्तृतीये सौम्यैस्तु दृष्टो बलवान्सदैव ।।

चंद्र संबंध में पक्षबल कथित होता है यथा;—यवनेश्वर (यवनाचार्य) ने कहा है कि, शुक्लपक्ष की प्रतिपद से दशमीपर्यंत दश दिन चन्द्र मध्यबली होता है शुक्ल एकादशी से कृष्णपंचमी पर्यंत मध्य दश दिन चंद्र संपूर्ण बलवान् रहता है। कृष्ण छठ से अमावस्या पर्यंत तृतीय दशदिन चन्द्र अल्पबली होता है किंतु

शुभग्रह द्वारा चन्द्रग्रह दृष्ट होने से सदा ही बलवान् रहता है।।२०।।

ग्रहाणां ऋतुबलम्

शनिशुक्रकुजेन्दुज्ञगुरुवः शिशिरादिषु ।
भवन्ति कालबलिनो ग्रीष्मे सूर्यस्तथैव च ।।२१।।

ऋतुबल कथित होता है शनि, शुक्र, मंगल, चन्द्र, बुध, और बृहस्पति ग्रह यह शिशिरादि छः ऋतुओं में क्रमशः बलवान् होते हैं अर्थात् शिशिर ऋतु में शनि, वसन्त में शुक्र, ग्रीष्म में मंगल, वर्षा में चन्द्र, शरत्काल में बुध और हेमंत में बृहस्पति बलवान् होता है और ग्रीष्म काल में सूर्य ग्रह भी बलवान् होता है।।२१।।

ग्रहाणां दिनरात्र्यर्द्धभागबलं त्रिभागबलञ्च ।

बलिनः सौम्याऽसौम्याः क्रमेण पूर्वपरार्द्धयोर्द्युनिशोः ।
ज्ञरविशनीन्दुसितारास्त्र्यंशेषु गुरुस्तु सर्वत्र ।।२२।।

ग्रहों के बल संबंध में दिन रात्रि भेद का विशेष कथित होता है शुभग्रह दिन और रात्रि के पूर्वार्द्ध में बलवान् होते हैं और पापग्रह दिन एवं रात्रि के शेषार्द्ध में बलवान् होते हैं। यह बल पादमात्र जानना चाहिये। दिन और रात्रि को तीन भाग में विभक्त करने से उसके एक एक भाग में क्रमशः बुध, रवि, शनि, एवं चन्द्र, शुक्र और मंगल बलवान् होता है अर्थात् दिन के प्रथम भाग में बुध, दूसरे भाग में रवि, और तीसरे भाग में शनि बलवान् होता है। रात्रि के प्रथम, दूसरे भाग में शुक्र और तीसरे भाग में मंगल बलवान् होता है। बृहस्पति दिन वा रात्रि सब समय में ही बलवान् रहता है, यह सब पूर्ण बल (षष्टिकला) जानने चाहिये।।२२।।

ग्रहाणां प्रहरबलमर्द्धप्रहरबलञ्च

नित्यं यास्येष्वर्कज्ञगुरुसितेन्द्वारशनिबुधा बलिनः ।
द्युनिशोः षडिषुक्रमतो वारेशादर्द्धयामेषु ।।२३।।

यामार्द्धादिबल कथित होता है दिन रात्रि के आठ याम में क्रमशः रवि, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्र, मंगल, शनि और बुध बलवान् होता है यह याम (प्रहर) एक पादमात्र जानना चाहिये। दिनमान और रात्रिमान को आठ आठ भाग में विभक्त करने से उसके एक एक भाग का नाम यामार्द्ध है। दिन में वाराधिपतिसे क्रमशः छै छै ग्रह और रात्रिकाल में वाराधिपति से क्रमशः पांच पांच ग्रह द्वितीय तृतीयादि यामार्द्ध में संपूर्ण बलवान् होते हैं, यथा रविवार में दिन में प्रथमयामार्द्ध में रवि, दूसरे यामार्द्ध में शुक्र, तीसरे यामार्द्ध में बुध, चौथे यामार्द्ध में चन्द्र, पांचवें यामार्द्ध में शनि, छठे यामार्द्ध में बृहस्पति सातवें यामार्द्ध में मंगल, और आठवें यामार्द्ध में फिर रवि संपूर्ण बलवान् होता है। रविवार रात्रि में प्रथमयामार्द्ध में रवि, दूसरे यामार्द्ध में बृहस्पति, तीसरे यामार्द्ध में चन्द्र, चौथे यामार्द्ध में शुक्र, पांचवें यामार्द्ध में मंगल, छठे यामार्द्ध में शनि, सातवें यामार्द्ध में बुध और फिर आठवें यामार्द्ध में रवि संपूर्ण बली रहता है। इसी प्रकार दिन रात्रि में क्रमशः षष्ठ और पंचम गणना से अन्यान्यवार में भी यामार्द्ध के फल का विचार करना चाहिये।।२३।।

ग्रहाणां निसर्गबलकथनम् ।

मन्दारसौम्यवाक्यपतिसितचन्दार्का यथोत्तरं बलिनः ।
नैसर्गिकबलमेतल्लग्नस्य स्वामिना चिन्त्यम् ।।२४।।

ग्रह और लग्न का नैसर्गिक बल कथित होता है शनि, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्र और रवि यह सब ग्रह क्रमशः उत्तरोत्तर

बलवान् होते हैं। शनैश्चर ग्रह का बल चतुस्त्रिंशत् विपलाधिक अष्ट पल। मंगल का बल इससे दूना १७।८ विपल, बुध का बल तिगुना २५।४२ विपल, बृहस्पति का बल चौगुना ३४।१६ विपल, शुक्र का बल पंचगुना ४२।५० विपल, चन्द्र का बल छै गुना ५१।२४ विपल, और रवि का बल संपूर्ण है, ग्रहों का यह नैसर्गिक बल सदा ही विद्यमान रहता है लग्न का बल लग्न के स्वामि ग्रह द्वारा विचारे अर्थात् लग्नाधिपति ग्रह का जो बल उक्त है, लग्न का भी वही बल होगा।।२४।।

मांडव्योक्तगोचरः ।

केतूपप्लवभौममन्दगतयःषट्दिक्त्रिसंस्थाः शुभाः,
चन्द्रार्कावपि ते च तौ च दशमौ चन्द्रः पुनः सप्तमः ।
सप्तनवद्विपंचमगतो युग्मेषु सोमात्मजः,
शुक्रः षड्दशसप्त वर्ज्जमितरे सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः ।।२५।।

अब मांडव्योक्त गोचर शुद्धि कथित होती है। जन्म राशि के तीसरे छठे और दशमस्थ केतु, राहु मंगल, शनि और रवि ग्रह शुभफल दाता होते हैं। तीसरा, छठा, दशवां और सप्तमस्थ चन्द्र शुभफल देता है, बृहस्पति जन्म राशि से सातवीं, नवीं, दूसरी और पांचवीं राशि में स्थित होने से शुभदायक होता है, बुध दूसरे, चौथे, छठे, आठवें, दशवें और बारहवें स्थान में होने से शुभफल देता है, शुक्र छठे, दशवें और सातवें के अतिरिक्त स्थान में शुभप्रद होता है और जन्म राशि से ग्यारहवें स्थान में सभी ग्रह शुभफल देते हैं।।२५।।

वराहोक्तगोचरोऽयम्

सूर्य्यः षट्त्रिदशस्थितस्त्रिदशषट्सप्ताद्यगश्चन्द्रमा,
जीवाः सप्तनवद्विपंचमगतो वक्रार्कजः षट्त्रिगौ ।

सौम्यः षड्द्विचतुर्दशाष्टमगतः सर्वेऽप्युपान्ते शुभा शुक्रः,
षड्दश सप्तमर्क्षसहितः शार्दूलवत्रासकृत् ।।२६।।

वराहोक्त गोचर शुद्धि कथित होती है। जन्म राशि से छठे तीसरे और दशमस्थ रवि, शुक्र तीसरे, दशवें छठे, सातवें, और जन्मस्थ चन्द्र शुभ, सातवें, नौवें, दूसरे और पंचमस्थित बृहस्पति शुभ, मंगल और शनि छठे तीसरे और दममस्थ शुभ, छठे, दूसरे, चौथे, दशवें, आठवें और (द्वादश) स्थित बुध शुभ है जन्म राशि से एकादशस्थित सभी ग्रह शुभदायक होते हैं एवं छठे दशवें और सप्त स्थित शुक्र व्याघ्र की समान त्रास उत्पन्न कराते हैं।।२६।।

गोचरशुभाशुभकालनिर्णयः

दिनकररुधिरौ प्रवेशकाले,
गुरुभृगुजौ भवनस्य मध्ययातौ ।
रविसुतशशिनौ विनिर्गमस्थौ ,
शशि तनयः फलदस्तु सर्वकालम् ।।२७।।

ग्रहों के गोचर संबंध में शुभाशुभ वर्णित होता है। रवि और मंगल ग्रह राशि में प्रवेश काल में अर्थात् राशि के प्रथम भाग में गोचर में शुभाशुभ फल देते हैं। बृहस्पति और शुक्र ग्रह राशि के मध्यभाग में अवस्थान काल में गोचर में शुभाशुभ फल प्रदान करते रहते हैं और शनि तथा चन्द्र विनिर्गम समय में अर्थात् राशि के तीसरे भाग में शुभाशुभ दायक होते हैं और बुध ग्रह सदा ही फल देता रहता है।।२७।।

गोचरापवादः

गोचरपीडायामपि राशिर्बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः ।
पीडां न करोति तथा क्रूरैरेवं विपर्य्यासः ।।२८।।

गोचरापवाद कथित होता है। गोचर में अनिष्टकर राशि यदि

शुभग्रह के द्वारा दृष्ट हो तो अशुभफल प्रदान नहीं करती, किंतु पापग्रहकर्तृक दृष्टगोचरस्थ पीड़ाकर राशि अधिक अशुभ प्रदान करती है, इसका तात्पर्य यही है कि गोचरस्थ पीड़ाकर राशि शुभ बलवान् ग्रह के द्वारा दृष्ट होने पर इस राशि गत जो सब पीड़ा उक्त हुई है, वह नहीं होती गोचर में राशि शुभ होने पर यदि शुभग्रह के द्वारा दृष्ट हो, तो अधिक शुभ होगा, किंतु गोचर में शुभ होकर भी यदि पापग्रह के द्वारा दृष्ट हो, तो शुभ नहीं होगा, और गोचरस्थ पीड़ाकर राशि अशुभग्रह के द्वारा दृष्ट होने पर अधिक अशुभ होगा॥२८॥

अथाष्टवर्गः–तत्र सूर्य्यस्य

स्वाद्दिनकृच्छुभः क्षितिपक्षसमुद्रनगादिकपंचगतो १।२।४।७।८।९।१०।११ऽथ विभावरीभर्त्तुस्त्र्यंगदशेशगतो ॥ ३।६।१०।११ऽथ कुजादिनवत् १।२।४।७।८।९।१०।११ अथ सोमसुतात्त्रिशरर्त्तुनवादिषु पातः ३।५।६।९।१०।११।१२। अथ देवगुरोर्व्विषयर्त्तुनवेशगतो ५।६।९।११ऽथ सुरारिगुरोः समयाचलभास्करयातः ६।७।१२ अथ तीक्ष्णमरीचिसुतादपि भास्करवत् १।२।४।७।८।९।१०।११ अथ लग्नगृहात्त्रिकृतांगदशादिषु यातः ३।४।६।१०।११।१२। उदयाद्रिभुजंगविलासाभिधानमालादण्डकेनादित्याष्टवर्गः। रविरेखा ४८॥२९॥

अष्टवर्ग कथित होता है जन्म समय में राशिचक्र अर्थात् मनुष्य के जन्म समय में जो ग्रह जिस राशि में अवस्थित हो, वह ग्रह उसी उसी राशि में स्थापन पूर्वक जिस लग्न में जन्म हो, उसको भी 'लं' चिह्न से यथा स्थान में अंकित करै, फिर जिस जिस स्थान में रेखा पात का अंक है, उसी उसी स्थान में रेखापात करके वक्ष्यमाण (कहे

हुए) नियमानुसार शुभाशुभ विचारना चाहिये। रवि का अष्टवर्ग करना हो तो रविग्रह जिस स्थान में स्थित हो उसी स्थान से पहिले, दूसरे, चौथे सातवें, आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें घर में एक एक रेखापात करै और चन्द्र जिस स्थान में है, उस घर से तीसरे, छठे, दशवें और ग्यारहवें घर में एक एक रेखापात करै। इस प्रकार मंगल से पहिले, दूसरे, चौथे, सातवें, आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें घर में बुध से तीसरे, पांचवें, छठे, नवें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें घर में बृहस्पति से पांचवें, छठे, नवें और ग्यारहवें घर में, शुक्र से छठे सातवें और बारहवें घर में, शनि से पहिले, दूसरे, चौथे, सातवें, आठवें, नवें, दशवें, और ग्यारहवें घर में और लग्न से तीसरे, चौथे, छठे, सातवें, ग्यारहवें और बारहवें घर में एक एक रेखा अंकित करनी चाहिये। रवि के अष्टवर्ग में रेखा ४८ अढतालीस होंगी।।२९।।

चन्द्रस्य

चन्द्रः शुभोऽर्कात्त्रिकालाद्रिदन्ताबलाशाशिवस्थः ३।६।८। १०।११ ततः स्वात्कुरामर्त्त्वगाशाशिवस्थः।१।३।६।७ ।१०।११ क्ष्माजाद्द्विवह्नीषु षडंकदिगीशे २।३।५।९।१०। ११। ष्वथज्ञात् ।। कुरामाब्धिबाणागदन्तावलाशाशिवस्थो १।३।४।५।७।८।१०।११ ऽथजीवात् कुद्दग्वेद शैलेभकाष्ठाशिवस्थो ।। १।२।४।७।८।१०।११। ऽथशुक्रात् त्रिवेदेषुशैलग्रहाशाशिवस्थः।३।४।५।७। ९।१०।११ तीक्ष्णां शुदेहोद्भवाद्रामबाणर्त्तुशम्भुस्थितो ३।५।६।११ ऽथोदयात् हव्यवाहर्तुकाष्ठाशिवस्थः।३। ६। १० ११ कामवाणाभिधानमालादण्डकेन चन्द्राष्टवर्गः चन्द्ररेखा ४९ ।।३०।।

चन्द्र के अष्टवर्ग में और रवि से तीसरे, छठे, सात्तवें, आठवें, दशवें, और ग्यारहवें घर में, चन्द्र से पहले, तीसरे छठे, सातवें, दशवें और ग्यारहवें घर में मंगल से दूसरे तीसरे पांचवे, छठे, नवें, दशवें और ग्यारहवें, घर में, बुध से पहले तीसरे, चौथे, पांचवें, सातवें, आठवें, दशवें और ग्यारहवें घर में, बृहस्पति से पहिले, दूसरे, चौथे, सातवें, आठवें दशवें और ग्यारहवें घर में, शुक्र से तीसरे चौथे, पांचवें, सातवें, नौवें, दशवें और ग्यारहवें, घर में शनि से तीसरे पांचवें, छठे, और ग्यारहवें घर में और लग्न से तीसरे छठे दशवें और ग्यारहवें घर में रेखापात करै। चन्द्र के अष्टवर्ग में ४९ उनचास रेखा पतित होंगी।।३०।।

कुजस्य ।

कुजोऽर्काच्छुभोवह्निबाणर्त्तुदिक्शम्भुगो ३ । ५।६।१० ।११ ऽथेन्दुतोरामकालेशग ३ । ६ । ११ स्ततः स्वात् कुदृग्वेदसप्ताष्टदिक्शम्भुगो १।२।४।७।८।१०।११ ऽनिशानाथपुत्राद् गुणेष्वङ्गरुद्रोपयातः ३।५।६।११ ततो जीवतः कालकाष्ठशिवार्कोपयातो ६।१०।११।१२ ऽथ देवारिपूज्यादनेहोगजेशार्कयातः ६ । ८ । ११ । १२ ततः सूर्य्यपुत्रात कुवेदागनागग्रहाशाभवस्थो १।४।७।८।९। १०। ११ ऽथलग्नात् कुरामाङ्गदिक् शम्भुयातः १ । ३ । ६ । १० । ११ सिंहलीलाभिधानमालादण्डकेन भौमाष्टवर्गः । कुजरेखा ३९ ।।३१।।

मंगल के अष्टवर्ग में रवि से तीसरे, पांचवें, छठें, दशवें, और ग्यारहवें घर में, चन्द्र से तीसरे, छठे और ग्यारहवें घर में, मंगल से पहिले, दूसरे, चौथे, सातवें, आठवें, दशवें, और ग्यारहवें घर में, बुध से तीसरे, पांचवें, छठे, और ग्यारहवें घर में बृहस्पति से छठे,

दशवें, ग्यारहवें और बारहवें घर में शुक्र से छठे, आठवें, ग्यारहवें और बारहवें घर में, शनि से पहिले, चौथे, सातवें, आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें घर में और लग्न से पहिले, तीसरे छठे, दशवें, और ग्यारहवें घर में रेखापात करे मंगल के अष्टवर्ग में ३९ उनतालीस रेखा पड़ेंगी।।३१।।

बुधस्य ।

ज्ञः शुभोऽर्कात् शरर्त्तुगःशिवार्कगो ५ । ६ । ९ । ११ । १२ ऽथ चन्द्रतो द्विवेदकालनागदिङ्महेश्वरेषु २ । ४ । ६ । ८ । १० । ११ भूमिजात कुदृक्कृतांगनागगोदशेशगः १ । २ । ४ । ६ । ८ । ९ । १० । ११ ततः स्वतः कुवह्निपञ्चषण्णवादिषु १ । ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । १२ वाक्पतेरसाष्टशम्भुसूर्य्यगो ६।८।११।१२ ऽशुक्रतः कुबाहुवह्निवेदपञ्चनागगोशिवेषु १।२ ।३।४।५।८।९।११ पङ्गुतः कुदृक्कृतागनागपञ्चकस्थितो १।२।४।७।८।९।१०।११।१२ ऽथ लग्नतः क्षितिद्विवेदकालना गदिक्शिवेषु १।२।४।६।८।१०।११ अशोकमञ्जरीसंज्ञक-मालादण्डकेन बुधाष्टवर्गः । बुधरेखा ५५ ।।३२।।

बुध के अष्टवर्ग में रवि से पांचवें, छठे, नवें, ग्यारहवें, और बारहवें घर में, चंद्र से दूसरे, चौथे, छठे, आठवें, दशवें और ग्यारहवें घर में, मंगल से पहले, दूसरे चौथे, सातवें आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें घर में बुध से पहले, तीसरे, पांचवें, छठे, नवें, ग्यारहवें और बारहवें घर में, बृहस्पति से छठे, आठवें, ग्यारहवें और बारहवें घर में, शुक्र से पहले दूसरे, तीसरे चौथे पांचवें, आठवें, नवें और ग्यारहवें घर में शनि से पहले, दूसरे, चौथे, सातवें, आठवें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें घर में और लग्न से पहिले, दूसरे चौथे, छठे, आठवें, दशवें और ग्यारहवें घर में रेखापात करै। बुध के

अष्टवर्ग में ५५ रेखा पड़ेंगी।।३२।।

गुरोः

सुरराजगुरुः शुभदो रवितः कुयमानलवेदनगादिकपञ्चगतः। १।२।३।४।५।७।८।९।१०।११। अथ विधोर्द्विशराचलगो शिवगो २।५।७।९।११। वसुधातनयात् कुयमाब्धिनगाष्टदशे शगतः।।१।२।४।७।८।१०।११।अथ बुधात् क्षितियुग्मकृतेषुर सग्रहदिग्गिरिशोपगतः १। २। ४।५ । ६ । ९।१०।११ तदनुस्वतएकयमानलवारिधिपर्व्वतनागदशेशगतः १।२।३ ।४।७।८।१०।११। अथसितादृयमपंचरसग्रहदिक्शिवगः २।५।६।९।१०।११। रविनन्दनतो दहनेषुरसार्कगतः ३।५।६।१२ अथ लग्नगृहात् कुयमाब्धिशरर्त्तुनगग्रहदिगगिरि शोषगतः १।२।४।५।६।७।९।१०।११। कुसुमस्तबलाकाभिधानमालादंडकेन बृहस्पतेरष्टवर्गः। गुरुरेखा ५६ ।।३३।।

बृहस्पति के अष्टवर्ग में रवि से पहिले, दूसरे, तीसरे, चौथे, सातवें, आठवें, नवें, दशवें, और ग्यारहवें, घर में चन्द्र से दूसरे पांचवें, सातवें, नवें, और ग्यारहवें घर में, मंगल से पहिले दूसरे चौथे, सातवें, आठवे, दशवें, और ग्यारहवें, घर में बुध से पहिले, दूसरे, चौथे, पांचवें, छठे, नवें, दशवें, और ग्यारहवें, घर में बृहस्पति से पहिले दूसरे तीसरे, चौथे सातवें आठवें, दशवें और ग्यारहवें घर में शुक्र से दूसरे, पांचवें, छठे, नवें, दशवें और, ग्यारहवें, घर में शनि से तीसरे, पांचवें, छठे, और बारहवें, घर में और लग्न से पहिले, दूसरे, चौथे, पांचवें, छठे, सातवें, नवें दशवें और ग्यारहवें घर में रेखापात करै, बृहस्पति के अष्टवर्ग में ५६ रेखा पड़ेंगी।।३३।।

शुक्रस्य

भृगुः शुभो रवेर्गजेशसूर्य्यगो ८ । ११ । १२। ऽथन्द्रतः क्ष्मादिपंचकाष्टगोशिवार्कगः १।२।३।४।५।८।९।११।१२ । कुजात् । त्रिवेदकालगोशिवार्कगो ३ । ४ । ६ । ९ । ११ । १२। बोधनात् त्रिबाणकालनन्दरुद्रसंस्थितः ३ । ५ । ६ । ९ । ११। गुरोः शराष्टनन्ददि महेशस्ततः ४ । ८ । ९ । १० । ११ । स्वात्कुपंचकाष्टनन्ददिक्शिवोपगः १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८। ९ । १० । ११ शनेर्गुणाब्धिपंचनागगोदशेशगो ३ । ४ । ५ ।८। । ९ । १० । ११ ऽथ लग्नतः कुपंचकाष्ठगोशिवस्थितः १ । २। ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । ११ अनंगशेखराभिधानमालादण्डकेन भार्गवस्याष्टवर्गः । शुक्ररेखा ५२ ।।३४।।

शुक्र के अष्टवर्ग में रवि से आठवें, ग्यारहवें और बारहवें घर में, चन्द्र से पहले दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें, आठवें, नवें, ग्यारहवें और बारहवें घर में, मंगल से तीसरे, चौथे, छठे, नवें, ग्यारहवें और बारहवें घर में, बुध से तीसरे पांचवें, छठे, नवें और ग्यारहवें घर में, बृहस्पति से पांचवें, आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें घर में, शुक्र से पहिले दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें, आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें घर में, शनि से तीसरे चौथे, पांचवें, आठवें, नवें दशवें और ग्यारहवें घर में, और लग्न से पहिले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें, आठवें, नवें और ग्यारहवें घर में रेखापात करनी चाहिये शुक्र के अष्टवर्ग में ५२ रेखा पड़ेंगी।।३४।।

शनेः

शुभः पङ्गुरर्कात् क्ष्मायमाम्भोधिशैलाष्टदिक्शम्भुगो १ । २। ४ । ७।८।१०।११ ऽथेन्दुतो रामकालेशगः ३ । ६ । ११ । क्ष्मासुताद्वह्निबाणर्तुकाष्ठाशिवार्कोपगः ३ । ५ । ६ । १० ।

११ । १२ अथज्ञतः कालदन्तावलादिस्थितः ६ । ८ । ९ । १०।११। १२ जीवतोबाणकालेशमार्त्तण्डयातः ५ । ६ । ११ । १२ ततो दैत्यपूज्यादनेहःशिवार्कोपयातः ६ । ११ । १२ ततः स्वात् रामेषुकालेशयातः ३ । ५ । ६ । ११ ततो लग्नतः क्ष्मागुणाम्भोधिषड्दिङ्महेशस्थितः १ । ३ । ४ । ६। १०।११। मत्तमात्तंगलीलाकराभिधानमालादण्डकेन शनैश्चराष्टवर्गः । शनिरेखा ३९ ।।३५।।

शनि के अष्टवर्ग में रवि से पहले, दूसरे, चौथे, सातवें, आठवें, दशवें और ग्यारहवें घर में, चन्द्र से तीसरे, छठे और ग्यारहवें घर में, मंगल से तीसरे, पांचवें छठे, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें घर में बुध से छठे, आठवें नवें, दशवें ग्यारहवें और बारहवें घर में, बृहस्पति से पांचवें, छठे, ग्यारहवें और बारहवें घर में शुक्र से छठे, ग्यारहवें और बारहवें घर में शनि से, तीसरे, पांचवें, छठे और ग्यारहवें घर में और लग्न से पहिले, तीसरे, चौथे, छठे, दशवें और ग्यारहवें घर में रेखापात करे। शनि के अष्टवर्ग में ३९ उनतालीस रेखा पड़ेंगी।।३५।।

लग्नाष्टवर्गः

लग्नं शुभम्मर्कात् वह्निरसागदशेशगतं ३।६।७।१०।११। अथेन्दुतो वह्निवेदाङ्गाष्टदशेशगतं ३।४।६।८।१०।११। महीजाद् वह्निनागदिक्शिवार्कोपगतं ३।८।१०।११।१२। निशानाथपुत्रात् । कुवह्नीषु शैलाष्टगं १।३।५।७।८। जीवतोद्विवह्नीषुशैलदशस्थितं २।३।५।७।१०। दैत्यपूज्याद् वह्निवेदगोदशेशगतं ३।४।९।१०।११। अथशनेर्गुणाब्धिगो दिङ्महेश्वरेषु ३।४।९।१०।११। ततः स्वतस्त्रिकालदिक्शि- वेषु ३।६।१०। ११ लग्नरेखा ४० ।।३६।।

लग्नाष्टवर्ग में रवि से तीसरे, छठे, सातवें, दशवें और ग्यारहवें घर में, चन्द्र से तीसरे, चौथे, छठे, आठवें, दशवें और ग्यारहवें घर में, मंगल से तीसरे, आठवें, दशवें ग्यारहवें और बारहवें घर में, बुध से पहिले, तीसरे, पांचवें और आठवें घर में बृहस्पति से दूसरे तीसरे पाचवें सातवें और दशवें घर में शुक्र से तीसरे, चौथे, नवें, दशवें और ग्यारहवें घर में, शनि से तीसरे, चौथे, नवें, दशवें और ग्यारहवें घर में और लग्न से तीसरे छठे दशवें और ग्यारहवें घर में रेखापात करनी चाहिये। लग्नाष्टवर्ग में ४० चालीस रेखा पडेंगी।।३६।।

राहोरष्टवर्गः

राहुःशुभोऽर्काद्भुजवह्निवेदर्त्तुग्रहगः २।३।४।६।९। चन्द्रात् कुरामवेदाङ्गगः ।। १।३।५।६। कुजाद् वह्निबाणाङ्गरन्ध्रगः ३।५।६।९। बुधाच्छशिपक्षवह्निबाणरन्ध्रगः १।२।३।५।९। जीवात् कव्यवाहवेदाङ्गरन्ध्रगतः ३।४।६।९। शुक्रात् पक्ष-वह्नि बाणरन्ध्रगः २।३।५।९। सौरात् पक्षबाणर्तुगः २।५।६। स्वतः क्षितिवेद बाणर्तुरन्ध्रगः १ । ४ । ५ । ६ । ९। लग्नात्वेद रन्ध्रादिगः ४ । ९ । १० । ११ । १२। राहुरेखा ३९ ।।३७।।

राहु के अष्टवर्ग में रवि से दूसरे, तीसरे, चौथे, छठे और नवें घर में, चन्द्र से पहिले, तीसरे, चौथे, और छठे घर में, मंगल से तीसरे, पाचवें, छठे और नवें घर में, बुध से पहिले दूसरे, तीसरे, पाचवें, और नवें घर में, बृहस्पति से तीसरे चौथे, छठे, और नवें, घर में, शुक्र से दूसरे, तीसरे, पांचवें और नवें घर में, शनि से दूसरे, पाचवें और छठे घर में, राहु से पहिले, चौथे, पांचवें, छठे, और नवें घर में और लग्न से चौथे, नवें, दशवें, और ग्यारहवें, और बारहवें घर में रेखापात करै, राहु के अष्टवर्ग में उनतालीस ३९ रेखा पड़ेंगी।३७।

अत्रायं विशेषः ।

यस्मिन् कोष्ठे यावानंको भवति
तावन्तं द्विगुणीकृत्य अष्टाभिर्हरेत् ।
शेषेऽङ्कअंकश्च युग्मएव भवति न्यूने बिन्दुः
बिन्दवश्च युग्म एव इति राहोरष्टवर्गः ॥
यावतीयावतीरेखा ग्रहाणामष्टवर्गके ।
तावतीर्द्विगुणीकृत्य चाष्टाभिः परिशोधयेत् ॥३८॥
अष्टोपरि भवेद्रेखा अष्टहीने च बिन्दवः ।
अष्टाभिश्च समो यत्र समस्तत्र निगद्यते ॥३९॥

जिस राशि में जितनी रेखा पड़ें, उन सब रेखाओं को दूना करके आठ से घटाने पर अवशिष्टाङ्क युग्म होगा और रेखा को दूना करने पर यदि आठ से कम हो तो युग्मबिंदु होता है, इस प्रकार से राहु का अष्टवर्ग करना चाहिये लग्नाष्ट वर्ग और राहु का अष्टवर्ग किसी किसी पुस्तक में है इस कारण इस ग्रंथ में भी दिया गया। गणनाक्रम कथित होता है पूर्वोक्त प्रणाली से रेखा पात करने पर जिस घर में जितनी रेखा पड़ें उनको दूना करके आठ से घटाना चाहिये। आठ से घटाने पर यदि अवशिष्ट अंक रहै उसको उसी घर में रखे। दूना करने पर यदि आठ से कम हों तो जितने बिंदु हों, आठ हो सकते हैं, उसी परिमाण से बिंदु उस उस घर में अंकित करे और दूना करने से यदि आठ हों तो उसी घर में सम लिखना चाहिये।। ३८–३९।।

पुस्तकान्तरे

शून्ये तु बिन्दवश्चाटौ रेखैके रसबिन्दवः ।
चत्वारो बिन्दवो युग्मे द्विबिन्दू रामरेखके ॥१॥
समो रेखाचतुर्थे तु पंचमे नेत्ररेखके ।
षड्रेखासु चतूरेखा सप्तमे रसरेखिका ॥२॥

श्रीरानन्दन्तथा श्रेयो भोगो राज्यप्रदस्तथा ।
द्व्यादिद्विगुण रेखानां फलमेतदनुक्रमात् ।।३।।
मलिनोऽथ विपद्धानिर्योगो मृत्युप्रदस्तथा ।
द्व्यादिद्वि ्णबिन्दूनां फलमेतदनुक्रमा 'त् ।।४।।
इति निग देतमिष्टं नेष्टमन्यद्विशेषादधिकफलविपाका-
जन्मभात्तत्र दद्युः । उपचयगृहमित्रस्वोच्चगाः पुष्टमिष्टं
त्वपचयगृहनीचारातिभेनेष्टसम्पत् ।।४०।।
शुभा रेखाः समाख्याता अशुभा बिन्दवः स्मृताः ।
यत्र रेखा न बिन्दुश्च तत्समं परिकीर्त्तितम् ।।४१।।

जिस घर में रेखापात न हो, उस स्थान में आठ शून्य लिखे। इस प्रकार जिस घर में रेखा पड़े, उस स्थानमें छः शून्य, जिस स्थान में दो रेखा पड़े, उस स्थान में चार शून्य और जिस स्थान में तीन रेखा पड़ें, उस घर में दो शून्य लिखे और जिस घर में चार रेखा पड़ें, उस स्थान में सम, जिस स्थान में पांच रेखा पड़े. उस घर में दो अंक, जिस घर में छटा रेखा पड़े, उस स्थान में चार अंक और जिस स्थान में सात रेखा पड़े, उस घर में छटा संख्यक अंक लिखे। द्व्या दि संख्या का फल इस प्रकार देखे। यथा दो रेखा (अंक) में श्रीन।म, चार रेखामें **आनन्द अनुभव**, छः रेखा में मंगल. और आठ रेखा होने मे राज्य प्राप्ति होती है। पूर्वोक्त "स्वार्तदिनकृत शुभदः" इत्यादि श्लोक में जिस जिस स्थान में इष्ट (शुभ) फल कथित हुआ है. उसी उसी स्थान में रेखा प्रदान करै और जिस स्थान में कुछ भी उक्त नहीं हुआ है उस स्थान से अनिष्ट सूचक बिंदु प्रदान करना चाहिये। उक्त प्रकार से जन्म समय की ग्रहाक्रांत राशि से रेखापात करै। रेखापात करके शुभाशुभ फल शोधन पूर्वक अधिक होने पर

---

१ लग्नाष्टवर्गात् इत्यंतरे टिप्पणिर्नास्ति ।

सञ्चारवशतः समस्त ग्रह उस राशि में शुभ फल देते हैं। लग्न वा चन्द्र से उपचय अर्थात् तृतीय, एकादश षष्ठ और दशमगत वा स्वगृहस्थित अथवा मित्रगृहगत या तुङ्ग–राशि–स्थित ग्रह पूर्वोक्त प्रकार से शुभ अर्थात् रेखागत होने पर अधिक शुभफल प्रदान करते हैं और लग्न वा चन्द्र से अनुपचय अर्थात्–पूर्वोक्त उपचय–भिन्न स्थानगत वा नीचस्थ अथवा शत्रुगृह स्थित होकर रेखागत होने से अधिक शुभफल प्रदान न करके यत्किंचित् शुभफल दाता होंगे। तृतीय, एकादश, षष्ठ और दशम के अतिरिक्त अन्य स्थानगत वा नीचस्थ अथवा शत्रुगृहगत होकर ग्रहगण बिंदुप्राप्त होने पर अत्यंत अशुभ फल दाता होते हैं–एवं तृतीय, एकादश, षष्ठ और दशम स्थानगत वा स्वगृहगत अथवा मित्र गृहस्थित या उच्च राशि में स्थित ग्रहगण बिंदुगत होने से विशेष अशुभ फल देकर यत्किंचित् शुभ फल देते हैं। अष्टवर्ग के जिस घर में रेखापात हो, वह स्थान शुभ है। बिंदु पड़ने से अशुभ होना और जिस स्थान में रेखा वा बिंदु कुछ न हो उसको सम कहा जाता है, उस स्थान में भी अशुभ नहीं होगा।।४०–४१।।

इत्यष्टवर्गः

अथ चन्द्रबलाद् ग्रहशुद्धिः

यादृशेन शशांकेन ग्रहः सञ्चरते नृणाम् ।
तादृश फलमाप्नोति शुभं वा यदि वाशुभम् ।।४२।।

चन्द्र शुद्धि द्वारा ग्रहों का गोचर और अष्टवर्ग का अपवाद कथित होता है। चंद्रवर्जित जिस किसी ग्रह के संचार काल में यदि मनुष्य चन्द्रशुद्धि हो तो ग्रहगण गोचरादि में अशुभ होकर भी अशुभफल के दाता नहीं होते और गोचर में शुभ होने पर चन्द्र शुद्धि के कारण अधिक शुभ फल देते हैं अन्य ग्रहों के संचार काल में यदि

चन्द्र अशुभ हो तो गोचर में शुभ होने पर भी ग्रहगण शुभफल नहीं देते। और संचार काल में चन्द्र शुद्धि न होने से यदि गोचर में अशुभ हों तो अधिक अशुभ फल देते हैं।।४२।।

ग्रहाणां त्रिविधशांतिकथनम्

प्रयोज्यमोषधिस्नानं ग्रहविप्रसुरार्चनम् ।
ग्रहानुद्दिश्यहोमो वा ग्रहाणां प्रीतिमिच्छता ।।४३।।

ग्रहगणों के गोचरादि में अशुद्ध होने पर उनका प्रतीकार कथित होता है। यदि ग्रहों के प्रसन्न होने की इच्छा करे तो सिद्धार्थ (श्वेत सरसों) लोध्र इत्यादि वक्ष्यमाणोक्त औषधि से स्नान, रक्तपुष्पादि द्वारा ग्रहपूजा दक्षिणा और भोजनादि द्वारा ब्राह्मणार्चन, विशेषकर दैवज्ञ ब्राह्मण की अर्चना गणपति और नारायणादि देवता की गंध पुष्प और नैवेद्यादि द्वारा पूजा अथवा आक की समिध द्वारा ग्रहों के उद्देश से होम करै।।४३।।

ग्रहस्नानम्

सिद्धार्थलोध्ररजनीद्वयमुस्तधान्यलामज्जकं,
सफलिनी सवचा च मांसी ।
स्नानं कुरु ग्रहगणप्रशमाय नित्यं,
सर्व्वे रविप्रभृतयः सुमुखी भवन्ति ।।४४।।

ग्रहों की प्रीति के निमित्त औषधि स्नान कथित होता है सिद्धार्थ (श्वेत सरसों) लोध्र, हलदी, दारुहलदी, मोथा धनियाँ, वीरणमूल (औषधिविशेष) प्रियंगु, वच और जटामासी (वालछड़) इन समस्त द्रव्यों से स्नान करने पर रवि इत्यादि सब ग्रह संतुष्ट होते हैं।।४४।।

ग्रहपूजा

रक्तैः पुष्पैर्गन्धैस्ताम्रैः कनकवृषसुरभिकुसुमैर्द्दिवाकरभूसुतौ

भक्त्या पूज्यान्बिदुर्धेन्वासितकुसुमसुरभिमधुरैः सितश्च मदप्रदैः ।। कृष्णैर्द्रव्यैः सौरिः सौम्यो मणिरजतकुवलकुसुमैर्गुरुस्तु परिपीतकैः प्रीतैः पीडा न स्यादुच्चात् यदि पतति विशतिवा भुजंगविजृम्भितम् ।।४५।।

ग्रहपूजा कथित होती है, रवि और मंगल ग्रह के कुपित होने पर रक्तवर्ण पुष्प और चंदन द्वारा ताम्रमयी प्रतिमा की पूजा करै, आभरण भी ताम्रमय दान करै, सूर्य की पूजा में कनक और बैल की दक्षिणा देवे, मंगल की पूजा में ताम्र कनक और मूँगे की दक्षिणा देनी चाहिये। सुरभि कुसुम अर्थात् सर्वसर्व सुगंधित पुष्प द्वारा इसकी पूजा करी जाती है। चन्द्र की पूजा में गाय की दक्षिणा देवे और शुक्ल पुष्प, सुगन्धि द्रव्य तथा मधुर द्रव्य द्वारा चन्द्र की पूजा करनी चाहिये चन्द्र की ही समान शुक्र ग्रह की भी शुक्लपुष्प सुगंधिद्रव्य मधुर और मत्तता जनक द्रव्य से पूजा करनी उचित है दक्षिणा में अलंकृता तरुण स्त्री दे। शनिग्रह की कृष्ण वर्णपुष्प और कृष्णद्रव्य द्वारा लोहे की प्रतिमा में पूजा करनी चाहिये दक्षिणा काले गहनों से भूषित वृद्धदासी, बुधग्रह की दक्षिणा मणि और चांदी है। और बकुलपुष्प से इसकी पूजा करनी होती है। बृहस्पति की स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर पीतद्रव्य और पीतवर्ण गंध पुष्पद्वारा पूजा पूर्वक सुवर्णयुक्त अश्वदक्षिणा दे ग्रहों की उक्त प्रकार से पूजा करने पर वह प्रसन्न होकर पीड़ा नहीं देते। यही क्या ग्रहों को पूजा द्वारा संतुष्ट करने पर मनुष्य ऊंचे स्थान से गिरकर वा सर्प के विस्तीर्ण मुख में प्रवेश करने पर भी किसी प्रकार से पीडित नहीं होता।।४५।।

नैवेद्यविधिः

गुडभक्तसघृतपायसहविष्यसक्षीरदधिघृतान्नानि ।

तिलपिष्टमाममांसं चित्रौदनमर्कतो दद्यात् ॥४६॥

ग्रहों का विशेष नैवेद्य कथित होता है। रवि का नैवेद्य गुड़मिश्रित अन्न, चन्द्र का सघृत परमान्न, मंगल का हविष्यान्न, बुध का सदुग्धान्न, बृहस्पति का दही और अन्न शुक्र का सघृतान्न, शनि का तिलपिष्टक, राहु का आममांस (कच्चा मांस) और केतु का नैवेद्य चित्रौदन (चित्रान्न) कहा गया है॥४६॥

चित्रौदनकथनम्

अजाक्षीरेण संमिश्रा यवाश्च तिलतण्डुलाः ।
अजकर्णस्य रक्तेन रक्ताश्चित्रान्नसंज्ञिताः ॥४७॥

चित्रौदन कथित होता है। अजाक्षीर मिश्रित यवतण्डुल और तिल तण्डुल छाग कर्ण रक्त से रंजित होने पर उनको चित्रान्न कहा जाता है॥४७॥

शान्त्यर्थं औषधिधारणम्

मूलं धार्यं त्रिशूल्याः सवितरि विगुणे क्षीरिकामूलमिन्दौ
जिह्वाहेर्भूमिपुत्रे रजनिकरसुते वृद्धदारस्य मूलम् ।
भाङ्गर्याजीवेऽथ शुक्रे भवति शुभकरं सिंहपुच्छस्य मूलं
वाटचालं चार्कपुत्रे तमसि मलयजं केतुदोषेऽश्वगन्धम् ॥४८॥

ग्रहदोष शांति के अर्थ बाहु में औषधि का धारण करना कथित होता है। रविग्रह के विरुद्ध होने पर बाहुमूल में बिल्वमूल धारण करे। इसी प्रकार चन्द्रमा के विरुद्ध होने पर क्षीरीवृक्ष की जड़, मंगल के विरुद्ध होने पर नाग जिह्वा (नागदौन) की जड़, बुध के विरुद्ध होने पर वृद्ध दारुमूल (बृहच्छत्रक) बृहस्पति के विरुद्ध होने पर भाङ्गी अर्थात् ब्राह्मणयष्टि की जड़, शुक्र के विरुद्ध होने पर सिंहपुच्छ की जड़, शनि के विरुद्ध होने पर वाटचाल की जड़, राहु के विरुद्ध होने पर चंदन और केतुग्रह के विरुद्ध होने पर अश्वगंधा

(असगंध) की जड़ धारण करै।।४८।।

धातुद्रव्यधारणम्

सूर्य्यादिदोषशान्त्यै धार्य्याणि भुजेन ताम्रशङ्खौ च ।
विद्रुमकाञ्चनमुक्तारजतत्रपुलोहराजपट्टानि ।।४९।।

ग्रह के विरुद्ध होने पर धारण करने का धातु द्रव्य कथित होता है। यथा—सूर्यग्रह के विरुद्ध होने पर बाहुमूल में ताम्र धारण करै इसी प्रकार चन्द्र के विरुद्ध में शंखें, मंगल के विरुद्ध होने पर प्रवाल (मूंगा) बुध के विरुद्ध होने पर कांचन, बृहस्पति के विरुद्ध होने पर मोती, शुक्र के विरुद्ध होने पर चांदी, शनि के विरुद्ध होने पर सीसा, राहु के विरुद्ध होने पर लोहा, और केतु के विरुद्ध होने पर बाहुमूल में राजपट्ट (राई के आकार की मणि विशेष) धारंण करना चाहिये।।४९।।

माणिक्यं विगुणे सूर्य्ये वैडूर्य्यं शशलाञ्छने ।
प्रवालं भूमिपुत्रे च पद्मरागं शशाङ्कजे ।।५०।।
गुरौ मुक्तां भृगौ वज्रमिन्द्रनीलं शनैश्चरे ।
राहो गोमदेकं धार्य्यं केतौ मरकतं तथा ।।५१।।

ग्रहों के विरुद्ध में रत्नधारण कथित होता है, यथा सूर्य के विरुद्ध में माणिक्य, चन्द्र के विरुद्ध में वैदूर्यमणि, मंगल के विरुद्ध में प्रवाल (मूंगा) बुध के विरुद्ध में पद्मराग, बृहस्पति के विरुद्ध में मोती, शुक्र के विरुद्ध में हीरक, शनि के विरुद्ध में इन्द्रनीलमणि, राहु के विरुद्ध में गोमेदकमणि और केतुग्रह के विरुद्ध होने पर बाहुमूल में मरकतमणि धारण करै।।५०–५१।।

ग्रहसमिधः

अर्कः पलाशः खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पलः ।
उदुम्बरशमी दूर्व्वाकुशाश्च समिधः क्रमात् ।।५२।।

ग्रहों की होम समिध कथित होती है रवि की होम समिध अर्क (आक) चन्द्र की पलाश (ढ़ाक) मंगल की खदिर (खैर) बुध की अपामार्ग (चिरचिरा) बृहस्पति की अश्वत्थ (पीपल) शुक्र की उदुम्बर (गूलर) शनि की शमी राहु की दूर्वा और केतु की होमसमिध, कुश उक्त हुई है।।५२।।

ग्रहहोमः

एकैकस्याप्यष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा ।।
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां सहस्रं चाष्टसंयुतम् ।।५३।।

होमसंख्या कथित होती है एक एक ग्रह की होम समिध अष्टोत्तरशत अष्टाविंशति वा अष्टोत्तरसहस्र ग्रहण करके मधु और घृत से होम करै।।५३।।

दक्षिणाविवेकः

धेनुः शंखस्तथा नड्वान् हेम वासो हयस्तथा ।।
कृष्णा गौरायसं छाग एता वै ग्रहदक्षिणाः ।।५४।।

होम दक्षिणा कथित होती है, रवि के होम में धेनु, चन्द्र के होम में शंख, मंगल के होम में वृष, बुध के होम में सुवर्ण, बृहस्पति के होम में वस्त्र, शुक्र के होम में अश्व, शनि के होम में काली गाय, राहु के होम में लोहा और केतु की होम दक्षिणा में छाग देना चाहिये।।५४।।

इति महीन्तायनीय पंड़ित श्री श्रीनिवासविरचितायां शुद्धिदीपिका भाषाटीकायां ग्रहनिर्णयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

तृतीयोऽध्यायः ।

चन्द्रताराशुद्धिप्रशंसा

सर्वकर्मण्युपादेया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः ।
तच्छुद्धावेव सर्वेषां ग्रहाणां फलदातृता ।।१।।

अब चन्द्रशुद्धि और ताराशुद्धि की प्रशंसा कथित होती है संपूर्ण कर्मों में ही चन्द्रतारा की शुद्धि का उत्कर्ष अभिहित हुआ है, क्योंकि चन्द्रतारा की शुद्धि होने से ही ग्रहगण शुभफल देते रहते हैं।।१।।

चन्द्रशुद्धिः

सप्तमोपचयाद्यस्थश्चन्द्रः सर्व्वत्र शोभनः ।
शुक्लपक्षे द्वितीयस्तु पंचमो नवमस्तथा ।।२।।

चन्द्र शुद्धि कथित होती है। मनुष्य का जन्म चन्द्र और जन्म चन्द्र की अपेक्षा सातवां, तीसरा, ग्यारहवां, छठा और दशवां चन्द्र सदाही शुभफल देता है, शुक्लपक्ष में दूसरा पांचवां अथवा नवां चन्द्र भी शुभ होता है।।२।।

चन्द्रस्य वामवेधेन शुद्धिः

सितशनिकुजजीवार्कास्त इन्दुर्नराणां
व्ययसुखनवमस्थोऽ पीष्टदाताथ तेषाम् ।
खसुतनिधनगश्चेन्मृत्युपुत्रार्थगोऽपि प्रथित ।
(प्रचुर) शुभफलं स्याद्वामवेधेन शुद्धिः ।।३।।

चंद्र की वामवेध शुद्धि कथित होती है, मनुष्य के बारहवें, चौथे और शुक्लपक्ष में नवमस्थ विरुद्धचन्द्र यदि शुक्र, शनि, मंगल, बृहस्पति वा रवि के सातवें स्थान में स्थित हों तो वामवेध में शुद्ध होकर शुभफल देता है। इसी प्रकार मनुष्य के अष्टमस्थ विरुद्धचन्द्र यदि शुक्र, शनि, मंगल, बृहस्पति वा रवि के दशवें स्थान में हों तो शुभ होता है और कृष्णपक्ष में पंचमस्थ विरुद्ध चन्द्र यदि शुक्र, शनि, मंगल बृहस्पति वा रवि के पांचवें स्थान में स्थित हो तो शुभ होता है और कृष्णपक्ष में द्वितीयस्थ विरुद्ध चंद्र यदि शुक्र, शनि, मंगल, बृहस्पति वा रवि के आठवें स्थान में स्थित हो तो वामवेध में शुद्ध होकर प्रचुर शुभफल देता है।।३।।

चन्द्रस्य विशेषशुद्धिः

उपचयकरयुक्तः सव्यगः शुक्लपक्षे
शुभमभिलषमाणः सौम्यमध्यस्थितो वा ।।
सखिवशिग्रहयुक्तः कारकर्क्षेऽपि चेन्दु-
र्ज्जयधनसुखदाता तत्प्रहत्तन्यिथातः ।।४।।

चन्द्र के सम्बंध में विशेष शुद्धि कथित होती है गोचर में हो, वा दशा में हो जो सब ग्रह उपचयकर अर्थात् वृद्धिकर (शुभकर) कहके अभिहित हुए हैं उन सब ग्रहों के सहित यदि अशुभकर चंद्रयुक्त हो तो जय धन और सुख देता है, उत्तरचारी चंद्रमा शुक्लपक्ष में और शुभफल देनेवाले गृह में गमनोन्मुख चंद्र भी श्रेष्ठ होता है। शुभग्रहों के मध्यस्थित चंद्र और मित्र गृहावस्थित चंद्र शुभदायक होता है, जन्मकालीन चन्द्र से दशमस्थग्रह को वशी कहा जाता है चन्द्रमा यदि उसी राशिग्रह के घर में स्थित हो तो शुभ होगा और स्वगृहस्थित तुङ्गस्थ मूल त्रिकोणावस्थित और परस्पर केन्द्रस्थग्रहों को कारक ग्रह कहा जाता है। इन कारक संज्ञकग्रहों के

घर में चन्द्र के स्थित होने पर जय, धन और सुखदाता होता है अर्थात् अशुभ होने से भी शुभफल देता है। अनुपचय अर्थात् गोचर में हो वा दशा में हो अशुभ कारक ग्रह के संग चन्द्र के मिलित होने पर जय धन और सुख का नाशक होता है और दक्षिण चन्द्रमा कृष्णपक्ष में एवं पापग्रहाभिलाषी, पापग्रह के मध्यस्थित और शत्रु ग्रह स्थित चन्द्र भी जय, धन और सुख का नाशक होता है।।४।।

पक्षादौ चन्द्रशुद्धिकथनम्

सितपक्षादौ शुभे चन्द्रे शुभं पक्षमशुभमशुभे च ।
कृष्णे गोचरशुभदो न शुभः पक्षः शुभोऽतोऽन्यः ।।५।।

चन्द्रशुद्धिवशतः पक्ष का शुभाशुभ कथित होता है। शुक्लपक्ष वा तिथि में यदि चन्द्र शुभद हो तो वही पक्ष शुभ होता है और शुक्लपक्ष वा तिथि में चंद्र के अशुभ होने पर वह पक्ष अशुभ होता है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष वा तिथि में चन्द्र के शुभद होने पर वह पक्ष अशुभ और कृष्ण में चन्द्र के अशुभ होने पर वह पक्ष शुभद होगा।।५।।

चन्द्रदोषशान्तये स्नानम्

उशीरं च शिरीषं च चन्दनं पद्मकं तथा ।
शंखे न्यस्तमिदं स्नानं चंद्रदोषोपशांतये ।।६।।

चन्द्र दोष की शांति के लिये स्नान कथित होता है। उशीर अर्थात् सफेद खसकी जड़, सिरस, चन्दन और पद्मकाष्ठ (पद्माख) मिश्रित जल शंख में रखकर उसके द्वारा स्नान करने से चन्द्रग्रह का दोष शांत होता है।।६।।

चन्द्रदोषोपशांतये देयद्रव्याणि

श्वेतं वासः सिता धेनुः शंखो वा क्षीरपूरितः ।
देयो वा राजतश्चंद्रश्चंद्रदोषोपशांतये ।।७।।

चन्द्र दोष शांति के लिये दान कथित होता है। सफेद वर्णवस्त्र, सफेदवर्ण गाय, क्षीर (दुग्ध) पूर्ण शंख अथवा चांदी का बना चन्द्रमा दान करने से चन्द्रग्रह का दोष शांत होता है।।७।।

तारानिर्णयः

तारास्तु जन्मसम्पद्विपत्क्षेमपापशुभकष्टाः ।
मित्रातिमित्र संज्ञाश्चैताः संज्ञानुरूपफलाः ।।८।।

ताराशुद्धि कही जाती है। सत्ताईस नक्षत्र, जन्मनक्षत्र से तीन २ बार गणना करने से जन्म, सम्पत, विपत् क्षेम, पाप, शुभ, कष्ट, मित्र और अतिमित्र इस नौ संज्ञा में अभिहित होते हैं। यह सब तारा नामानुरूप फल देते हैं। अर्थात् जन्म, विपत्, पाप, और कष्ट तारा अशुभदायक और सम्पत् क्षेम शुभ एवं अतिमित्र यह सब शुभ दायक हैं।।८।।

पञ्चमादि ताराफलम्

पापाख्यास्त्रिविधाः पंचचतुर्द्दशविंशतित्रियुताः ।
सिद्धिफला वृद्धिकरी विनाशसंज्ञा क्रमात्कथिता ।।९।।

पाप तारा के संबंध में कहा जाता है। तीन पाप तारा (जन्मनक्षत्र से पंचमनक्षत्र चतुर्दशनक्षत्र और त्रयोविंशति नक्षत्र) यह क्रमशः सिद्धिफला वृद्धिकरी और विनाश संज्ञा में अभिहित होते हैं अर्थात् नक्षत्र से पंचम (५) तारा सिद्धिफल प्रद चतुर्दश (१४) तारा वृद्धिफल प्रद और त्रयोविंशति (२३) तारा विनाशिनी होती है।।९।।

ताराप्रतीकारः

विपत्तारे गुडं दद्याच्छाकं दद्यात्त्रिजन्मनि ।
प्रत्यरौ लवणं दद्यान्निधने तिलकांचनम् ।।१०।।

तारा दोष का प्रतीकार कहा जाता है। विपत्तारा का दोष शांत

होने के लिये गुड़ दान करना चाहिये, इसी प्रकार निधन (वध) तारा में तिल के सहित कांचन दान प्रत्यरि (तीनों पाप तारा) में लवण दान और तीनों जन्म तारामे शाक दान करे॥१०॥

नाड़ी-नक्षत्राणि

जन्माद्यं कर्म ततोऽपि दशमं साङ्घातिकं षोडशभम् ।
समुदयमष्टादशमं विनाशसंज्ञं त्रयोविंशम् ॥११॥
आद्यात्तु पंचविंशं मानसमेदं नरः षड्नक्षत्रः ।
नवनक्षत्रो नृपतिः स्वजातिदेशाभिषेकर्क्षैः ॥१२॥

नाड़ी नक्षत्र कथित होता है। जिस नक्षत्र में मनुष्य ने जन्म लिया हो, वही नक्षत्र उसका जन्म नाड़ी है, जन्मनाड़ी से गणना में दशवां नक्षत्र कर्मनाड़ी, सोलहवां नक्षत्र सांघातिक नाड़ी, अठारहवां नक्षत्र समुदायनाड़ी तेईसवां नक्षत्र विनाशनाड़ी और पच्चीसवें नक्षत्र का नाम मानसनाड़ी है यह छै नक्षत्र मनुष्य के षन्नाड़ी नक्षत्र कहकर प्रसिद्ध हैं। राजाओं के और भी तीन नाड़ी नक्षत्र हैं, स्वजातिनाड़ी, देशनाड़ी और अभिषेकनाड़ी, अत एवं राजाओं के सब समेत नवनाड़ी नक्षत्र हैं। स्वीयजाति निरूपित नक्षत्र का नाम स्वजाति नाड़ी देशनामानुसार जो नक्षत्र हो, उसका नाम देशनाड़ी, और जिस नक्षत्र में राजा अभिषिक्त हो, उसका नाम अभिषेक नाड़ी है॥११-१२॥

नाड़ीनक्षत्रशुभाशुभकथनम्

अन्यच्च

नामानुरूपमेषां सदसत्फलमिष्टपापगुणदोषात् ।
प्रकृतिस्थिताद्यमिष्टं वैकृत्योल्कादिपीडनं पापम् ॥१३॥
ईहादेहार्थ हानिः स्याज्जन्मर्क्षेचोपतापिते ।
कर्मर्क्षे कर्मणां हानिः पीडा मनसि मानसे ॥१४॥

मूर्त्तिद्रविणबन्धूनां हानिः सांघातिके तथा ।
सन्तप्ते सामुदयिके मित्रभृत्यार्थसंक्षयः ।
वैनाशिके विनाशः स्याद्देहद्रविणसम्पदाम् ।।१५।।

नाड़ी नक्षत्र का शुभाशुभफल वर्णित होता है। इष्टपाप गुणदोष में जन्मादि नक्षत्र का सदसत् (शुभाशुभ) फल होता है अर्थात् इष्टगुण में संज्ञानुरूप शुभफल और पापदोष में नामानुरूप अशुभफल होता है। प्रकृति स्थित (स्वभावस्थित) शुभग्रहयुक्त नक्षत्र इष्टफल प्रदान करता है और अस्तादि वा पापग्रह के योग से विकार को प्राप्त होकर अथवा उल्कापात सूर्य चन्द्र के ग्रहण और भूकम्पादि उत्पात द्वारा पीड़ित होने पर नक्षत्र पाप (अशुभ) होता है। नामानुरूप फल इस प्रकार देखना चाहिये। यथा; जन्म नक्षत्र इष्टगुणयोग से जन्म शुभ अर्थात् जातक का देह शुभ होता है और पाप योग से देह अशुभ होता है। इसी प्रकार कर्म (दशम) नक्षत्र में इष्टगुणयोग से कर्म की सिद्धि और पाप योग से कर्म की हानि होती है। सांघातिक (सोलहवें) नक्षत्र में इष्ट योग से शरीर की दुःस्थता (बुरी हालत) धन और बन्धु प्राप्ति, पाप दोष से शरीरभङ्ग धन और बन्धु की हानि, सामुदायिक (अठारहवें) नक्षत्र में इष्टगुण से द्रव्य की वृद्धि, पाप योग से द्रव्य का नाश वैनाशिक (तेइसवें) नक्षत्र में इष्टयोग से आरोग्य प्राप्ति, पाप दोष से पीड़ा और (पच्चीसवें) नक्षत्र में इष्टगुण से चित्त हर्ष और पाप दोष से चित्तोद्वेग होता है। और राजाओं का जाति नक्षत्र उपतापित होने पर उनके जातीय सब मनुष्यों को परिताप, और जाति नक्षत्र सुस्थ होने पर तज्जातीय सबकी सुस्थता, देश नक्षत्र उपतापित होने पर देशवासी मनुष्यों को ताप, और देश नक्षत्र सुस्थ होने पर देशवासियों की सुस्थता और अभिषेक नक्षत्र

उपतापित होने पर राजा के चित्त में उद्वेग और अभिषेक नक्षत्र सुस्थित होने पर राजा के चित्त में सुस्थता उत्पन्न होती है और इसके विपरीत होने पर देह धन और संपत्तियों का विनाश होता है।।

पुस्तकांतर के वचनों से नाड़ी नक्षत्र का फल वर्णित होता है। मनुष्य का जन्म नाड़ी (जन्म नक्षत्र) उपतापित होने पर चेष्टा, देह और अर्थ की हानि होती है। इसी प्रकार कर्मनाड़ी अर्थात् जन्म नक्षत्र से दशवें नक्षत्र के उपतापित होने पर कर्म की हानि, मानसनाड़ी उपतापित होने पर पीड़ा, सांघातिक नाड़ी उपतापित होने पर देह, धन और बंधु की हानि, सामुदायिक नाड़ी उपतापित होने पर मित्र, भृत्य और अर्थ का क्षय एवं वैनाशिक नाड़ी के उपतापित होने पर शरीर, धन और सम्पद नष्ट होती है।।१३–१५।।

नाड़ीनक्षत्रफलम् ।

रोगाद्यागमवित्तनाशकलहाः संपीडिते जन्मभे । *
सिद्धिं कर्म न याति कर्मणि हते भेदस्तु सांघातिके ।
द्रव्यस्योपचितस्य सामुदयिके संपीडिते संक्षयो
वैनाशे तु भवन्ति कायविपदश्चित्तासुखं मानसे ।।१६।।

नाड़ी नक्षत्र का फल कहा जाता है। जन्म नक्षत्र पीड़ित होने पर रोगोत्पत्ति, वित्तनाश और कलह आदि घटित होती है, कर्म नक्षत्र पीड़ित होने पर कार्य की सिद्धि नहीं होती, इसी प्रकार सांघातिक नक्षत्र के पीड़ित होने पर भेद (विच्छेद) सामुदायिक नक्षत्र के पीड़ित होने पर संचित द्रव्य.का क्षय, वैनाशिक नक्षत्र के पीड़ित

* "रोगाद्यागम" इत्यादि वचन किसी किसी आदर्श पुस्तकमें पाया जाता, इस कारण इस ग्रंथ में भी दिया गया।

होने पर शारीरिक विपद्, और मानसनक्षत्र के पीड़ित होने पर मनुष्य के चित्त को सुख नहीं होता।।१६।।

निरुपद्रवसोपद्रवनाड़ीनक्षत्रकथनम् ।

निरुपद्रुतभो निरामयः सुखभुङ् नष्टरिपुर्बलान्वितः ।
सोपद्रुतभो विनश्यति त्रिभिरन्यैश्च सहावनीश्वरः ।।१७।।

निरुपद्रुत और सोपद्रुत नाड़ी नक्षत्र कथित होता है नाड़ी के प्रकृतिस्थ अर्थात् ग्रहविहीन होने पर वा शुभग्रह से युक्त होने पर उसको निरुपद्रत कहते हैं और नाड़ी नक्षत्र यदि अस्त ग्रह पाप ग्रह अथवा वक्रीग्रह युक्त हो, या सूर्य चन्द्र के ग्रहण और भूकम्पादि अनिष्ट द्वारा पीड़ित हो तो वह सोपद्रुत कहा जाता है। नाड़ी नक्षत्र के निरुपद्रुत होने पर मनुष्य निरोगी सुखी शत्रु का नाश करने में समर्थ और बलयुक्त होता है और नाड़ी नक्षत्र के सोपद्रुत होने पर मनुष्य रोगयुक्त, दुःखी, शत्रुविनाश में असमर्थ और बलहीन होता है। राजाओं का भी नवनाड़ी नक्षत्र द्वारा ही उक्त प्रकार से फल विचारना चाहिये।।१७।।

नाड़ीनक्षत्र शांतिः

सर्वेषां पीडायां दिनमेकमुपोषितोऽनलं जुहुयात् ,
सावित्र्या क्षीरतरोः समिद्भिरमरद्विजार्च्चनरतः ।।१८।।

नाड़ी नक्षत्र के दोष का प्रतीकार कथित होता है। समस्त नाड़ी नक्षत्र हों वा जो कोई एक नाड़ी नक्षत्र हो, यदि पीड़ित, हो तो एक दिन उपवास करके देवद्विजार्चनरत मनुष्य गायत्री पाठ पूर्वक क्षीरीवृक्ष की अष्टाधिकसहस्र (एक हजार आठ) समिधाओं से अग्नि में होम करे तथा देवार्चन और ब्राह्मण भोजनादि कराना चाहिये।।१८।।

ग्रहणगतनाड़ीनक्षत्रफलम्

ग्रहणं रविचंद्रमसोर्नाडीनक्षत्रवासरे यस्य ।
अब्दार्द्धाभ्यंतरतो दोषो नाडीसमस्तस्य ।।१९।।

ग्रहणगत नाड़ी नक्षत्र का फल कथित होता है। यदि किसी मनुष्य के नाड़ी नक्षत्र में सूर्य वा चन्द्र का ग्रहण हो तो छःमहीने में उस मनुष्य का सब नाड़ी नक्षत्र दूषित होता है।।१९।।

ग्रहणगतनाड़ीनक्षत्रस्नानम्

ग्रहणग्रहपीडितनाडीनक्षत्रदोषोपशमनाय ।
सह शतपुष्पैः स्नायात्फलिनीफलचन्दनोशीरैः ।।२०।।

ग्रहण पीड़ित नाड़ी नक्षत्र के प्रतीकारार्थ स्नान कथित होता है। ग्रहण कालीन यदि किसी मनुष्य का नाड़ी नक्षत्र पीड़ित हो तो वह मनुष्य नाड़ी नक्षत्र का दोष शांत होने के लिये शतपुष्प प्रियंगु चन्दन और सफेद खस की जड़ युक्त जल में स्नान करै।।२०।।

नाड़ीनक्षत्रेण पापग्रहसंक्रमणफलम्

नाड़ीनक्षत्रदिवसे रविभौमशनैश्चराः ।
संक्रांतिं यस्य कुर्वंति तस्य क्लेशोऽभिजायते ।।२१।।

नाड़ी नक्षत्र में पापग्रह के संक्रमण का फल वर्णित होता है। यदि रवि मंगल वा शनैश्चर किसी मनुष्य के नाड़ी नक्षत्रगत होकर अथवा नाड़ी नक्षत्र दिन में एक राशि से अन्य राशि में जाय तो उस मनुष्य को अतिशय क्लेश होता है।।२१।।

नाड़ीनक्षत्रेणः पापग्रहसंक्रान्तिप्रतीकारः

गोमूत्रसर्षपैः स्नानं सर्वौषधिजलेन वा ।
विशुद्धं काञ्चनं दद्यान्नाडीदोषोपशांतये ।।२२।। (१)

---

(१) ग्रहं संपूज्य तं दद्याद्विप्राय कनकोत्तमम् । इति क्वचित् पुस्तके पाठः।

नाड़ी नक्षत्र में पापग्रह के संचारक का फल कथित होता है। यदि किसी मनुष्य के नाड़ी नक्षत्र में पापग्रह का संचार हो तो गोमूत्र, सरसो, और सर्वौषधियुक्त जल में स्नान करै और ब्राह्मण को विशुद्ध कांचन दान करना चाहिये। उक्त प्रकार से स्नानादि करने पर नाड़ी नक्षत्र दोष शांत होता है।।२२।।

विषुवादिसंक्रान्तिनिर्णयः

विषुवन्मेषतुलयोरयनं मकरे रवौ कुलीरे च ।
षडशीतिर्द्वि शरीरे विष्णुपदी च स्थिरे राशौ ।।२३।।

अब विषुवादि रवि संक्रांति वर्णित होती हैं। मेष और तुला राशि में रवि संक्रमण काल का नाम विषुव संक्रांति, मकर और कर्क राशि में रवि के प्रवेश काल का नाम अयन संक्रांति, मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशि में रवि संक्रमण काल का नाम षडशीति संक्रांति, एवं वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ राशि में रवि संक्रमण होने पर उसको विष्णुपदी संक्रांति कहते हैं।।२३।।

रविशुद्धिः

जन्मराशेः शुभः सूर्यस्त्रिषष्ठदशलाभगः ।
द्विपञ्चनवगोऽपीष्ट स्त्रयोदशदिनात्परम् ।।२४।।

रवि की विशेष शुद्धि कही जाती है। मनुष्य की जन्म राशि से तीसरी छठी, दशवीं और ग्यारहवीं राशि में स्थित रवि सदा शुभफल देते हैं और जन्म राशि की अपेक्षा दूसरी, पांचवी अथवा नवीं राशि में स्थित रवि तेरह दिन के पीछे शुभ होते हैं।।२४।।

रविशांतिस्नानम्

मञ्जिष्ठात्वथ पत्रांगकुंकुमं रक्तचन्दनम् ।
ताम्रकुम्भे कृतं पूर्णे स्नानं तेनार्कशांतये ।।२५।।

रवि ग्रह गोचर में अशुभ होने पर उसकी शांति कथित होती है।

मञ्जिष्ठा (मजीष्ठ) तेजपत्र (तेजपात) कुंकुम (रोली) और रक्तचन्दन युक्त तांबे के घट में भरकर उसके द्वारा स्नान करने से रवि के गोचर का दोष नष्ट होता है॥२५॥

जन्मनक्षत्रेण रविसंक्रमणफलम्

यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत् ।
तन्मासाभ्यन्तरे तस्य रोगक्लेशधनक्षयाः ॥२६॥

नाड़ी नक्षत्र में रवि संक्रमण होने पर जो दोष होता है, वह पहिले सामान्य रूप से कहा गया है, अब केवल जन्म नाड़ी नक्षत्र में रवि संचार का विशेष दोष कथित होता है यथाः—यदि किसी मनुष्य के जन्म नक्षत्र में रवि एक राशि से अन्यराशि में जाय तो उस सौर मास में उक्त मनुष्य का रोग, क्लेश और धनक्षय होता है॥२६॥

जन्मर्क्षे रविसंक्रांतिस्नानम्

तगरसरोरुहपत्रैरजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः ।
स्नानं जन्मनक्षत्र दिने रविसंक्रांतौ नृणां शुभदम् ॥२७॥

जन्म नक्षत्र में रविसंक्रमण होने पर उसका प्रतीकार कथित होता है जिस किसी मनुष्य के जन्म नक्षत्र में रवि का संचार होने पर तगर पुष्प, पद्मपत्र, हलदी, सफेद सरसौ और लोध्रयुक्त जल से वह मनुष्य स्नान करे, तो जन्म नक्षत्र में रविसंक्रमण का दोष नष्ट होता है॥२७॥

स्वनक्षत्रेण जन्मदिवसफलम् ।

जन्मर्क्षयुक्ता यदि जन्ममासे यस्य ध्रुवं जन्मतिथिर्भवेच्च ।
भवन्ति संवत्सरमेव यावन्नैरुज्यसम्मान सुखानि तस्य ॥२८॥

स्वनक्षत्र में जन्म तिथि का फल वर्णित होता है। किसी मनुष्य की जन्म तिथि यदि जन्म के महीने में जन्मनक्षत्र युक्त हो, तो उस

वर्ष में उसको रोग नहीं होता, बरन सन्मान और सुख के सहित काल व्यतीत करता है।।२८।।

अनृक्षयोगेन शनिभौमयोर्वासरे जन्मदिनफलम्

कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मदिनं भवेत् ।
अनृक्षयोगसंप्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदे पदे ।।२९।।

जन्म नक्षत्रयुक्त न होकर शनि मंगलवार में जन्म तिथि होने पर उसका फल कहा जाता है। यदि किसी मनुष्य की शनिवार अथवा मंगलवार में जन्म नक्षत्रयुक्त जन्म तिथि न हो तो उस वर्ष में उसको पद पद पर विघ्न होता है।।२९।।

जन्मनक्षत्रेण भौमशनिवारफलम्

जन्मन्यृक्षे यदि स्यातां वारौ भौमशनैश्चरौ ।
स मासः कल्मषो नाम मनोदुःखप्रदायकः ।।३०।।

शनि मंगलवार में जन्म नक्षत्र योग का फल कथित होता है। जिस किसी महीने में जन्म नक्षत्र में यदि मंगलवार अथवा शनिवार हो, तो वह मास उसका पाप मास के नाम से अभिहित होता है और उस मनुष्य को उस महीने में अनेक प्रकार का मनोदुःख होता है।।३०।।

जन्मदिनशांतिः

तस्य सर्व्वौषधिस्नानं ग्रहविप्रसुरार्चनम् ।
सौरारयोर्द्दिने मुक्ता देयाऽनृक्षे तु काञ्चनम् ।।३१।।

शनि मंगलवार में जन्म तिथि योग में और जिस किसी मास में जन्म नक्षत्र योग में दोष का प्रतीकार कथित होता है जन्म तिथि और प्रतिमास में जन्म नक्षत्र में शनिवार अथवा मंगलवार योग होने पर जो दोष कहा गया है, उसकी शांति के निमित्त सर्वौषधियुक्त जल में स्नान, ग्रह ब्राह्मण और देवता की पूजा करै।

शनि मंगलवार में जन्म तिथि और जन्म नक्षत्र का दोष शांत होने के लिये मोती दान और जन्म नक्षत्र विहीन जन्म तिथि में काञ्चन दान करै।।३१।।

सर्व्वौषधिः

मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम् ।
शुंठी चम्पकमुस्तश्च सर्व्वौषधिगणः स्मृतः ।।३२।।

सर्वौषधि कथित होती हैं। मुरा, मांसी (मुलैठी), वच, कुष्ठ, (कूट) शैलेय, हलदी, दारु हलदी, शुंठी, (सोंठ) चम्पक (चंपा) और मोथा इन सब द्रव्यों को सर्व्वौषधि कहते हैं।।३२।।

इति भाषाटीकायां चन्द्रताराशुद्धिस्तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

चतुर्थोऽध्यायः ।

वारगुणाः

सितेंदुबुधजीवानां वाराः सर्वत्र शोभनाः ।
भानुभूसुतमंदानां शुभकर्म्मसु केष्वपि ॥१॥

वार फल कथित होता है। शुक्र, सोम, बुध और बृहस्पति सभी कार्यों में शुभ होता है और रवि मंगल तथा शनिवार किसी किसी कार्य में शुभ होता है॥१॥

देशांतरे-वाराधिकारः

रेखापूर्वापरयोर्व्वाराः सूर्योदयात्परस्तात्प्राक् ।
देशांतरयो जनमितविघटीभिः पादहीनाभिः ॥२॥

प्रतिदेश में वार इत्यादि का काल कथित होता है। रेखा के पूर्व और अपर देश में क्रमशः सूर्योदय के पीछे पूर्व में वारप्रवृत्ति होती है अर्थात् रेखा की पूर्वदिशा में सूर्योदय के पीछे और रेखा के अपरदेश में (पश्चिम भाग में) सूर्योदय के पहिले वारप्रवृत्ति होती है। देशांतर योजन परिमितपल को चतुर्थांश विहीन करने से ही उसके द्वारा वार प्रवृत्ति के सूक्ष्मकाल का निर्णय होता है। सूर्य सिद्धांत ने कहा है "राक्षसालय (लंका) और देवौकः शैल अर्थात् सुमेरु पर्वत इन दोनों के मध्य में सूत्रग, रौहीतक, अवन्ती और कुरुक्षेत्र इत्यादि देश हैं, इन देशों को ही रेखा कहकर कल्पना करी जाती है" अत एव रौहीतक और अवन्ती इत्यादि देशों की पूर्व दिशा में जो सब

देश हैं, उन सब स्थानों में सूर्योदय के पीछे वार प्रवृत्ति और रौहीतक इत्यादिक देशों के पश्चिम भाग में सूर्योदय के पहिले वार प्रवृत्ति होती है। वास्तविक रेखा संज्ञक रौहीतक और अवंती इत्यादि देशवासी मनुष्यगण जिस समय सूर्य का दर्शन करते हैं उसी समय सभी देशों में वार प्रवृत्ति होती है। देशांतर योजन भी सूर्य सिद्धांत के द्वारा वर्णित हुआ है यथा "गौड़ देश में ११५ पञ्चदशाधिक शतयोजन, वंग में सुवर्ण ग्रामादि देश में १४० चत्वारिंशदधिक शतयोजन और वाराणसी में १०८ अष्टाधिक शतयोजन देशांतर होता है। इसी प्रकार अन्याय देशों में भी देशांतर योजन का अनुमान कर लेना चाहिये। वंग में सुवर्णग्रामादिदेश में देशांतर १४० एकसौ चालीस योजन उक्त हुआ है। इसका चतुर्थांश ३५ पल घटाने से १०५ एक सौ पांच पल होते हैं" अत एव १।४५ एक दण्ड पैतालीस पल के समय वंगदेश में सुवर्ण ग्रामादिस्थान में वारप्रवृत्ति होगी, इसी प्रकार समस्तलोक वार प्रवृत्ति ग्रहण करते हैं, किंतु सूर्य सिद्धांत ने "अहोरात्र में वारप्रवृत्ति होती है" ऐसा भी कहा है।।२।।

विशेषतो वारफलम् ।

उपचयकरस्य वारे ग्रहस्य कुर्यात्स्ववारविहितञ्च ।
अपचयकरग्रहदिने कृतमपि सिद्धिं न याति यतः ।।३।।

रवि शुद्धि विषय में विशेष कथित होता है। गोचर में हो वा दशा में हो जो ग्रह उपचय कर अर्थात् मंगल कर हो, उस ग्रह के वार में पूर्वोक्त स्व स्व वार विहित कर्म करने से शुभ होगा, किंतु गोचरादि में अपचय अर्थात् मंगलकर ग्रहके वार में स्व स्व वार विहितकर्म करने पर भी वह कर्म सिद्ध नहीं होगा।।३।।

तिथीनां नामानुरूपफलकथनम्

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च नामसदृशफलाः ।
न्यूनसमेष्टाः शुक्ले कृष्णे तिथयः प्रतीपांताः ।।४।।

प्रतिपदादि पन्द्रह तिथि की नन्दादि संज्ञा कथित होती है। यथा ; –प्रतिपदादि तिथि क्रमशः, त्रिरावृत्ति द्वारा नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा, इन पांच संज्ञा में अभिहित होती हैं अर्थात् दोनों पक्ष की पड़वा, छठ और एकादशी तिथि नन्दा, दोयज, सप्तमी और द्वादशीतिथि भद्रा, तीज, अष्टमी और तेरस तिथि, जया, चौथ, नवमी और चौदश तिथि रिक्ता, और पंचमी, दशमी तथा पंचदशी (पूर्णिमा और अमावस्या) तिथि को पूर्णा कहा जाता है। नन्दादि पांच तिथि नामानुरूप फल देती हैं, किंतु इसमें विशेष यह है कि शुक्लपक्ष में पड़वा आदि (पंचमी तिथि पर्यंत) पांच तिथि अल्पफल प्रदछट इत्यादि दशमी तक पांच तिथि मध्यम फलप्रद और एकादशी इत्यादि पूर्णमासी तक पांच तिथि पूर्ण फलदायक होती हैं। कृष्णपक्ष में इसके विपरीत होता है अर्थात् पड़वा इत्यादि पंचमीपर्यंत पांच तिथि पूर्णफलप्रद, छठ इत्यादि दशमी पर्यंत पांच तिथि मध्यम फलप्रद और एकादशी इत्यादि अमावस्या पर्यंत पांच तिथि अल्प फलप्रद होती हैं।।४।।

अवमत्र्यहस्पर्शविवेकः

तिथ्यन्तद्वयमेको दिनवारः स्पृशति यत्र तद्भवति ।
अवमदिनं त्रिदिनस्पृक् तिथिस्पर्शनादह्नः ।।५।।

अवम और त्र्यह स्पर्श होता है। एक सावन दिन (दिन रात्रि) में यदि दो तिथि का अंत हो, तो उसको अवमदिन कहते हैं और एक सावन दिन में तीन तिथि का स्पर्श होने पर उसको त्र्यह स्पर्श दिन कहा जाता है। पहिले दिन वार प्रवृत्ति के परकाल पर दिवस

सूर्योदय के पूर्व में यदि दो तिथि का अंत हो अर्थात् जिस प्रकार दो दण्ड एक तिथि रहकर पर तिथि षट्पञ्चाशत् (छप्पन) दण्डात्मिका होने पर वह दिन अवम होगा, और सूर्योदय के पीछे दो तिथि के मिलने पर उसका नाम त्र्यह स्पर्श है यथा सूर्योदय के पीछे और वार प्रवृत्ति के पहिले जो कोई तिथि एक दण्ड रहकर परतिथि यदि सप्तपंचाशत् (सत्तावन) दण्डात्मिका हो और इसके पीछे अन्यतिथि के मिलने पर ही उस दिन को त्र्यह स्पर्श कहेंगे।।५।।

त्र्यहस्पर्शनिन्दा ।

त्र्यहस्पृशन्नाम यदेतदुक्तमत्र प्रयत्नः कृतिभिर्व्विधेयः ।
विवाहयात्रा शुभपुष्टिकर्म सर्व्वं न कार्यं त्रिदिनं स्पृशेत्तु ।।६।।

त्र्यह स्पर्श की निन्दा कथित होती है। जो दिन त्र्यह स्पर्श कहकर कथित हुआ है, उसमें विवाह यात्रा और शुभ पौष्टिक समस्त कर्म पण्डितगण यत्नपूर्वक त्याग करें। किंतु गोविंदानन्द ने कहा है कि, तिथि विशेष विहित व्रतारंभ इत्यादि त्र्यह स्पर्श में भी कर सकता है।।६।।

नक्षत्रदेवताकथनम्

अश्वियमदहनकमलजशशिशूलभृददितिजीवफणिपितरः ।
योन्यर्य्यमदिनकृत्त्वष्टृपवनशक्राग्निमित्राश्च ।।७।।
शक्रो निर्ऋतिस्तोयं विश्वविरीञ्चिहरिर्व्वसुर्व्वरुणः ।
अजपादोऽहिर्बुध्नयः पूषा चेतीश्वरा भानाम् ।।८।।

अश्विन्यादि नक्षत्र के अधिपति (अष्ठिात्री) देवता कथित होते हैं। अश्विनी के अधिपति अश्वि, (अश्विनी कुमार) भरणी के अधिपति यम, कृत्तिका के अधिपति अग्नि, रोहिणी के अधिपति ब्रह्मा, मृगशिरा के अधिपति चन्द्र, आर्द्रा के अधिपति शिव, पुनर्वसु

के अधिपति अदिति पुष्य के अधिपति बृहस्पति, आश्लेषा के अधिपति सर्प, मघा के अधिपति पितृगण, पूर्वाफाल्गुनी के अधिपति योनि, उत्तराफाल्गुनी के अधिपति अर्यमा, हस्त के अधिपति सूर्य, चित्रा के अधिपति त्वष्टा, स्वाती के अधिपति पवन, विशाखा के अधिपति शक्राग्नि, अनुराधा के अधिपति मित्र, ज्येष्ठा के अधिपति इन्द्र, मूल के अधिपति नर्ऋति, पूर्वाषाढ़ के अधिपति तोय, उत्तराषाढ़ के अधिपति विश्व, अभिजित् के अधिपति विरिञ्च, श्रवण के अधिपति हरि, धनिष्ठा के अधिपति वसु, शतभिषा के अधिपति वरुण, पूर्वाभाद्रपद के अधिपति अजपाद, उत्तराभाद्रपद के अधिपति अहिर्बुध्नय, और रेवतीनक्षत्र के अधिपति पूषा होते हैं, अश्विनी इत्यादि नक्षत्र में जो जो देवता उक्त हुआ है, प्राय: उस उस देवता के पर्याय शब्द से भी नक्षत्र को समझना चाहिये। अश्विनी नक्षत्र के अश्विनी कुमार देवता हैं अश्विनी कुमार पर्यायक शब्द और अश्वपर्यायिक शब्द से भी अश्विनी नक्षत्र जानना चाहिये, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के योनि देवता हैं भगपर्यायिक शब्द से भी पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र समझा जाता है, उत्तराफाल्गुनी के देवता अर्यमा हैं, यहां पर पर्यायिकशब्द नहीं है अर्यमा का स्वरूप मात्र है हस्तनक्षत्र के दिनकृत देवता हैं रवि पर्यायिक शब्द से भी हस्त जानना चाहिये चित्रानक्षत्र के त्वष्टा देवता हैं, यहां पर भी स्वरूप मात्र है, स्वाती के देवता पवन हैं, पवन वाचक शब्द से भी स्वाती नक्षत्र को समझना, पूर्वाषाढ़ा के अधिपति तोय हैं जलपर्यायिक शब्द से पूर्वाषाढ़ा को जानना चाहिये, अभिजित् नक्षत्र के अधिपति विरिञ्चि हैं, यहां स्वरूप मात्र है, रेवती नक्षत्र के देवता पूषा हैं, यहां भी स्वरूप मात्र है, किंतु पौष्णपद से रेवती नक्षत्र को जानना चाहिये।।७-८।।

अशुभनक्षत्रगण:

नक्षत्रमपटुकिरणं पश्चात्सन्ध्यागतं ग्रहैर्भिन्नम् ।
क्रूरनिपीडितमुत्पातदूषितं चाशुभं सर्वम् ।।९।।

अशुभ नक्षत्रों का निर्णय किया जाता है। अश्विनी इत्यादि सत्ताईस नक्षत्र में अपटुकिरण अस्फुटरश्मि अर्थात् रविभोग्य नक्षत्र का पूर्व और परनक्षत्र अल्परश्मि युक्त होता है। यह दोनों नक्षत्र, पश्चात् सन्ध्यागत (रविभोग्य) नक्षत्र, और शुभाशुभ ग्रहयोग द्वारा भिन्न नक्षत्र, पाप ग्रह भोग्य नक्षत्र और उल्कापातादि विविधोत्पातदूषित नक्षत्र अशुभनक्षत्र कहा गया है, उक्त सब अशुभ नक्षत्रों में कोई शुभ कार्य नहीं करना चाहिये।।९।।

ऊर्ध्वाननक्षत्रगण:

रोहिण्यार्द्रसतिष्यमूलवसवो विष्णुस्त्रयोऽप्युत्तरा
एतान्यूर्ध्व मुखानि भानि नव च ज्योतिर्विदो मेनिरे ।
एभिश्चित्रसितातपत्रभवनप्रासादहर्म्याङ्घ्रिपप्रकाराट्टवि-
हारतोरणपुरप्रारम्भणं शस्यते ।।१०।।

ऊर्द्धमुख नक्षत्र कथित होते हैं। रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, मूल, धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, और उत्तराभाद्रपदा इन सब नक्षत्रों को ज्योतिर्विदों ने ऊर्द्धमुखगण कहकर निरूपित किया है, चित्रकार्य, श्वेतच्छत्र धारण, गृहारम्भ, राजपुर गठन और अट्टलिकारम्भ में यह नौ नक्षत्र श्रेष्ठ होते हैं और वृक्षारोपण में प्राचीर गठन में (दीवार बनाना या मरम्मत कराना) वणिक्गृहारम्भ में (दुकान या वैश्य का घर बनाने में) विहार कर्म में, एवं बहिर्द्धार और पुरीगठन (नगर के निर्माण) में भी उक्त सब नक्षत्र श्रेष्ठ होते हैं।।१०।।

पार्श्वाननक्षत्रगणः

मैत्राखण्डलचन्द्रवाणितुरगाश्चित्रा तथा स्वातयो,
रेवत्योऽथ पुनर्वसुश्च कथितः पार्श्वास्यनामा गणः ।
एभिर्यन्त्ररथादिपोतकरणं सद्मप्रवेशोऽपि वा,
शस्तोऽयं गजवाजिगर्द्दभगवां ग्राहे तथा यंत्रणे ।।११।।

पार्श्वमुख नक्षत्र कथित होते हैं। अनुराधा, ज्येष्ठा, मृगशिरा, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाती, रेवती, और पुनर्वसु, इन सब नक्षत्रों को पार्श्वमुख नक्षत्र कहते हैं। उक्त सब नक्षत्रों में यन्त्रादि करण, रथनिर्माण, नौकादि गठन, और गृहप्रवेश आदि प्रशस्त होता है।।११।।

अधोमुखनक्षत्रगणः

आश्लेषवह्नियमपित्र्यविशाखयुक्तं,
पूर्वात्रयंब शतभिषा च नवाप्युडूनि ।
एतान्यधोमुखगणानि शिवानि नित्यंब
विद्यार्घभूमिखननेषु च भूमितानि ।।१२।।

अधोमुख नक्षत्र कथिथ होते हैं। आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वभाद्रपदा, और शतभिषा, यह सब नक्षत्र अधोमुखगण कहे गये हैं उक्त सब नक्षत्रों में विद्यारंभ अर्घ दान और भूमि खननादि कार्य शुभ होते हैं।।१२।।

स्थिरनक्षत्रगणः

त्र्यीण्युत्तराणि तेभ्यो रोहिण्यश्च ध्रुवाणि तैः कुर्यात् ।
अभिषेकशांति तरुनगरबीजवापध्रुवारम्भान् ।।१३।।

ध्रुव नक्षत्रगण कथित होते हैं। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी यह सब नक्षत्र ध्रुवगण हैं इनमें अभिषेक शांति तरुरोपण, नगर स्थापन बीज वपन श्रेष्ठ है और कोई कोई

पण्डित अधोमुख नक्षत्र विहित विद्यारंभ अर्घदान और भूमिखननादि कार्य भी इसमें प्रशस्त कहते हैं।।१३।।

तीक्ष्णनक्षत्रगणः

मूलशक्रशिवभुजगाधिपानि तीक्ष्णानि तेषु सिध्यन्ति ।
अभिघातमन्त्रवेतालभेदवधबन्धनसम्बन्धाः ।।१४।।

तीक्ष्णगण कथित होते हैं। मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, और आश्लेषा नक्षत्र तीक्ष्णगण हैं, इन सब नक्षत्रों में अभिघात (मारण आदि) मंत्रकर्म भूतदानवादि साधन और वध बन्धनादि कार्य सिद्ध होता है।।१४।।

उग्रनक्षत्रगणः

उग्राणि पूर्वभरणीपित्र्याण्युत्सादनादिसाध्येषु ।
योज्यानि बन्धविषदहनशस्त्रसंघातादिषु च सिद्धौ ।।१५।।

उग्रगण कथित होते हैं। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्रपद, भरणी, और मघा यह सब नक्षत्र उग्रगण हैं, उक्त सब नक्षत्रों में शत्रु उच्चाटन, बन्धन, विष प्रयोग, दहन और शस्त्रघातादि कार्य करने से सिद्ध होता है।।१५।।

क्षिप्रनक्षत्रगणः

लघुहस्ताश्विनपुष्याः पण्यरतिज्ञानभूषणकलासु ।
शिल्पौषधि पानादिषु सिद्धिकराणि प्रदिष्टानि ।।१६।।

क्षिप्रगण कथित होते हैं। हस्त, अश्विनी और पुष्य नक्षत्र क्षिप्र (ल) गण हैं उनमें पुण्यकर्म (खरीद फरोख्त) रति, ज्ञान, भूषण, कला, शिल्पकर्म, औषधि पान, ऋणग्रहण (कर्ज लेना) और ऋणदान (कर्ज देना) प्रशस्त होता है।।१६।।

मृदुनक्षत्रगणः

मृदुवर्गस्त्वनुराधा चित्रापौष्णेन्दवानि मित्रार्थे ।

सुरतविधि वस्त्रभूषणमंगलगीतेषु च हितानि ॥१७॥

मृदुगण कथित होते हैं। अनुराधा, चित्रा, रेवती, और मृगशिरा नक्षत्र मृदुगण हैं, इन सब नक्षत्रों में मित्र, अर्थ, सुरत विधि, वस्त्र, भूषण संग्रह, और गीतादि मंगल कार्य प्रशस्त होते हैं॥१७॥

मृदुतीक्ष्णनक्षत्रगणः

हौतभुजं सविशाखं मृदुतीक्ष्णं तद्विमिश्रफलकारि ।
हयवृषभकुञ्जराणां वाहनदमनानि सेतुश्च ॥१८॥

मृदुतीक्ष्णनक्षत्र कथित होते हैं। कृत्तिका और विशाखा नक्षत्र मृदुतीक्ष्ण (मिश्र) गण हैं, उक्त नक्षत्रों में मृदु और तीक्ष्णगण विहित कर्म मिश्र (मध्य) फल होता है और अश्व, वृष, और हाथी इत्यादि का वहन दमन और सेतुकर्म शुभ होता है॥१८॥

चरनक्षत्रगणः

श्रवणात्त्र्यमादित्यानिलौ च चरकर्मणि हितानि ।
आरामोद्यानानि कर्माणि भवन्ति चरवर्गे ॥१९॥

चरनक्षत्रगण कथित होते हैं। श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु और स्वाती नक्षत्र चरगण हैं, इन सब नक्षत्रों में चर (अस्थिर)-कर्म, आराम (उपवन) और उद्यान (फलान्वितवन) का आरम्भ शुभ होता है॥१९॥

एकदैवोग्रादिसप्तनक्षत्रनिर्द्देशः

उग्रः पूर्वमघान्तका ध्रुवगणस्त्रीण्युत्तराणि,
स्वभुर्वातादित्यहरित्रयं चरगणः पुष्याश्विहस्ता लघुः ।
चित्रामित्रमृगान्त्यभं मृदुगणस्तीक्ष्णोऽहिरुद्रेन्द्रयुङ्
मिश्रोऽग्नि सविशाखतः शुभफलाः सर्वे स्वकृत्ये गणाः॥२०॥

एक कालीन उग्रादि सप्तनक्षत्रगण कथित होते हैं पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, मघा और भरणी, यह सब नक्षत्र उग्रगण

हैं। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी, यह कई नक्षत्र ध्रुवगण हैं। स्वाती, पुनर्वसु, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्र चरगण हैं। पुष्य, अश्विनी और हस्तनक्षत्र लघुगण हैं। चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा और रेवती यह सब नक्षत्र मृदुगण हैं। आश्लेषा, आर्द्रा ज्येष्ठा और मूलनक्षत्र तीक्ष्णगण और कृत्तिका एवं विशाखा नक्षत्र मिश्रगण हैं। यह सब नक्षत्र अपने अपने कार्य में शुभकारी होते हैं।।२०।।

पुंनक्षत्रगणः *

हस्तो मूलः श्रवणः पुनर्वसुर्मृगशिरस्था पुष्यः ।
पुंसंज्ञिते च कार्ये पुंनामायं गणः शुभदः ।।२१।।

पुन्नामनक्षत्र कथित होते हैं हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरा, और पुष्य इन सब नक्षत्रों को पुंनक्षत्र कहा जाता है, पुंसबनादि कार्य में उक्त सब नक्षत्र शुभदायक होते हैं।।२१।।

नित्ययोगाः

विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यः शोभनस्तथा ।
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव च ।।२२।।
गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा ।
वज्रश्चासृग्व्यतीपातो वरीयान्परिघः शिवः ।
सिद्धिः साध्यः शुभः शुक्रो ब्रह्मेन्द्रौ वैधृतिस्तथा ।।२३।।

नित्ययोग कथित होते हैं विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र असृक्, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, साध्य, सिद्ध, शुभ शुक्र, ब्रह्म, इन्द्र और वैधृति, यह सत्ताईस नित्य योग कहे गये है।।२२–२३।।

---

* क्वचित् पुस्तके ।

निषिद्धयोगानां वर्जनीयांशनिर्णयो विहितानां नामाऽनुरूपफलनिर्णयश्च

परिघस्य त्यजेदर्द्धं शुभकर्म ततः परम् ।
त्यजादौ पंच विष्कम्भे सप्त शूले च नाडिकाः ।।२४।।
गण्डव्याघातयोः षट्कं नव हर्षणवज्रयोः ।
वैधृतिव्यतिपातौ च समस्तौ परिवर्जयेत् ।।२५।।
शेषा यथार्थनामानः शुभकार्येषु शोभनाः ।
निषिद्धा वर्जितास्तत्र सर्वे नामस्वरूपतः ।।२६।।

निषिद्धयोग का शुभाशुभ निर्णय होता है। परिघयोग का अर्द्ध त्यागकर शुभकार्य करै। इसी प्रकार विष्कम्भ योग के प्रथम पांचदण्ड, शूलयोग के प्रथम सातदण्ड, गण्ड और व्याघात योग के प्रथम छः दण्ड, हर्षण और वज्रयोग के प्रथम नौ दण्ड, तथा वैधृति और व्यतीपातयोग को समस्त परित्याग करके शुभकार्य करना चाहिये। उक्त सब योग के अतिरिक्त जो योग हैं उनमें शुभकर्म करने से शुभ फल प्राप्त होता है। समस्त विरुद्धयोग नामानुसार भी वर्जित होते हैं।।२४–२६।।

त्र्यमृतयोगः ।

भूमिपुत्रार्कयोरह्नि नन्दा मरुद्वारुणार्द्रान्त्यचि त्राहिमूलाग्निभिः।भार्गवेणांकयोरह्नि भद्रा भवेत्फल्गुयुग्माजयुग्मोडुभिः संयुता । सोमपुत्रस्य वारे जया स्यान्मृगोपेन्द्रगुर्व्विन्दुयाम्याभिजिद्वाजिभिः । गीष्पतेरह्नि युक्ता च रिक्ता यदा विश्वशक्राग्नियुक्पित्रदित्यऽम्बुभिः । सूर्यसुतस्य दिने यदि पूर्णा ब्रह्मदिनाधिपतिद्रविणैः स्यात् । योगवारास्त्रिभिरेव समेताः सर्वसमीहितसिद्धिनियुक्ताः ।।२७।।

त्र्यमृतयोग कथित होता है। मंगलवार अथवा रविवार में यदि

नन्दा अर्थात् पड़वा एकादशी या छठ तिथि स्वाती, शतभिषा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, आश्लेषा, मूल वा कृत्तिका नक्षत्र हों तो त्र्यमृतयोग होता है। इसी प्रकार शुक्रवार वा सोमवार में भद्रा, (दोयज, द्वादशी, वा सप्तमी) तिथि, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्व भाद्रपद वा उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में त्र्यमृतयोग होता है। बुधवार में जया अर्थात् तेरस, अष्टमी वा तीज तिथि मृगशिरा, श्रवण, पुष्य, ज्येष्ठा, भरणी, अभिजित्, वा अश्विनी नक्षत्र होने पर त्र्यमृतयोग होगा। बृहस्पतिवार में रिक्ता (चौथ, नवमी वा चौदश) तिथि, उतराषाढ़, विशाखा, अनुराधा, पुनर्वसु वा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र होने पर त्र्यमृतयोग होता है। शनिवार में पूर्णा अर्थात् पंचमी, दशमी, अमावस्या वा पूर्णिमा तिथि, एवं रोहिणी हस्त वा धनिष्ठा नक्षत्र होने पर त्र्यमृतयोग होता है। यह अमृतयोग सब योगों से श्रेष्ठ है। इस योग में मनुष्य को वाञ्छितफल प्राप्त होता है।।२७।।

अमृतयोगकथनम्

ध्रुवगुरुकरमूलं पौष्णभं चार्कवारे,
हरियुगविधियुग्मे फल्गुनीभाद्रयुग्मे ।
दिवसकरतुरङ्गौ शर्व्वरी नाथवारे,
गुरुयुगनलवात्तोपान्त्यपौष्णानि कौजे ।।२८।।
दहनविधिशताख्या मैत्रभं सौम्यवारे ,
मरुददितिभपुष्या मैत्रभं जीववारे ।
भगयुजयुगभ्वे विष्णुमैत्रे सिताहे,
श्वसनकमलयोनी सौरिवारेऽमृतानि ।।२९।।

नक्षत्रामृत योग कथित होता है। रविवार में उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद , रोहिणी, पुष्य, हस्त, मूल, वा रेवती

नक्षत्र होने पर नक्षत्रा मृतयोग होता है। इसी प्रकार सोमवार में श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, हस्त वा अश्विनी नक्षत्र में और मंगलवार में पुष्य, आश्लेषा, कृत्तिका, स्वाती, उत्तराभाद्रपद वा रेवती नक्षत्र में नक्षत्रामृत योग होता है।।२४।। बुधवार में कृत्तिका, रोहिणी, शतभिषा, वा अनुराधा होने पर नक्षत्रा मृतयोग होता है। इसी प्रकार बृहस्पतिवार में स्वाती, पुनर्वसु, पुष्य अथवा अनुराधा नक्षत्र में, शुक्रवार में पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी श्रवण वा अनुराधा नक्षत्र में और शनिवार में स्वाती अथवा रोहिणी नक्षत्र में नक्षत्रामृतयोग होता है।।२९।।

अमृतयोगप्रशंसा ।

यदि विष्टिव्यतीपातौ दिनं व्याप्य शुभं भवेत् ।
हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथा ।।३०।।

अमृतयोग का फल कथित होता है, जिस प्रकार तिमिर विनाशी सूर्य अंधकार के समूह का नाश करते हैं, वैसे ही यह नक्षत्रामृतयोग विष्टि भद्रा वैधृति और व्यतीपात इत्यादि दोषों को नष्ट करता है।।३०।।

पापयोगकथनम् (१)

आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशांकयोः ।
बुधे जया गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा च पापदा ।।३१।।

पापयोग कथित होता है। रविवार और मंगलवार में नन्दा अर्थात् पड़वा, एकादशी वा षष्ठी तिथि होने पर पापयोग होता है। इसी प्रकार शुक्रवार और सोमवार में भद्रा (दोयज द्वादशी और

(१) क्वचित् पुस्तके ।

सप्तमी) तिथि, बुधवार में जया अर्थात् तेरस, अष्टमी और तृतीया तिथि, बृहस्पतिवार में (चौथ, नवमी, चौदश) तिथि, एवं शनिवार में पूर्णा अर्थात् पंचमी, दशमी, अमावस्या वा पूर्णिमा तिथि होने पर पापयोग होता है।।३१।।

सिद्धिदग्धपापयमघण्टयोगाः

नन्दाद्याः सिद्धियोगा भृगुजबुधकुजार्कीज्यवारैः प्रशस्ताः,
सूर्येशाशाग्निषड्बृङ्मुनिमिततिथयोऽर्कादिवारैः प्रदग्धाः ।
पापोऽर्काहे विशाखा त्रययममुडुपस्याह्नि चित्राचतुष्कं तोयं,
विश्वाभिजिद्भं त्वथ कुजदिवसे स्वत्रयं विश्वरुद्रौ ।।३२।। ज्ञाहे
मूला विशाखा यमधनतुरगाऽन्त्यानि जीवेऽह्नि पैत्र्यं,
रोहिण्यार्द्रा यमेन्दू शतभमथ भृगोरह्नि पुष्यात्त्रयेन्द्रौ ।
शौराहे हस्तयुग्मार्य्यमयमजलयुक्पौष्णपुष्याधनानि,
घण्टोऽखण्डर्क्षयुक्ते स्वगृहपतिदिने सौम्यवारेऽर्य्यमापि ।।३३।।

सिद्धियोग, दग्ध, पापयोग और यमघन्टयोग कथित होतां है शुक्र, बुध, मंगल, शनि और बृहस्पति वार में क्रमशः नन्दादि तिथि होने पर सिद्धियोग होता है, यथा शुक्रवार में नन्दा अर्थात् पड़वा, एकादशी और छठ तिथि होने पर सिद्धियोग होता है। इसी प्रकार बुधवार में भद्रा (दोयज, द्वादशी और सप्तमी) तिथि, मंगलवार, में जया अर्थात् तेरस, अष्टमी और तीज तिथि और शनिवार में रिक्ता (चौथ,नवमी और चौदश) तिथि और बृहस्पतिवार में पूर्णा, अर्थात् पंचमी, दशमी अमावस्या, पूर्णिमा तिथि होने पर सिद्धियोग होता है। रवि इत्यादि सात ग्रहों के वार में क्रमशः द्वादशी, एकादशी दशमी तीज, छट दोयज, और सप्तमी इन सात तिथि का योग होने पर दग्धयोग होता है, यथाः—रविवार में द्वादशी होने से दग्धा होती है। इसी प्रकार सोमवार में एकादशी,

मंगलवार में दशमी, बुधवार में तीन, बृहस्पतिवार में छठ शुक्रवार में दोयज, और शनिवार में सप्तमी तिथि होने पर दग्धा होती है। रविवार में विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा वा भरणीनक्षत्र होने पर पापयोग होता है। ऐसे ही सोमवार में चित्रा स्वाती, विशाखा अनुराधा, पूर्वाषाढ़ा उत्तराषाढ़ा वा अभिजित् नक्षत्र होने पर और मंगलवार में धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा अथवा आर्द्रानक्षत्र होने पर पापयोग होता है।।३२।। बुधवार में मूल, विशाखा, भरणी, धनिष्ठा, अश्विनी अथवा रेवती नक्षत्र के मिलने से पापयोग होगा, और बृहस्पतिवार में मघा, रोहिणी, आर्द्रा भरणी, मृगशिरा अथवा शतभिषा नक्षत्र होने पर,शुक्रवार में पुष्य, आश्लेषा, मघा और मृगशिरा नक्षत्र होने पर एवं शनिवार में हस्त, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, भरणी, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, रेवती, पुष्य अथवा धनिष्ठा नक्षत्रके मिलने पर पापयोग होता है। नक्षत्र के नौ नौ पादयुक्त एक एक राशि होती है। सत्ताईस नक्षत्रात्मक मेषादि बारह राशियों में जो अभग्न नक्षत्र हैं, वह सब नक्षत्रक्षेत्राधिपति रव्यादि ग्रह के चार में युक्त होने से यमघंट नामक योग होता है। यथा मघा, पूर्वाफाल्गुनी, और उत्तराफाल्गुनी का एक पाद सिंह राशि है, इसके अधिपति रवि हैं, अत एव भग्न नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी के अतिरिक्त मघा वा पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्र के रविवार में युक्त होने से यमघंटयोग होता है इसी प्रकार पुनर्वसु का चौथापाद पुष्य और आश्लेषा नक्षत्र कर्क राशि के अधिपति चन्द्र हैं पुनर्वसु के चौथे पाद के अतिरिक्त (पुष्य और आश्लेषा) नक्षत्र सोमवार में युक्त होने से यमघण्ट योग होगा। इसी नियमानुसार मंगलवार में अश्विनी, भरणी अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र में, बुधवार में आर्द्रा नक्षत्र में बृहस्पतिवारमें मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तरा-

भाद्रपद और रेवती नक्षत्रमें शुक्रवारमें रोहिणी नक्षत्रमें एवं शनिवारमें श्रवण और शतभिषा नक्षत्रमें यमघण्टयोग होता है।।३३।।

उत्पातादियोगः

रव्यादि दिवसैर्युक्ता विशाखादि चतुश्चतुः ।
उत्पाता मृत्यवः काणा अमृतानि यथाक्रमम् ।।३४।।

उत्पातादि योग कथित होता है। रव्यादि वार में विशाखादि चार चार नक्षत्र होने पर क्रमशः उत्पात, मृत्यु, काण और अमृतयोग होता है। रविवार में विशाखानक्षत्र युक्त होने पर उत्पात योग, अनुराधा होने पर मृत्यु, ज्येष्ठा होने पर काण और मूलनक्षत्र होने पर अमृतयोग होता है। इसी प्रकार सोमवार में पूर्वाषाढ़ानक्षत्र होने पर उत्पात उत्तराषाढ़ा नक्षत्र होने पर मृत्यु, अभिजित् होने पर काण और श्रवणनक्षत्र होने पर अमृतयोग होगा। मंगलादिवार में धनिष्ठादि चार चार नक्षत्र में क्रमशः उत्पातादियोग जानने चाहिये।।३४।।

क्रकचयोगः

वाजिचित्रोत्तराषाढ़ामूलपाशीज्यभान्तकाः ।
सूर्यादिवार संयुक्ता योगास्ते क्रकचाः स्मृताः ।।३५।।

क्रकचयोग कथित होता है। रविवार में अश्विनीनक्षत्र होने से क्रकचयोग होता है। इसी प्रकार सोमवार में चित्रानक्षत्र में मंगलवार में उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में, बुधवार में मूलनक्षत्र में, बृहस्पतिवार में शतभिषानक्षत्र में, शुक्रवार में पुष्य नक्षत्रमें, और शनिवार में रेवतीनक्षत्र होने से क्रकचनामक योग होता है।।३५।।

यमघण्टमृत्युयोगादीनां त्याज्यकालनिर्णयः

यमघंटे त्यजेदष्टौ मृत्यौ द्वादशनाडिकाः ।

अन्येषां पापयोगानां मध्याह्नात्परतः शुभम् ॥३६॥

यमघंटादि योग का त्याज्यकाल कथित होता है। यथा यमघंटयोग में सूर्योदय के पीछे से आठ दण्ड और मृत्यु योग में सूर्योदय के पीछे से बारह दण्ड त्यागने चाहिये। अन्यान्य समस्त पापयोग मध्याह्न काल के पीछे ही शुभ होते हैं अर्थात् मध्याह्न का पूर्वकाल त्यागना चाहिये॥३६॥

क्रकचाद्यपवादः

क्रकचो मृत्युयोगश्च दिनदग्धं तथा परे ।
शुभे चन्द्रे प्रणश्यन्ति वृक्षा वज्रहता इव ॥३७॥

क्रकचादियोग का अपवाद कथित होता है। क्रकचयोग, मृत्युयोग, दिनदग्धा और अन्यान्य अनिष्टकारी समस्त योग गोचर में चन्द्रशुद्ध होने पर वृक्ष जिस प्रकार वज्राघात से नष्ट होता है उसी प्रकार नाश को प्राप्त होते हैं॥३७॥

देशविशेषे योगव्यवस्था ।

सर्वेषु देशेषु विशेषतोऽमी विकम्भकाद्या मुनिभिः प्रदिष्टाः ।
वारर्क्षयोगास्तिथिवारयोगा वंगेषु योज्या न तु तेऽन्यदेशे।३८।

समस्त शुभाशुभ योग का ही देश विशेष में फल कथित होता है। सब देशों में ही विष्कम्भ इत्यादि सत्ताईस योगों का फल होता है, किंतु अमृतयोग, पापयोगादि, और नक्षत्रामृतादियोग तथा वार नक्षत्रादि योग में जो सिद्धि और दग्धादि योग होता है, इन समस्तयोग द्वारा शुभाशुभ फल का बल वंगदेश में ही होता है, अन्य किसी देश में इसका व्यवहार नहीं है, दोष गुण कुछ नहीं होता॥३८॥

साधिपबवादिकरणकथनम् ।

बवबालवकौलवतैतिलगरवणिजविष्टिसंज्ञानाम् ।

पतयः स्युरिन्द्रकमलजमित्रार्य्यमभूश्रियः सयमाः ।।३९।।

साधिपबवादि करण कथित होते हैं। बव, बालव, कौलव तैतिल, गर, वणिज और विष्टि इन सात करण के क्रमशः इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, अर्यमा, पृथिवी, लक्ष्मी और यम यह सात देवता अधिपति होते हैं।।३९।।

बवादिकरणोत्पत्तिकथनम्

शुक्लादितिथिशेषार्द्धात्पञ्चमे तत्तुरीयके ।
आद्यन्तार्द्धात्क्रमेण स्युरष्टावृत्त्याबवादयः ।।४०।।

बवादिकरणोत्पत्ति अर्थात् किस तिथि में कौन करण होता है, वह वर्णित होता है। यथाः– शुक्लपडवा का शेषार्द्ध शुक्लपंचमी का पूर्वार्द्ध, शुक्लाष्टमी का शेषार्द्ध, शुक्लद्वादशी का पूर्वार्द्ध, पूर्णिमा का शेषार्द्ध, कृष्णा चौथ का पूर्वार्द्ध, कृष्ण सप्तमी का शेषार्द्ध और कृष्ण एकादशी का पूर्वार्द्ध बवकरण है। शुक्ल दोयज का पूर्वार्द्ध, शुक्लपंचमी का शेषार्द्ध, शुक्लनवमी का पूर्वार्द्ध, शुक्लद्वादशी का शेषार्द्ध, कृष्णपड़वा का पूर्वार्द्ध, कृष्ण चौथ का शेषार्द्ध, कृष्णाष्टमी का पूर्वार्द्ध और कृष्ण एकादशी का शेषार्द्ध बालवकरण है। शुक्लदोयज का शेषार्द्ध, शुक्लछठ का पूर्वार्द्ध, शुक्लनवमी का शेषार्द्ध, शुक्लतेरस का पूर्वार्द्ध, कृष्णपड़वा का शेषार्द्ध, कृष्णपंचमी का पूर्वार्द्ध, कृष्णाष्टमी का शेषार्द्ध और कृष्णद्वादशी का पूर्वार्द्ध कौलवकरण। शुक्लतीज का पूर्वार्द्ध, शुक्ल छठ का शेषार्द्ध, शुक्ल दशमी का पूर्वार्द्ध, शुक्ल तेरस का शेषार्द्ध, कृष्णदोयज का पूर्वार्द्ध, कृष्णपंचमी का शेषार्द्ध, कृष्णनवमी का पूर्वार्द्ध, और कृष्णद्वादशी का शेषार्द्ध तैतिलकरण । शुक्लदोयज का शेषार्द्ध, शुक्ल सप्तमी का पूर्वार्द्ध, शुक्लदशमी का शेषार्द्ध, शुक्लचौदश का पूर्वार्द्ध, कृष्णदोयज का शेषार्द्ध, कृष्ण छठ का पूर्वार्द्ध, कृष्णनवमी का शेषार्द्ध और

कृष्णतेरस का पूर्वार्द्ध गरकरण। शुक्लचौथ का पूर्वार्द्ध, शुक्ल सप्तमी का शेषार्द्ध, शुक्ल एकादशी का पूर्वार्द्ध, शुक्लचौदश का शेषार्द्ध, कृष्णतीज का पूर्वार्द्ध, कृष्णछठ का शेषार्द्ध, कृष्णदशमी का पूर्वार्द्ध और कृष्णतेरस का शेषार्द्ध वणिजकरण। शुक्ल चौथका शेषार्द्ध, शुक्लाष्टमी का पूर्वार्द्ध, शुक्लएकादशीका शेषार्द्ध, पूर्णिमा का पूर्वार्द्ध, कृष्णतीज का शेषार्द्ध, कृष्णसप्तमी का पूर्वार्द्ध, कृष्णदशमी का शेषार्द्ध और कृष्णचौदश का पूर्वार्द्ध विष्टिकरण है॥४०॥

साधिपशकुन्यादिकथनम् ।

कृष्णचतुर्द्दश्यन्तार्द्धात् ध्रुवाणि शकुनिचतुष्पदनागाः ।
किंस्तुघ्नमथ च तेषां कालवृषफणिमारुताः पतयः ॥४१॥

साधि पशकुन्यादि करण कथित होते हैं। कृष्ण चौदश के शेषार्द्ध से शुक्लपड़वा के पूर्वार्द्ध तक तिथ्यर्द्धभोगक्रम से शकुनि, चतुष्पद, नाग, और किंस्तुघ्न यह चार करण होते हैं अर्थात्, कृष्णचौदश का शेषार्द्ध शकुनि, अमावस्याका पूर्वार्द्ध चतुष्पद, अमावस्या का परार्द्ध नाग, और शुक्लपड़वा का प्रथमार्द्ध किंस्तुघ्न करण होता। यह करण चार ध्रुव (निश्चल) कहकर विख्यात हैं। काल, वृष, फणि और मारुत यह क्रमानुसार उक्त चार करण के अधिपति होते हैं॥४१॥

भद्रा-कथनम्

तृतीया दशमी शेषे तत्पञ्चम्योस्तु पूर्वतः ।
कृष्णे विष्टिः सिते तद्वत्तासां परतिथिष्वपि ॥४२॥

विष्टि (भद्रा) कथित होती है। कृष्णपक्ष की तीज और दशमी तिथि का शेषार्द्ध विष्टिभद्रा (विष्टिकरण) होती है। इसी प्रकार उक्त दोनों तिथि की पंचमी कृष्णसप्तमी और कृष्णचौदश का

पूर्वांर्द्ध विष्टिकरण होता है। शुक्लपक्ष में तीज और दशमी के पीछे पर तिथि अर्थात् चौथ और एकादशी का परार्द्ध और तत्पंचमतिथि अष्टमी एवं पूर्णिमा का पूर्वार्द्ध विष्टिभद्रा होती है।।४२।।

विष्टचुपयोगकथनम्

केषु केष्वपि कार्य्येषु सर्व्वाण्येवं तु योजयेत् ।
विहाय विषरौद्राणि विष्टिं सर्वत्र वर्जयेत् ।।४३।।

करणों का फल कथित होता है किसी किसी कार्यविशेष में बवादि सब करण प्रशस्त होते हैं। यात्रादि कार्य में गर, वाणिज्य और विष्टिकरण अवश्य त्यागना चाहिये। विष्टिकरण (विष्टिभद्रा) विषप्रदान और युद्धादि कार्य में श्रेष्ठ होता है, अन्य किसी कार्य में शुभदायक नहीं होता, केवल विष्टिभद्रा की पुच्छ (शेष तीन दण्ड का समय) सब कार्यों में शुभ होता है।।४३।।

योगादि प्रतीकारः

योगस्य हेमकरणस्य च धान्यमिन्दोःशंखं च,
तंडुलमणीतिथि वारयोश्च ।
ताराबलाय लवणान्यथगाश्च,
राशेर्दद्यात् द्विजाय कनकं शुचिनाडि कायाः ।।४४।।

योगादि विरुद्ध होने पर उनका प्रतीकार कहा जाता है। विष्कम्भादि योग के दोष का प्रतीकार करने के लिये सुवर्णदान करे। इसी कारण के दुष्ट होने पर धान्य दान चन्द्र के दूषित होने पर दूध से भरा हुआ शंखदान, तिथि दुष्ट होने पर पुरुष के आहारयोग तण्डुलदान, वार दोष में मणिदान, तारा दुष्ट होने पर लवणदान, राशिदोष में गोदान, और जन्मादि नाड़ी दूषित होने पर उसके प्रतीकारार्थ ब्राह्मण को विशुद्ध सुवर्णदान करना चाहिये।।४४।।

वारवेला

कृतमुनियमशरमङ्गलरामर्त्तुषुभास्करादि यामार्द्धे ।
प्रभवति हि वारवेला न शुभा शुभकार्य करणाय ।।४५।।

वारवेला कथित होती है। अष्टधा विभक्तदिन के एक एक भाग को यामार्द्ध कहा जाता है। रविवार में चतुर्थ यामार्द्ध वार वेला होती है अर्थात् डेढ़ पहर के पीछे एक यामार्द्ध वारवेला होती है। इसी प्रकार सोमवार में सप्तम यामार्द्ध, मंगलवार में द्वितीय यामार्द्ध, बुधवार में पंचम यामार्द्ध। बृहस्पतिवार में अष्टमयामार्द्ध, शुक्रवार में तृतीययामार्द्ध, और शनिवार में षष्ठयामार्द्ध, अर्थात् ढाई पहर के पीछे एक यामार्द्ध वार वेला होती है, इन समस्त वारवेला में शुभाशुभ कोई कार्य नहीं करना चाहिये।।४५।।

कालवेला

कालस्य वेला रवितः शराक्षी कालानलागाम्बुधयो गजेन्दू ।
दिने निशायामृतुवेदनेत्रनगेषु रामा विधुदन्तिनौ च ।।४६।।

कालवेला वर्णित होती है। रविवार में पंचमयामार्द्ध, कालवेला होती है इसी प्रकार सोमवार में द्वितीययामार्द्ध मंगलवार में षष्ठयामार्द्ध, बुधवार में तृतीययामार्द्ध, बृहस्पतिवार में सप्तमयामार्द्ध, शुक्रवार में चतुर्थयामार्द्ध, और शनिवार में प्रथमयामार्द्ध, कालवेला होती है। यह सब कालवेला दिन में होती है। रात्रिके समय रविवारमें षष्ठयामार्द्ध, कालरात्रि, सोमवार, में चतुर्थयामार्द्ध, कालरात्रि, मंगलवार में द्वितीययामार्द्ध कालरात्रि, बुधवार में सप्तमयामार्द्ध कालरात्रि, बृहस्पतिवार में पंचमयामार्द्ध कालरात्रि, शुक्रवार में तृतीययामार्द्ध कालरात्रि, और शनिवार में रात्रि में प्रथमयामार्द्ध तथा अष्टमयामार्द्ध कालरात्रि होती है।।४६।।

कालवेलायास्त्याज्यताकथनम्

यात्रायां मरणं काले वैधव्यं पाणिपीडने ।
व्रते ब्रह्मवधः प्रोक्तः सर्व्वकर्मसु तं त्यजेत् ॥४७॥ *

कालवेला का फल कथित होता है कालवेला में यात्रा करने से करनेवाले की मृत्यु होती है। विवाह में स्त्री विधवा होती है, और उपनयन (जनेऊ) होने पर ब्रह्मवध का पाप होता है, अतएवं कालवेला में समस्त कार्य परित्याग करे॥४७॥

दिवसस्य पञ्चदशमुहूर्त्ताधिपनक्षत्रकथनम्

शिवभुजगमित्रपितृवसुजलविश्वविरिञ्चिपंकजप्रभवाः ।
इन्द्राग्नींदनिशाचरवरुणार्य्यमयोनयश्चाह्नि ॥४८॥

दिवा में पन्द्रह मुहूर्त्तके अधिपति नक्षत्र कथित होते हैं। दिनमान को पन्द्रहभागमें विभक्त करनेसे शेषके एक एक भाग का नाममुहूर्त्त है। पहिले मुहूर्त्त का अधिपति आर्द्रा नक्षत्र होता है, इसी प्रकार दूसरे मुहूर्त्त का अधिपति आश्लेषा नक्षत्र, तीसरे मुहूर्त्त का अधिपति अनुराधा नक्षत्र, चौथे मुहूर्त्त का अधिपति मघा नक्षत्र, पांचवें मुहूर्त्त का अधिपति धनिष्ठा नक्षत्र, छठें मुहूर्त्त का अधिपति पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र, सातवें मुहूर्त्त का अधिपति उत्तराषाढ़ नक्षत्र आठवें मुहूर्त्त का अधिपति अभिजित् नक्षत्र, नवम मुहूर्त्त का अधिपति रोहिणी नक्षत्र, दशवें मुहूर्त्त का अधिपति विशाखा नक्षत्र, ग्यारहवें मुहूर्त्त का अधिपति ज्येष्ठा नक्षत्र, बारहवें मुहूर्त्त. का अधिपति मूलनक्षत्र, तेरहवें मुहूर्त्त का अधिपति शतभिषा नक्षत्र, चौदहवें मुहूर्त्त का अधिपति उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, और पन्द्रहवें मुहूर्त्त का अधिपति पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र होता है॥४८॥

---

* इदममूलतया प्रतिभाति ।

रात्रेःपञ्चदशमुहूर्त्ताधिपनक्षत्रकथनम्

रुद्रोऽजोऽहिर्बुध्नयः पूषदस्रान्तकाग्निधातारः ।
इन्द्वदितिहरि गुरुरवित्वष्ट्रनिलाख्याः क्षमा रात्रौ ॥४९॥

रात्रि मुहूर्त्त के अधिपति नक्षत्र कथित होते हैं। रात्रिमानको भी पंद्रहभाग में विभक्त करने से एक एक भाग का नाम मुहूर्त्त है। रात्रि में पहिले मुहूर्त्तका अधिपति आर्द्रा नक्षत्र, दूसरे मुहूर्त्त का अधिपति पूर्वाभाद्रपदनक्षत्र, तीसरे मुहूर्त्त का अधिपति उत्तराभाद्रपद नक्षत्र, चौथे मुहूर्त्त का अधिपति रेवती नक्षत्र, पांचवें मुहूर्त्त का अधिपति अश्विनी नक्षत्र, छठे मुहूर्त्त का अधिपति भरणी नक्षत्र, सातवें मुहूर्त्त का अधिपति कृत्तिका नक्षत्र, आठवें मुहूर्त्त का अधिपति रोहिणी नक्षत्र, नवें मुहूर्त्त का अधिपति मृगशिरा नक्षत्र, दशवें मुहूर्त्त का अधिपति पुनर्वसु नक्षत्र, ग्यारहवें मुहूर्त्त का अधिपति श्रवणनक्षत्र, बारहवें मुहूर्त्त का अधिपति पुष्य नक्षत्र, तेरहवें मुहूर्त्त का अधिपति हस्तनक्षत्र, चौदहवें मुहूर्त्त का अधिपति चित्रानक्षत्र और पन्द्रहवें मुहूर्त्त का अधिपति स्वातीनक्षत्र होता है।।४९।।

मुहूर्त्तसंज्ञा

अह्नः पंचदशांशो रात्रेश्चैवं मुहूर्त्त इति संज्ञा ।
नक्षत्रे यद्विहितं तत्कार्यं तन्मुहूर्तेऽपि ॥५०॥
इति महिन्तापनीय श्री श्रीनिवासविरचितायां
शुद्धिदीपिकायां वारादिनिर्णयो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

दिनमान को पन्द्रह भाग में विभक्त करने से उसके एक एक भाग का नाम मुहूर्त्त है। रात्रिमान को भी पन्द्रह भाग में विभक्त करने से एक एक भाग को मुहूर्त्त कहा जाता है, जिस नक्षत्र में जो कार्य विहित हैं, वह उस नक्षत्रके मुहूर्त्तमें भी किया जा सकता है।

इति श्रीभाषाटीकायां वारादिनिर्णयो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पंचमोऽध्यायः

सौम्यादीनां स्थानविशेषादिशुभाशुभकथनम् ।

सर्वत्र कार्ये बुधजीवशुक्राः केन्द्रत्रिकोणोपगताः प्रशस्ताः।
तृतीयलाभारिगताश्च पापास्तिथिर्विरिक्ता शुभदस्य चाहः।।

साधारण कार्य में सौम्यादि ग्रहों के स्थान विशेष में शुभाशुभ कथित होता है। कर्म कालीन लग्न में और लग्न के चौथे, सातवें, वा दशवें स्थान में बुध, बृहस्पति और शुक्र ग्रह के स्थित होने पर तीसरे, ग्यारहवें, और छठे, स्थान में पापग्रह होने पर रिक्ता के अतिरिक्त तिथि में और शुभग्रह के वार में प्रायः समस्त कार्य ही प्रशस्त (शुभ) होते हैं।।१।।

चन्द्राद्यशुभकथनम्

इन्द्वष्टमगान् पापान् वर्ज्जयेन्नैधनं विलग्नञ्च ।
चन्द्रं च निधनसंस्थं सर्वारम्भप्रयोगेषु ।।२।।

समस्त कार्यों में ही चन्द्रगत पापग्रह और लग्नगत, पापग्रह त्यागना चाहिये और चन्द्र तथा लग्न के अष्टम स्थित पापग्रह भी त्यागने योग्य हैं।।२।।

निरंशादिवर्ज्जनम्

निरंशं दिवसं विष्टिं व्यतीपातं च वैधृतिम् ।
केन्द्रं चापि शुभैः शून्यं पापाहमपि वर्ज्जयेत् ।।३।।

निरंश अर्थात् रवि–संक्रान्ति दिन, विष्टि (भद्रा) व्यतीपात और वैधृतियोग और केंद्र में शुभग्रह न होने पर वह लग्न, और पापग्रह का वार, यह प्रायः समस्त कार्यो में ही त्यागना चाहिये।।३।।

कालाशुद्धिकथनम्

गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे नष्टे शुक्रे मलिम्लुचे ।
याम्यायने हरौ सुप्ते सर्वकर्म्माणि वर्ज्जयेत् ।।४।।

अनंतर कालाशुद्धि कथित होती है। बृहस्पति और रवि एक नक्षत्र में जाकर एक राशि में स्थिति करें अथवा भिन्न नक्षत्र में रहकर भी एक राशि में स्थित हों, तो गुर्वादित्य योग होता है। उक्त योग होने पर, बृहस्पतिके सिंह राशि में होने पर शुक्र वृद्ध सन्ध्यागत अस्त वा बाल्यागत (बाल्यभाव को प्राप्त हुआ) होने पर एवं मलमास, दक्षिणायन और हरिशयन में समस्त काम्यकर्म परित्याग करे।।४।।

उद्वाहाद्यशुद्धिः

अनिष्टे त्रिविधोत्पाते सिंहिकासूनुदर्शने ।
सप्तरात्रं न कुर्व्वीत यात्रोद्वाहादिमङ्गलम् ।।५।।

दिव्य भौम और आन्तरिक्ष इस त्रिविध उत्पात में तथा ग्रहण होने पर सात दिन तक यात्रा अथवा विवाहादि मंगलकार्य न करै।।५।।

जीवातिचारादिषु व्रतोद्वाहनिषेधः

अतिचारं गते जीवे वक्रे चास्तमुपागते ।
व्रतोद्वाहौ न कुर्व्वीत जायते मरणं ध्रुवम् ।।६।।

बृहस्पति के अतिचारी होने पर, वक्रगमन करने पर अथवा अस्तादि होने पर उपनयन और विवाहादि कार्य न करै यदि कोई

उक्त सब कार्य करेगा, तो मृत्यु फल होगा, इसमें संदेह नहीं।।६।।

जीवातिचारापवादः

त्रिकोणजायाधनलाभराशौ वक्रातिचारेण गुरुः प्रयातः ।
यदा तदा प्राह शुभे विलग्ने हिताय पाणिग्रहणं वसिष्ठः।।

बृहस्पति के वक्राति चार संबंध में प्रतिप्रसव कथित होता है। बृहस्पति वक्री अथवा अतिचारी होकर यदि कर्म कर्त्ता की नवीं, पांचवीं, सातवीं, दूसरी वा ग्यारहवीं राशि में स्थित हों, तो शुभ लग्न में विवाह हो सकता है। वसिष्ठ मुनि ने कहा है। यह विवाह मंगलदायक होगा।।७।।

यामित्रवेधः

रविमन्दकुजाक्रान्तमृगाङ्कात्सप्तमं त्यजेत् ।
विवाहयात्रा चूड़ासु गृहकर्मप्रवेशने ।।८।।

यामित्र वेध कथित होता है। चंद्र जिस राशि में स्थित है, उस स्थान से सातवीं राशि में यदि रवि शनि वा मंगल वास करे तो यामित्र वेध होता है, इसमें चूड़ा, विवाह, गृहारम्भ और गृहप्रवेश नहीं कर सकता।।८।।

विद्धनक्षत्रवर्ज्जनम्

कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुंसवने तथा ।
प्राशने चाद्य चूड़ायां विद्धमृक्षं विवर्ज्जयेत् ।।९।।

विद्धनक्षत्र वर्जन कथित होता है। कर्णवेध (कर्णछेदन) विवाह, उपनयन (जनेऊ), पुंसवन, अन्नप्राशन और चूड़ाकार्य में विद्धनक्षत्र त्याग करै अर्थात् उक्त सब कार्यों में दशयोग भंग का विचार करना चाहिये। दशयोग भंग का नामांतर खर्ज्जूरवेध है।।९।।

खर्जूरवेधः

तिर्य्यंगवेदकदशोनविंशमैकादशाष्टादशविंशसंख्या ।
इष्टोडुना सूर्य्ययुतोडुना च योगादमूश्चेद्दशयोगभङ्ग।।१०।।

खर्जूर वेध की प्रणाली कथित होती है। कर्म कालीन नक्षत्र के सहित रवि भुज्यमान नक्षत्र के योग करने से यदि पन्द्रह, छः, चार, एक, दश, उन्नीस, ग्यारह, अठारह, वा वीस, इस सब संख्या में जो कोई अंक हो खर्जूरवेध होगा। सत्ताइस के अधिक होने से खर्जूरवेध देखना चाहिये।।१०।।

विद्धनक्षत्रपादवर्जनम्

आद्यपादे स्थिते सूर्य्ये तुरीयांशः प्रदुष्यति ।
द्वितीयस्थे तृतीयस्तु विपरीतमतोऽन्यथा ।।११।।

खर्जूरवेध का प्रतिप्रसव कथित होता है। रवि यदि नक्षत्र के आद्यपाद में स्थित हों, तो कर्मकालीन नक्षत्र के चतुर्थपाद और द्वितीयपाद में होने से तृतीयपाद दुष्ट होगा और यदि चतुर्थपाद में रवि हों, तो प्रथमपाद और तृतीय पाद में होने से द्वितीयपाद दूषणीय होगा।।११।।

सप्तशलाकावेधः

कृत्तिकादिचतुःसप्तरेखा राशौ परिभ्रमन् ।
ग्रहश्चेदेकरेखास्थो वेधः सप्तशलाकजः ।।१२।।

अनतर सप्तशलाका वेध वर्णित होता है। कृत्तिकादि अट्ठाईस रेखा में चन्द्र सदा ही भ्रमण करता है, किंतु चन्द्रातिरिक्त ग्रह यदि कर्मकालीन नक्षत्र में वा उसके सहित वेध नक्षत्र में स्थित हों तो सप्तशलाक वेध होता है।।१२।।

अभिजिन्नक्षत्रनिर्णयोऽभिजिद्रोहिण्योरन्योऽन्यवेधनिर्णयश्च

वैश्वस्य चतुर्थेऽशे श्रवणादौ लिप्तिका चतुष्के च ।

अभिजित्तु खेचरे विज्ञेया रोहिणी सहिता ।।१३।।

उत्तराषाढ़ नक्षत्र के शेष चतुर्थांश और श्रवण के आद्य चार दण्ड का नाम अभिजित् है। इस अभिजितनक्षत्र में ग्रह होने से रोहिणी नक्षत्र के सहित वेध हुआ जाने।।१३।।

सप्तशलाकवेधे विवाहनिषेधः

यस्याः शशी सप्तशलाकभिन्नः पापैरपापैरथवा विवाहे ।
रक्तांशुकेनैव तु रोदमाना श्मशानभूमिं प्रमदा प्रयाति ।।१४।।

विवाहकालीन सप्तशलाक चक्र में चन्द्र के संग पापग्रह का अथवा शुभग्रहका वेध होनेसे वह कन्या विवाहके रक्तवस्त्र पहिनते ही रोती हुई श्मशान भूमि में जाती है अर्थात् विधवा होती है।।१४।।

कन्यालक्षणम्

अव्यंगांगीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वंगीमुद्वहेत्स्त्रियम् ।।१५।।

अब कन्या के लक्षण कहते हैं। अविकलांगी, शुभनामिका (शुभनाम वाली) हंस और हाथी की समान गतियुक्त और जिसके रोम केश तथा दांत अत्यंत सूक्ष्म हैं, ऐसी कोमलांगी कन्या से विवाह करै।।१५।।

विवाहप्रश्नसमये वादित्रादिरवश्रवणेन वृषादिदर्शनेन च दम्पत्योः शुभकथनम्

वादित्रवेदध्वनिदन्तिनादः सशंखवीणाध्वनितूर्य्यघोषः ।
वृषध्वजच्छत्ररथेभशंखपद्मानि चेत्तत्र शुभं तदानीम् ।।१६।।

विवाह प्रश्न द्वारा दम्पति का शुभाशुभ कथित होता है नृत्य, गीत, वाद्य ध्वनि, वेदनाद, हस्तिरव, शंख और वीणा ध्वनि अथवा तूर्यघोष के समय विवाह विषयक प्रश्न होने पर अथवा विवाह के

प्रश्न समय में वृष, ध्वज, छत्र, रथ, हाथी, शंख और पद्म, निकट उपस्थित होने से उस विवाह में दम्पत्ति का मंगल होता है।।१६।।

विवाहप्रश्नसमये कुकुरादिरवश्रवणेन वरस्य व्याध्याद्यशुभकथनम्

श्वाजाविकोलूकशृगालकानां नादो यदि स्यान्महिषोष्ट्रयोर्वा।
व्याधिप्रवासक्षयवैरिशोका वाच्यास्तदानीं पुरुषस्य तस्य ।।

विवाह प्रश्न समयमें यदि कूकर (कुत्ता) छाग, मेष, उल्लू, गीदड़, महिष, वा ऊंट का शब्द सुनाई दे, तो उस विवाह में वर को रोग, प्रवास (परदेश), शत्रुभय, और शोक प्राप्त होता है।।१७।।

विवाहप्रश्नसमये कन्यायाः कृकलासादिस्पर्शनेन कुलटात्वनिर्देशः शय्यादिभंगेन वैधव्यादिनिर्देशश्च

संश्लेषणंचेत्सरटप्लवंगखरोरगाणां कुलटा तदास्यात् ।
शय्योदकुम्भासनपादुकानां भंगे तु वाच्या विधवांगनैव।।१८।

विवाह के प्रश्नसमय में यदि कृकलास (खुट्टबढ़ई), वानर, गधे और सर्प से अंग स्पर्श हो तो विवाहिता कन्या कुलटा होती है और शय्या जल का घड़ा आसन और पादुका विवाह के प्रश्न समय में टूट जाने पर विवाहिता कन्या विधवा होती है।।१८।।

विवाहप्रश्नसमये कन्याया जन्मराश्यादिभिर्दम्पत्योः शुभकथनम्

स्वर्क्षं स्वलग्नञ्च तयोश्च नाथौ तयोस्त्रिषष्ठायगृहं यदि स्यात् ।
नवांशको वा सशुभं नृभं वा प्रश्नोदये स्यात्कुशलं तदानीम् ।।

विवाह प्रश्न काल में कन्या की जन्म राशि अथवा जन्मलग्न यदि

प्रश्नलग्न हो तो विवाह में दोनों को शुभ होगा। कन्या की जन्म राशि का अधिपति ग्रह अथवा कन्या के जन्म लग्न का अधिपति ग्रह प्रश्न लग्न में अवस्थान करने पर भी विवाह में दम्पति का मंगल होता है। कन्या की जन्म राशि वा जन्म लग्न का तीसरा, छठा, और ग्यारहवां स्थान प्रश्न लग्न हो, तो भी विवाह में शुभ होगा। कन्या की जन्म राशि वा जन्म लग्न क˜ नवांशाधिपति भी यदि प्रश्न लग्न का अधिपति हो, तो भी शुभ होगा। नृभ अर्थात् नरराशि अर्थात्, मिथुन, तुला, कुंभ, कन्या और धनु का पूर्वार्द्ध प्रश्न लग्न होने पर भी उस विवाह में दम्पति का मंगल होता है।।१९।।

प्रश्नलग्नाद्गुरुदृष्टचादिस्थचन्द्रेण दम्पत्योः सम्पत्ति कथनम्

त्रिपञ्चायदशास्तेषु प्रश्नलग्नान्निशाकरः ।
सम्पत्करस्तु दम्पत्योर्गुरुणा यदि वीक्षितः ।।२०।।

विवाह प्रश्न काल में प्रश्न लग्न के तीसरे पांचवें, ग्यारहवें, दशवें, अथवा सातवें स्थान में चन्द्र ग्रह होने से और वृहस्पति ग्रहके उक्त चन्द्र को देखने से विवाह में दम्पति का मंगल होता है।।२०।।

प्रश्नोदयादष्टमादिस्थचन्द्रादिभिर्वैधव्यकथनं तत्कालनिर्णयश्च

प्रश्नोदयाच्छशधरः परिणेतुरेव,
वर्षेऽष्टमे निधनदो निधनारिसंस्थः ।
वर्षेषु सप्तसुमदोयगौ च पापौ,
मासेऽष्टके शशिकुजावुदयास्तसंस्थौ ।।२१।।

विवाह प्रश्न काल में प्रश्न लग्न के आठवें वा छठे स्थान में चन्द्रग्रह होने से परिणेता (पति) की विवाह के पीछे अष्टवर्ष में मृत्यु होती है। विवाह प्रश्न लग्न में और उसके सातवें स्थान में पाप ग्रह होने से सप्तम वर्ष में वर की मृत्यु होती है। यदि प्रश्न लग्न में चन्द्र ग्रह और उसके सातवें स्थान में मंगल ग्रह हो तो आठवें महीने

में परिणेता (पति) की मृत्यु होगी।।२१।।

प्रश्नलग्नात्सप्तमस्थभौमादिभिः कन्याया मरणादिकथनम्

जामित्रसंस्थे म्रियते महीजे,
प्रजाविहीना कुलटा च सूर्य्ये ।
सुरारिपूज्ये रजनीकरे वा,
कन्याऽन्यरक्ता पतिघातिनी च ।।२२।।

विवाह प्रश्न काल में प्रश्न लग्न के सातवें स्थान में मंगल ग्रह होने से विवाह में उस कन्या की मृत्यु होती है। प्रश्न लग्न के सातवें स्थान में रविग्रह होने से कन्या कुलटा और संतानहीन होती है। और यदि रविग्रह लग्न में स्थित हो, तो कन्या कुलटा होती है। चन्द्र और शुक्र प्रश्न लग्न के सातवें स्थान में होने से विवाहिता कन्या परपुरुष गामिनी और पति घातिनी होती है।।२२।।

एकराश्यादिमेलकानां शुभफलकथनम्

एकराशौ च दम्पत्योः शुभं स्यात्समसप्तके ।
चतुर्थ दशके चैव तृतीयैकादशे तथा ।।२३।। (१)

अब योटक शुद्धि कथित होती है। योटक (षडष्टकादि) गणना से स्त्री पुरुष की एक राशि होने पर शुभ होता है। अभिन्न नक्षत्र होकर एक राशि होने पर अतिशय शुभ होता है। और वर की राशि से कन्या की राशि अथवा कन्या की राशि से वर की राशि यदि समसप्तक अर्थात् सम राशि होकर सप्तम हो तो शुभदायक होगी। दोनों की राशि परस्पर गणना से यदि चौथी, दशवीं तीसरी वा

(१) नक्षत्रमेकं यदि भिन्न राशिर्न दम्पती तत्र सुखं लभेताम्। अभिन्नराशिर्यदि चैकमृक्षं कार्य्यो विवाहो बहुसौख्यदाता।। १।। एकक्षी च यदा कन्या राश्येका च यदा भवेत्। धनपुत्रवती साध्वी भर्त्ता व चिरजीवकः।। इति क्वचित पुस्तके मूलम् ।।

ग्यारहवीं हो तो शुभ है। इस वचन से योटक को राज योटक कहा जाता है।।२३।।

नाडीषडष्टकादिमेलकानामशुभकथनम्

मरणं नाड़ीयोगे कलहः षट्काष्टके विपत्तिर्वा ।
अनपत्यता त्रिकोणे द्विर्द्वादशे च दारिद्र्यम् ।।२४।।

अशुभ योटक वर्णित होता है। योटकगणना से वर और कन्या का नाड़ी वेध होने पर विवाह में मृत्यु होती है। षडष्टक योग में कलह और मरण होता है अर्थात् मित्रषडष्टक में (१) विवाह होने पर कलह और अरिषडष्टक में (२) विवाह होने पर मृत्यु होती है। नवमपंचक योग में विवाह होने पर अनपत्यता (संतानहीनता) दोष उत्पन्न होता है और द्विर्द्वादशयोग में विवाह होने पर दरिद्र होता है।।२४।।

द्विर्द्वादशनवपञ्चकयोरपवादः

पुंसो गृहात्सुतगृहे सुतहा च कन्या,
धर्मे स्थिता सुतवती पतिवल्लभा च ।
द्विर्द्वादशे धनगृहे धनहा च कन्या,
रिष्फे स्थिता धनवती पतिवल्लभा च ।।२५।।

द्विर्द्वाशक और नवपंचक दोष का अपवाद कथित होता है। यदि वर की राशि से कन्यां की राशि पांचवीं हो, तो वह विवाहिता

---

(१) मकर, मिथनु, कन्या, कुंभ, सिंह, मीन, वृष, तुला, वृश्चिक, मेष एव कर्क और धनु इन सब षडष्टक का नाम मित्र षडष्टक है।

(२) मकर, सिंह, कन्या, मेष, मीन, तुला, कर्क, कुंभ, वृष, धनु एवं वृश्चिक और मिथुन, इन सब षडष्टक को अरिषडष्टक कहते हैं। यदि कन्या की जन्म राशि के आठवें स्थान में वर की जन्म राशि और वर की जन्म राशि के छठे स्थान में कन्या की जन्म राशि हो तो यह षडष्टक अत्यंत निन्दित होगा। अधिकतर उक्त षडष्टक देवताओं को भी त्यागना योग्य है।।

कन्या मृत पुत्रवाली होती है (अर्थात् गर्भ से मृतक संतान की उत्पन्न करनेवाली) और अन्य राशि की अपेक्षा कन्या की राशि नवम होने पर विवाहिता कन्या पुत्रवती और पति को प्यारी होती है। द्विर्द्वादशगणना से पुरुष की राशि से कन्या की राशि दूसरी होने पर कन्या धनक्षय करनेवाली होती है। वर की राशि की अपेक्षा कन्या की राशि बारहवीं होने पर वह विवाहिता कन्या धनवती और पति प्रिया होती है।।२५।।

अन्यच्च

एकाधिपत्यं भवनेशमैत्रं वश्यं यदि स्यादुभयोडुशुद्धौ ।
द्विर्द्वादशे वा नवपञ्चमे वा कार्य्यो विवाहो न षडष्टके तु ।२६।

दिर्द्वादश और नवपंचकादि दोष का अपवादान्तर कथित होता है। यदि वर और कन्या की राशि का अधिपति एक ग्रह हो वा परस्पर की मित्रता हो अथवा दोनों राशि में एक राशि अन्य के वश्य हो वा एक के नक्षत्र से गणना में अन्य का नक्षत्र शुद्ध हो तो द्विर्द्वादश वा नवपंचक होने पर भी विवाह हो सकता है किंतु षडष्टक में विवाह निषिद्ध है।।२६।।

भ्रमप्रमादोत्पन्नषडष्टकादिमेलकप्रतीकारः

षट्काष्टके गोमिथुनं प्रदेयं कांस्यं सरूप्यं नवपंचके तु ।
द्विर्द्वादशाख्ये कनकान्नताम्रं विप्रार्च्चनं हेम च नाडिदोषे ।।

भ्रम प्रमादोत्पन्नषडष्टकादि दोष का प्रतीकार कथित होता है। भ्रम वा प्रमादवश यदि कदाचित् षडष्टकादि योग में विवाह हो, तो उस दोष की शांति के लिये दान करे। षडष्टकयोग में गोयुग्म (गौ और बली बैल) दान करना चाहिये। इसी प्रकार नवपंचक में चांदी के सहित कांसी का पात्र, द्विर्द्वादश में कंचन, तण्डुल ताम्र दान और नाड़ी दोष में विप्रार्चन तथा कांचन दान करै।।२७।।

वरणादिषु वैवाहिकतिथिनक्षत्रादिभिः
शुद्धिग्रहण प्रतिपादनम्

वरणप्रदानपरिणयशचीपरिकर्माभिषेककर्म्माणि ।
शुभे तिथौ विलग्ने न भवन्ति किलाल्पपुण्यानाम् ।।२८।।

वरण (विवाह के पहिले वर की अर्चना) प्रदान (कन्यादान) परिणय (पाणिग्रहण) शचीपरिकर्म (शचीपूजा) अभिषेककर्म (*विवाहार्थ उद्वर्त्तनादि*) *इन समस्त कर्मों का अल्प पुण्य मनुष्य के* पक्ष में शुभतिथि और शुभलग्न में निर्वाह होना संभव नहीं है, किंतु भाग्यवान् मनुष्य को ही शुभतिथि और शुभ लग्नादि उपस्थित होती है।।२८।।

हस्तोदकविधिः

सुरभिकुसुमगन्धैरर्च्चयित्वा द्विजेन्द्रान्
शुभतिथिदिवसर्क्षे दैववित्संप्रदिष्टे।
उभयकुलविशुद्धे ज्ञातशीलेसुरूपे
प्रथमवयसि दद्यात्कन्यकां यौवनस्थे ।।२९।।

अब कन्या के वाग्दान की विधि कथित होती है। सुगंधि पुष्प और चन्दन द्वारा ब्राह्मण की पूजा करके दैवमादिष्ट (ज्योतिषी के बताए हुए) शुभतिथि और शुभ नक्षत्र दिन में, दोनों कुल विशुद्ध और ज्ञातशील रूपवान् और युवा, ऐसे पात्र को कन्यादान अर्थात् वाग्दान करै।।२९।।

विवाहे पुरुषस्य सूर्यात्मकत्वात् रविशुद्धेः कन्यायाः
सोमात्मकत्वात् चन्द्रशुद्धेश्चावश्यकर्त्तव्यताकथनम्

गोचरशुद्धाविन्दुं कन्याया यत्नतः शुभं वीक्ष्य ।
तीग्मकिरणञ्च पुंसः शेषैरबलैरपि विवाहः ।।३०।।

विवाह में रवि शुद्धि और चन्द्र शुद्धि की आवश्यकता

प्रतिपादित होती है। विवाह के समय कन्या के गोचर में चन्द्र शुद्धि होने पर और पुरुष के गोचर में रवि शुद्धि होने पर तथा दोनों के गोचर में गुरुशुद्धि होने पर अन्य शुद्ध न होने से भी विवाह हो सकता है, फलतः वर और कन्या दोनों की ही रवि और चन्द्र शुद्धि देखनी चाहिये। किंतु विशेष यही है कि कन्या की रवि शुद्धि न होने पर अगत्या (अपनी राशि से मध्यम) रविग्रह की अर्चनादि प्रतीकार कराकर विवाह कर सकता है, किंतु चन्द्रशुद्धि न होने पर कभी विवाह न करै। वर के सम्बन्ध में भी विशेष यही है कि चन्द्रशुद्धि न होने पर चन्द्रग्रह की अर्चनादि प्रतीकार कराकर विवाह करै। किंतु रविशुद्धि न होने पर कभी विवाह न करै॥३०॥

वैवाहिकनक्षत्रादिकथनम्

रेवत्त्युत्तररोहिणीमृगशिरो मूलानुराधामघाहस्तां,
स्वातिषु तौलिषष्ठमिथुनेषूद्यत्सु पाणिग्रहः ।
सप्ताष्टान्तबहिः शुभैरुडुपतावेकादशद्वित्रिगे,
क्रूरैस्त्र्यायषडष्टगैर्न तु भृगौ षष्ठे कुजे चाष्टमे ॥३१॥

वैवाहिक नक्षत्रादि कथित होते हैं। रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, मृगशिरा, मूल, अनुराधा, मघा, हस्त, और स्वाती नक्षत्र में तुला कन्या और मिथुन लग्न में विवाह प्रशस्त (शुभ) होता है यदि प्रशस्त लग्न के सातवें, आठवें और बारहवें स्थान में शुभग्रह न हो और लग्नकी अपेक्षा चन्द्र यदि ग्यारहवें, दूसरे वा तीसरे स्थान में स्थित हो और पापग्रह तीसरे ग्यारहवें, छठे और आठवें, स्थान में हों, तो शुभदायक होते हैं, किंतु लग्न के छठे स्थान में शुक्र और आठवें स्थान में मंगल ग्रह होने से

निषिद्ध है।।३१।।

दम्पत्योर्द्विनवाष्टराशिरहिते दारानुकूले,
रवौ चन्द्रे चार्ककुजार्किशुक्रवियुते मध्येऽथवा पापयोः ।
त्यक्त्वा च व्यतिपातवैधृतिदिनं विष्टिं च रिक्तां तिथिं,
क्रूराहायनचैत्रपौषरहिते लग्नांशके मानुषे ।।३२।।

दम्पती का अर्थात् वर और कन्या का द्विर्द्वादशक, नव पंचक, और षडष्टकादि दोष न होने पर, वर की रवि शुद्धि और कन्या की चन्द्र शुद्धि होने पर एवं रवि, मंगल, शनि और शुक्र के सहित युक्त चन्द्र वा दोनों पाप में चन्द्र के स्थित न होने पर और व्यतीपात तथा वैधृति योग विष्टि करण, रिक्ता तिथि, पापग्रह का वार दक्षिणायन चैत्र और पौष मास त्यागकर द्विपदलग्न के नवांश में विवाह श्रेष्ठ होता है।।३२।।

वैवाहिकनक्षत्राणां गण्डपादवर्ज्जनम्

आद्ये मघा चतुर्भागे नक्षतस्याद्य एव च ।
रेवत्यन्तचतुर्भागे विवाहः प्राणनाशकः ।।३३।।

विवाह में विहित नक्षत्र मघा मूल, और रेवती के संबंध में विशेष कथित होता है, यथाः—मघानक्षत्र और मूलनक्षत्र के प्रथमपाद में एवं रेवतीनक्षत्र के शेष पाद में विवाह होने से प्राणनाश होता है, इस कारण मघा और मूलनक्षत्र का आद्यपाद और रेवती नक्षत्र का अन्त (शेष) पाद त्यागकर विवाह करै।।३३।।

कन्यादिलग्नस्य नवांशस्योत्कर्षकथनम्

कन्यातुलाभृन्मिथुनेष साध्वी,
शेषेष्वसाध्वी धनवर्ज्जिता च ।

निंद्येऽपि लग्ने द्विपदांश इष्टः ,
कन्यादिलग्नेष्वपि नान्यभागः ।।३४।।

कन्या, तुला और मिथुन लग्न में विवाहिता कन्या साध्वी होती है। वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ, मीन, मेष, वृष, कर्क और सिंह लग्न में विवाहिता कन्या असाध्वी और धनहीन होती है। निन्दित लग्न में भी कन्या, तुला और मिथुन के नवांश में विवाह इष्टफलदायक होता है और कन्या, तुला, मिथुन लग्न में भी कन्यादि का नवांश ही श्रेष्ठ होता है।।३४।।

स्वस्वामिनिरीक्षितलग्नजामित्रनवांशवशेन
दम्पत्योः शुभकथनम्

यस्यांशः कल्पिते लग्ने सचेत्स्वाम्यवलोकितः ।
तदा पुंसः शुभं विद्यात्सप्तमांशे ततः स्त्रियाः ।।३५।।

विवाह में जिस जिस राशि का नवांश उक्त हुआ है, वह वह राशि यदि अपने अपने अधिपति ग्रह से दृष्ट हो तो विवाह में पुरुष का शुभ होगा और यदि उस उस नवांश राशि की सातवीं राशि अपने अधिपति से दृष्ट हो तो कन्या का शुभ होता है।।३५।।

सुतहिबुक योगः ।

सुतहिबुकत्रियद्विलग्नधर्मेष्वमरगुरुर्यदि दानवार्च्चितो वा ।
यदशुभमुपयाति तच्छुभत्वं शुभमपि
वृद्धिमुपैति तत्प्रभावात् ।।३६।।

सुतहिबुकादि योग कथित होता है वैवाहिक लग्न में वा लग्न के पांचवें, चौथे, दश में अथवा नवें स्थान में यदि बृहस्पति वा शुक्र ग्रह स्थित हो, तो लग्नादि में जो दोष हो, उस सबका खण्डन होता है। विशुद्ध लग्न अधिकतर श्रेष्ठ होता है।।३६।।

गोधूलियोग:

सन्ध्यातपारुणितपश्चिमदिग्विभागे,
व्योम्नि स्फुरद्विमलतारकसन्निवेशे ।
ऊद्धर्वे गवां खुरपुटोद्गलितै रजोभिः,
गोधूलिरेष कथितो भृगुजेन योगः ।।३७।।

अब गोधूलियोग कथित होता है। सूर्य की किरणों से पश्चिम दिशा लालवर्ण होने पर आकाश मण्डल में जिस समय समस्त नक्षत्र (तारे) विमल भाव से प्रकाशित होते हैं, ज़िस समय गोष्ठ से गायों के घर जाने में उद्यत होने पर खुरपुटोद्गलित (खुरों के लगने से उड़ी हुई) धूली ऊपर की ओर उड़ती है, भृगु मुनि ने उसी समय को गोधूलि कहा है।।३७।।

गोधूलिप्रशंसा

नास्मिन्ग्रहा न तिथयो न च विष्टिवारा,
ऋक्षाणि नैव जनयन्ति कदापि विघ्नम् ।
अव्याहतः सततमेव विवाहकाले,
यात्रासु चायमुदितो भृगुजेन योगः ।।३८।।

गोधूलि के समय विवाह होने पर ग्रह शुद्धि, तिथि शुद्धि, विष्टि भद्रा दोष, वार शुद्धि और नक्षत्र शुद्धि, इनका कुछ विचार करना नहीं होता। क्योंकि गोधूलि योग में ग्रह, नक्षत्र वा वारादि विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकते। केवल विवाहकाल में ही गोधूलि योग श्रेष्ठ नहीं है बरन् यात्रा काल में भी गोधूलि योग ग्रहण कराना चाहिये, ऐसा भृगु मुनि ने कहा है।।३८।।

गुणबाहुल्यादल्पदोषस्याफलत्वकथनम्

न सकलगुणसम्पल्लभ्यतेऽल्पैरहोऽभिः,

बहुतरगुणयुक्तं योजयेन्मङ्गलेषु ।
प्रभवति हि न दोषो भूरिभावे गुणानां,
सलिललव इवाग्नेः संप्रदीप्तेन्धनस्य ।।३९।।

यद्यपि समस्तगुण युक्त दिन प्रायः नहीं मिलता, किंतु तो भी विवाहादि मंगलकार्य में वह गुणयुक्त दिन ही ग्रहण करे। क्योंकि जलता हुआ काष्ठ जिस प्रकार जल की बूंदों के गिरने से नहीं बुझ सकता, इसी प्रकार बहुगुणयुक्त दिन भी अल्पदोष से दूषित नहीं होता।।३९।।

एकस्याप्यतिमहतो दोषस्याविरोधिगुणबाहुल्येऽपि परित्यागकथनम्

गुणशतमपि दोषः कश्चिदेकोऽतिवृद्धः,
क्षपयति यदि नान्यस्तद्विरोधी गुणोऽस्ति ।
घटमिव परिपूर्णं पंचगव्येन सद्यो,
मलिनयति सुराया बिन्दुरेकोऽपि सर्व्वम् ।।४०।।

एक भारी दोष से सैकड़ों गुण नष्ट होते हैं, यदि इस दोष का विरोधी कोई गुण न हो जिस प्रकार पंचगव्य से भरा हुआ घड़ा एक बूंद सुरा (मदिरा) मिलने से दूषित हो जाता है।।४०।।

नववध्वागमनम्

स्त्रीशुध्याजघटालिसंयुतरवौ काले विशुद्धेभृगुं,
सन्त्यज्य प्रतिलोमगं शुभदिने यात्राप्रवेशोचिते ।
त्यक्ताहस्तु निरंशकं नवबधूयात्राप्रवेशौ पतिः,
कुर्य्यादिकपुरादिषु प्रतिभृगौ नेच्छन्ति दोषं बुधाः ।।४१।।

अब नववध्वागमन (नवीन बहू का आना) कथित होता है। स्त्री की रवि शुद्धि होने पर सौर (संक्रांति से प्रवृत्त होनेवाले)

वैशाख, फाल्गुन, अगहन मास में शुद्ध काल में (गुर्वादित्यादि दोष रहित काल में) प्रति शुक्र त्यागकर शुभ दिन में यात्रोचित नक्षत्रादि में, संक्रांति विहीन दिन में, पति नव वधू को यात्रा कराकर गृह प्रवेशोचित नक्षत्रादि में गृहप्रवेश करावे। पति यदि एक ग्राम में वा एक घर में एक घर से अन्य घर में अथवा दुर्भिक्षादि आपत् काल में नववधू का द्विरागमन करावे, तो प्रति शुक्रादि दोष ग्राह्य नहीं होगा।।४१।।

बालबन्धः

ध्रुवमृदुलघुवर्गे विष्णुमूलानिलर्क्षे,
शनिशशिदिनवर्ज्जं गोद्विदेहोदयेषु ।
उपचयगतपापे सत्सु केन्द्रत्रिकोणे ,
सुतिथिकरणयोगे बालबन्धः शुभेन्दौ ।।४२।।

विवाह के पीछे प्रथम केश बांधने का शुभ दिन कथित होता है। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, पुष्य, अश्विनी, हस्त, श्रवण, मूल और स्वाती नक्षत्र में शनि और सोम के अतिरिक्त वार में वृष, मिथुन, कन्या, धनु, और मीन लग्न में तीसरे ग्यारहवें छठे दशवें स्थान में पापग्रह स्थित होने पर लग्न चौथे सातवें दशमें नवें पांचवें स्थान में शुभग्रह होने पर शुभतिथि, शुभकरण और शुभयोग में चन्द्र शुद्ध होने पर विवाह के पीछे स्त्री के प्रथम केश बांधने चाहिये।।४२।।

फलबन्धः

रोहिण्यन्तकचित्राहिविशाखशतवर्ज्जिते ।
भे पुंग्रहाहे स्त्रीषु या फलबन्धनमिष्यते ।।४३।।

स्त्रियों का प्रथम रजोदर्शन होने पर ऋतुस्नान के पीछे फल बंधन किया जाता है। उसका शुभ दिन कथित होता है रोहिणी,

भरणी, चित्रा, आश्लेषा, विशाखा और शतभिषा इन सब नक्षत्रों के अतिरिक्त नक्षत्र में मंगल, रवि, और बृहस्पतिवार में स्त्री के चन्द्र तारा शुद्ध होने पर प्रथम ऋतुस्नान के पीछे फलबन्धन करे।।४३।।

ऋतुनिरूपणम्

पीडाराशौ भौमदृष्टे शशांके,
मासं मासं योषितामार्त्तवंयत् ।
त्र्यंशे शान्तं यच्च रक्तं जपाभं,
तद्गर्भार्थं वेदनागन्धहीनम्।।४४।।

ऋतु निरूपित होती है। अनुपचयराशि स्थित चन्द्र ग्रह मंगल ग्रह के देखने पर प्रति महीने में स्त्रियों की जो रजः उत्पन्न होती है और जो शोणित तीन दिन में ही शमन हो जाता है और जिस शोणित का वर्ण जपापुष्प की समान और वेदना गंधादि विहीन है, उसमें निषेक (गर्भाधान) करने से गर्भ संचार होता है।।४४।।

अथ निषेकः

पापासंयुतमध्यगेषु दिनकृल्लग्नर्क्षयास्वामिषु,
तद्यूनेष्वशुभोज्झितेषु विकुजे छिद्रे विपापे सुखे ।
सद्युक्तेषु त्रिकोणकण्टक विधुष्वायत्रिषष्ठान्विते,
पापे युग्मनिशास्वगण्डसमये पुंशुद्धितः सङ्गमः ।।४५।।

निषेक कथित होता है। यदि रवि, लग्न और चन्द्र पापग्रह युक्त न हो पापग्रह में अवस्थिति न करे रवि लग्न और चन्द्र के सातवें स्थान में पापग्रह न हो आठवां मंगल अथवा चौथा पापग्रह से युक्त न हो और राशि लग्न एवं लग्न का पांचवां, नवां, चौथा, सातवां और दशवां स्थान शुभ ग्रहयुक्त हो और लग्न के ग्यारहवें तीसरे और छठे स्थान में पापग्रह स्थित हो तो युग्मराशि में, गण्डनक्षत्र त्यागकर पुरुष की चन्द्र शुद्धि होने पर गर्भाधान करे।।४५।।

गर्भाधानादिमासनाथैर्गर्भस्य शुभाशुभकथनम्

मासेशैः सितकुजगुरुरविशशिशनिसौम्यलग्नपशशीनैः ।
कलुषैः पीडा गर्भस्य पीडितैः पतनमन्यथा पुष्टिः ॥४६॥

गर्भमासाधि पति द्वारा गर्भ का शुभाशुभ कथित होता है गर्भ धारण से प्रसव काल पर्यंत क्रमशः दशमास के अधिपति शुक्र, मंगल, बृहस्पति, रवि, चन्द्र, शनि, बुध निषेक काल के लग्नाधिपति एवं चन्द्र और रवि निर्दिष्ट हैं अर्थात् पहिले महीने के अधिपति मंगल, तीसरे महीने के अधिपति बृहस्पति, चौथे महीने के अधिपति रवि, पांचवें महीने के अधिपति चन्द्र, छठे महीने के अधिपति शनि, सातवें महीने के अधिपति बुध, आठवें महीने के अधिपति निषेकलग्नाधिपति, नवें महीने के अधिपति चन्द्र और दशवें महीने के अधिपति रवि ग्रह होते हैं। उक्त सब मासाधिपति ग्रहोंमें यदि कोई ग्रह पापयुक्त हो, तो उसी महीने में गर्भ की पीड़ा होगी और यदि कोई ग्रह अस्तादित्रिविधोत्पात वा उपरागादि द्वारा पीड़ित हो, तो उसी महीने में गर्भपात होने की शंका है और यदि कोई ग्रह शुभग्रह युक्त वा शुभग्रह के द्वारा दृष्ट हो तो गर्भ पुष्ट होकर शुभ होता है।।४६।।

अथ पुंसवनम्

कुर्यात्पुंसवनं सुयोगकरणे नन्दे सभद्रे तिथौ,
भाद्राषाढनृभेश्वरेषु नृदिने वेधं विनेन्दौ शुभे ।
अक्षीणे च त्रिकोणकण्टकगते सौम्येऽशुभे वृद्धिषु,
स्त्रीशुध्याघटयुग्मसूर्यगुरुभेषूद्यत्सु मासत्रये ॥४७॥

अब पुंसवन कथित होता है। गर्भाधान के दिन से गणना करके तीसरे महीने में, शुभयोग और शुभकरण में, पड़वा, एकादशी, छठ, दोयज, सप्तमी और द्वादशी तिथि में, पूर्वभाद्रपदा, उत्तराभाद्र-

पद , पूर्वाषाढ़ा, हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य और आर्द्रा नक्षत्र में, रवि, मंगल और बृहस्पतिवार में, यामित्रवेध और दशयोग भंग न होने पर शुभचन्द्र में और पूर्णचन्द्र में, लग्न के त्रिकोण और केन्द्र स्थान में शुभग्रह एवं तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थान में अशुभग्रह होने पर स्त्री के चन्द्र तारा की अनुकूलता में कुंभ, मिथुन, सिंह, धनु और मीन लग्न में पुंसवन करे।।४७।।

अथ पञ्चामृतम् ।

रेवत्यश्विपुनर्वसुद्वयमरुन्मूलानुराधामघा,
हस्तासूत्तरफल्गुभेषु च भृगौ जीवार्कवारे तथा ।
लग्ने चोभयशुद्धिगे सुनियतं संत्यज्य रिक्तां तिथिं,
देयंमासितु पंचमे शुभदिने पंचामृतं[1] योषिताम् ।।४८।।

पंचामृत शुभदिन कथित होता है। रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, स्वाती, मूंल, अनुराधा, मघा,हस्त और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में, शुक्र बृहस्पति और रविवार में, शुभलग्न में, स्त्री पुरुष के चन्द्र तारा शुद्ध होने पर, रिक्ता के अतिरिक्त तिथि में, गर्भ ग्रहण से पांचवें महीने में, शुभ दिन में स्त्री को पंचामृत पान करावे।।४८।।

घटीदानम्

मघाष्टकेऽम्बुत्रितयेऽदितिद्वये पौष्णद्वये धातृयुगे गुरूदये ।
मासे च षष्ठे च चतुष्टये स्त्रियां शुध्याङ्गमन्दाहवरिर्घटी शुभा ।।४९।।

घदीदान कथित होता है। मघा, पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, रोहिणी और मृगशिरा

---

(१) पञ्चामृतं पञ्चममास एवं अजद्वये चाम्बुनि पितृषट्के। विरञ्चिपश्चान्त्य चतुष्टयेषु सूर्य्यारशुक्रेज्यदिने शुभेन्दौ। इति क्वचित् पुस्तके वचनान्तरम्।

नक्षत्र में, धनु और मीन लग्न में छठे महीने गर्भसमय में वा चौथे महीने में, स्त्री के चन्द्र तारा शुद्ध होने पर बुध और शनि के अतिरिक्त वार में, गर्भरक्षा के निमित्त हरिद्राक्त ग्रन्थियुक्त (हल्दी की गाँठों से युक्त) वस्त्राञ्चल स्त्री के कङ्कन में बांध दे। उक्त वस्त्राञ्चल को ही घटी कहा जाता है।।४९।।

अथ सीमन्तोन्नयनम्

मासेशे प्रबले शुभेक्षितविधौ मासे च षष्ठेऽष्टमे,
मैत्रे पुंसवनोदितर्क्षसहिते रिक्ताविहीने तिथौ ।
सीमन्तोन्नयनं मृगाजरहिते लग्ने नवांशोदये ,
योज्यं पुंसवनोदितं यदपरं तत्सर्वमत्रापि च ।।५०।।

सीमन्तोन्नयन कथित होता है। पूर्वोक्त गर्भ मासाधि पति ग्रह के बलवान् होने पर और चन्द्र शुभग्रह के द्वारा दृष्ट (अवलोकित) होने पर, छठे वा आठवें महीने में, अनुराधा और पुंसवनोक्त नक्षत्र में, रिक्ता के अतिरिक्त तिथि में, मकर और मेष के अतिरिक्त लग्न में, मिथुन, तुला, कुम्भ, और कन्या लग्न के नवांश में, पुंसवनोक्त वारादि में स्त्री का सीमन्तोन्नयन करावे।।५०।।

इति भाषाटीकायां विवाह निर्णयो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

षष्ठोऽध्यायः

जातसंप्रत्ययः

द्वारं वास्तुनि केन्द्रोपगाद्ग्रहादसति वा विलग्नर्क्षात् ।
दीपोऽर्कादुदयाद्वर्त्तिरिन्दुतः स्नेहनिर्देशः ।।१।।

जातक निर्णय किया जाता है। बालक के जन्म समय में केन्द्र (लग्न, लग्न से चौथे सातवें और दशवें) स्थान में जो ग्रह हो, वह ग्रह जिस दिशा का अधिपति है, उसी दिशा में सूतिका गृह का द्वार होगा। यदि केन्द्र स्थान में बहुत ग्रह हों तो उनमें जो ग्रह बलवान् है उसी की दिशा में सूतिका गृह का द्वार होगा। यदि दो ग्रह समान बली हों तो सूतिका गृह के दो द्वार होंगे और केन्द्र के किसी स्थान में यदि ग्रह न हो, तो जन्म लग्न जिस दिशा की अधिपति हो उसी दिशा में सूतिका गृह का द्वार जानना चाहिये। रवि की राशि स्थिति से दीपज्ञान होगा अर्थात् सूर्य यदि किसी चर राशि में स्थित हो तो उस राशि की दिशा के अनुसार उसी दिशा में दीप चलायमान होगा और सूर्य यदि किसी स्थिर राशि में स्थित हों तो उसी राशि की दिशा के अनुसार दीप स्थिर भाव से रहेगा। सूर्य यदि द्वयात्मक राशि में वास करे तो उसी राशि की दिशा के अनुसार दीप संचालित और स्थिर भाव से रहता है लग्न के भोगानुसार

दीपक की बत्ती का विचार करना चाहिये। अर्थात् लग्न के जितने अंश भोग हों, उतना ही दीपक की बत्ती जलेगी। दीपक के स्नेह अर्थात् तेल घृतादि का चन्द्र की क्षीणता और पूर्णता से विचार करे।।१।।

जारयोगः

न लग्नमिन्दुं च गुरुर्निरीक्षते न,
वा शशाङ्कं रविणा समायुतम् ।
सपापकोऽर्केण युतोऽथवा शशी ,
परेणं जातं प्रवदन्ति निश्चयात् ।।२।।

जारज योग कथित होता है। यदि जन्मकालीन बृहस्पति ग्रह लग्न और चन्द्र को न देखे, तो वह बालक अन्य से उत्पन्न होगा और यदि लग्न में बृहस्पति की दृष्टि हो, रवियुक्त चंद्र को वह नहीं देखे तो वह बालक जारज होगा। लग्न में बृहस्पति की दृष्टि हो वा न हो, रवियुक्त चन्द्र यदि अन्य पापग्रह के सहित एक घर में वास करे तो वह बालक निःसंदेह जारज होगा। यह तीन योग पण्डितों ने कहे हैं।।२।।

जारजयोगभङ्गः

गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते वान्यवेश्मनि ।
तद्द्रेष्काणं नवांशे वा जायते न परेण सः ।।३।।

जारज योगभङ्ग कथित होता है। यदि चन्द्र बृहस्पति के घर में (धनु वा मीन राशि में) हो तो जारज योग में बालक उत्पन्न होकर भी जारज नहीं है। और धनु मीन के अतिरिक्त अन्य राशि में चन्द्र के गुरुयुक्त होने पर बालक परजात (दूसरे से उत्पन्न हुआ) नहीं होता और बृहस्पति के द्रेष्काण में वा बृहस्पति के नवांश में चंद्र के होने पर भी उत्पन्न हुआ बालक जारज नहीं है।।३।।

त्रिविधरिष्टकथनम्

रिष्टं त्रिविधं वदन्ति मुनयो नियतमनियतं च योगजं प्राहुः ।
योगसमुत्थं तावद्वक्ष्ये पश्चात्तु परिशेषौ ।।४।।

अब शिशुरिष्ट कथित होता है। रिष्ट त्रिविध है नियत, अनियत और योगज यही तीन प्रकार की रिष्टि मुनियों ने निर्दिष्ट की है। नियत रिष्टि आयुर्दायरिष्ट दशान्तर्दशा में, योगज शिशुरिष्टि प्रथम योगजरिष्ट का निर्णय करके फिर नियत और अनियतरिष्ट का निर्णय करे।।४।।

गण्डयोगकथनम्

अश्विनीमघमूलानां तिस्रो गण्डाद्यनाडिकाः ।
अन्त्ये पौष्णोरगेन्द्राणां पञ्चैव यवना जगुः ।।५।।

गण्ड योग कथित होता है। अश्विनी, मघा और मूल, नक्षत्र के प्रथम तीन दण्ड, गण्ड कहे गये हैं और रेवती आश्लेषा एवं ज्येष्ठा नक्षत्र के पांच दण्ड गणनाम से कथित हैं।।५।।

गण्डकालकथनम्

मूलेन्द्रयोर्द्दिवागण्डो निशायां पितृसर्पयोः ।
सन्ध्याद्वये तु विज्ञेयो रेवतीतुरगर्क्षयोः ।।६।।

मूल और ज्येष्ठा नक्षत्र में जो गण्ड होता है उसको दिवागण्ड कहते हैं, मघा और आश्लेषा नक्षत्र के गण्ड को निशानगण्ड कहा जाता है, और रेवती तथा अश्विनी नक्षत्र में जो गण्ड होता है, उसका नाम संध्यागण्ड है।।६।।

गण्डरिष्टफलम्

सन्ध्यारात्रिदिवाभागे गण्डयोगोद्भवः शिशुः ।
आत्मानं मातरं तातं विनिहन्ति यथाक्रमम् ।।७।।

गण्डरिष्ट का फल वर्णित होता है। सन्ध्याकाल मे रेवती और

अश्विनी नक्षत्र के गण्डसमय में उत्पन्न हुआ बालक स्वयं नष्ट होता है। रात्रि काल में मघा और आश्लेषा नक्षत्र के गण्ड में उत्पन्न हुए बालक की माता का मरण होता है और दिन के समय मूल और ज्येष्ठा, नक्षत्र के गंड में जिस बालक का जन्म होता है उसके पिता की मृत्यु होती है।।७।।

गंडशान्तिः

कुंकुमं चन्दनं कुष्ठं गोरोचनमथापि वा ।
घृतेनैवान्वितं कृत्वा चतुर्भिः कलशैर्बुधः ।।८।।
सहस्राक्षेण मन्त्रेण बालकं स्नापयेत्ततः ।
पितृयुक्तं दिवा जातं मातृयुक्तं च रात्रिजम् ।
स्नापयेत्पितृमातृभ्यां सन्ध्योरुभयोरपि ।।९।।
कांस्यपात्रं घृतैः पूर्णं गण्डदोषोपशान्तये ।
दद्याद्धेनुं सुवर्णं च ग्रहांश्चापि प्रपूजयेत् ।।१०।।

गंड दोष की शान्ति कथित होती है। कुंकुम, चन्दन, कुड (औषधि विशेष) गोरोचन और घृत चार कलश में रखकर उनको जल से भर दे। फिर इन कलशों के जल से "ॐ सहस्राक्षेण शतशारदेन" इत्यादि मंत्र पढ़कर दिवागंड में उत्पन्न हुए बालक को पिता के सहित स्नान करावे। इसी प्रकार निशागण्ड में उत्पन्न हुए बालक को माता के सहित और दोनों संध्या के गण्ड में उत्पन्न हुए बालक को पिता और माता के संग स्नान कराना चाहिये और बाँबी की मिट्टी, नदी के तट की मिट्टी, गोदन्तोद्धृत मृत्तिका और हाथी के दांत से उखड़ी हुई मिट्टी और पंचगव्यतीर्थ जल में मिश्रित करके उसके द्वारा माता पिता और बालक को स्नान कराकर घृत से भरा कांसी का पात्र, धेनु और सुवर्ण दान और ग्रहों की पूजा करने से गण्डदोष नष्ट होगा।।८–१०।।

सूर्यरिष्टम्

पापास्त्रिकोणकेन्द्रेषु सौम्याः षष्ठाष्टमव्ययगाश्चेत् ।
सूर्योदये प्रसूतः सद्यः प्राणांस्त्यजति जन्तुः ॥११॥

सूर्यरिष्ट कथित होता है। पापग्रह यदि जन्म लग्न के नववें पांचवें वा स्वघर में अथवा चौथे, सातवें वा दशवें घर में स्थित हों और शुभग्रह यदि लग्न के छठे आठवें वा बारहवें स्थान में हों तो सूर्योदय के समय उत्पन्न हुए बालक की तत्काल मृत्यु होगी।।११।।

चन्द्ररिष्टम्

षष्ठेष्टमेहि चन्द्रः सद्यो मरणाय पापसंदृष्टः ।
अष्टाभिः शुभदृष्टो वर्षैर्मिश्रैस्तदर्द्धेन ॥१२॥

चन्द्ररिष्ट कथित होता है। जातलग्न के छठे वा आठवें स्थान में यदि चन्द्र स्थित हो, और यदि इस चन्द्र के प्रति पापग्रह की दृष्टि हो, तो उत्पन्न हुए बालक की तत्काल मृत्यु होती है और शुभग्रह के द्वारा चन्द्रग्रह के दृष्ट होने पर आठ वर्ष में तथा शुभाशुभग्रह के द्वारा दृष्ट होने पर चार वर्ष में जात बालक की मृत्यु होती है।।१२।।

चन्द्ररिष्टापवादः

पक्षे सिते भवति जन्म यदि क्षपायां,
कृष्णे तथाऽहनि शुभाशुभ दृष्टमूर्त्तिः ।
तं चन्द्रमा रिपुविनाशगतोऽपि यत्ना-
दापत्सुरक्षति पितेव शिशु न हन्ति ॥१३॥

चन्द्ररिष्ट का अपवाद कथित होता है। शुक्ल पक्ष की रात्रि में उत्पन्न और कृष्णपक्ष के दिन में उत्पन्न बालक को छठा वा आठवीं राशि में स्थित चन्द्र शुभाशुभ ग्रह के द्वारा दृष्ट होने पर भी यत्नपूर्वक पिता की समान रक्षा करता है, कभी अनिष्ट नहीं

करता।।१३।।

पापयुक्तचन्द्ररिष्टम् ।

सुतमदननवान्त्यरन्ध्रलग्नेष्वशुभयुतो मरणाय शीतरश्मिः ।
भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि बलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा।।

पापयुक्त चन्द्ररिष्ट कथित होता है। जन्म समय में चन्द्र यदि किसी पापग्रह से युक्त होकर लग्न के पांचवें, सातवें, नवें, बारहवें वा आठवें स्थान में स्थित हो और शुक्र बुध वा वृहस्पति यदि इस चन्द्र को न देखें वा उसके संग युक्त न हों, तो उत्पन्न हुए बालक की मृत्यु होती है।।१४।।

पापमध्यगतचन्द्ररिष्टम्

द्यूनचतुरस्त्रसंस्थे पापद्वयमध्यगे शशिनि जातः ।
विलयं प्रयाति नियतं देवैरपि रक्षितो बालः ।।१५।।

चन्द्रका रिष्टांतर कथित होता है। जन्म काल में चन्द्र यदि दो पापों के मध्यवर्ती होकर लग्न के सातवें चौथे वा आठवें स्थान में स्थित हो, तो वह बालक देवताओं से रक्षित होकर भी मृत्यु को प्राप्त होता है, इसके अन्यथा नहीं होता।।१५।।

क्षीणेन्दुरिष्टम्

क्षीणे शशिनि विलग्ने पापैः केन्द्रेषु मृत्युसंस्थैर्वा ।
भवति विपत्तिरवश्यं यवनाधिपतेर्मतश्चैतत् ।।१६।।

क्षीण चन्द्ररिष्ट कथित होता है। जन्मकाल में क्षीणचन्द्र यदि लग्न में वा लग्न के चौथे, सातवें और दशवें अथवा आठवें स्थान में हो तो उस उत्पन्न हुए बालक की अवश्य ही मृत्यु होगी। यवनाचार्य ने इस प्रकार कहा है।।१६।।

मेषादीनां त्रिंशांशविशेषरिष्टम्

नागगोसिद्धिजातीषु क्ष्माब्धित्र्यब्धिधृतिर्नखाः ।

क्ष्माब्धिदिक्चेत्यजाद्यंशे तत्तुल्याब्दैर्विधौ व्यसुः ॥१७॥

चन्द्र का रिष्ट विशेष कथित होता है। राशि को तीस भाग में विभक्त करने से त्रिंशांश कहा जाता है, इस त्रिंशांश भाग में मेष के अष्टम, वृष के नवम, मिथुन के चौबीस, कर्क के बाईस, सिंह के पांच, कन्या के प्रथम (एक) तुला के चौथे, वृश्चिक के तेईस, धनु के अठारह, मकर के बीस, कुंभ के इक्कीस, और मीन के दशवें अंश में यदि किसी बालक का जन्म हो, तो उस बालक की उक्त सख्यक वर्ष में मृत्यु होगी॥१७॥

त्रिविधभौमरिष्टम्

भौमो विलग्ने शुभदैरदृष्टः,
षष्ठेऽष्टमे वार्कसुतेन युक्तः ।
सद्यः शिशुं हन्ति वदेन्मुनीन्द्रः,
स्वरेयमारौ न शुभेक्षितौ च ॥१८॥

भौमरिष्ट वर्णित होता है। मंगलग्रह यदि शुक्रग्रह के द्वारा अवलोकित न होकर जन्म लग्न में स्थित हो अथवा लग्न के छठे वा आठवें स्थान में शनियुक्त होकर स्थिति करे या सप्तमस्थ शनियुक्त मंगल यदि शुभग्रह के द्वारा दृष्ट न हो तो उत्पन्न हुआ बालक शीघ्र ही प्राणत्याग करेगा॥१८॥

बुधरिष्टम्

कर्कटधामनि सौम्यः षष्ठाष्टमराशिगो विलग्नर्क्षात् ।
चन्द्रेण दृष्टमूर्त्तिर्वर्षचतुष्केण मारयति ॥१९॥

बुधरिष्ट कथित होता है। जन्म समय में लग्न के (कुंभ और धनु के) षष्ठ वा अष्टम राशिस्थ बुध यदि कर्क राशि में हो और चन्द्र ग्रह के द्वारा अवलोकित हो, तो उत्पन्न हुआ बालक चार वर्ष के बीच में मृत्यु को प्राप्त होगा॥१९॥

गुरुरिष्टम्

बृहस्पतिर्भौमगृहेऽष्टमस्थः सूर्य्येन्दुभौमार्कजदृष्टमूर्त्तिः ।
वर्षैं स्त्रिभिर्भार्गवदृष्टिहीनो लोकान्तरं प्रापयति प्रसूतम् ॥

गुरुरिष्ट वर्णित होता है। जन्म काल में बृहस्पति ग्रह यदि लग्न के अष्टमस्थ होकर मेष में वा वृश्चिक में अवस्थान करे और रवि, चन्द्र, मंगल तथा शनि के द्वारा वह दृष्ट हो और शुक्रग्रह उसको न देखे, तो तीन वर्ष के भीतर उत्पन्न हुए बालक की मृत्यु होगी। किंतु शुक्र के द्वारा यह बृहस्पति अवलोकित होने पर उक्त बालक का रिष्ट भंग होता है॥२०॥

शुक्ररिष्टम्

रविशशिभवने शुक्रो द्वादशरिपुरन्ध्रगोऽशुभैः सर्वैः ।
दृष्टः करोति मरणं षड्भिर्वर्षैः किमिह चित्रम् ॥२१॥

शुक्ररिष्ट कथित होता है। जन्म समय में सिंह वा कर्क राशिस्थ शुक्र यदि जातलग्न के द्वादश, षष्ठ वा अष्टमस्थ होकर समस्त पापग्रहों से अवलोकित हो तो छः वर्ष के बीच में बालक नष्ट होगा, इसमें विचित्रता क्या है?॥२१॥

शनिरिष्टम्

मारयति षोडशाहाच्छनैश्चरः पापवीक्षितो लग्ने ।
संयुक्तो मासेन च वर्य्याच्छुद्धस्तु मारयति ॥२२॥

शनिरिष्ट वर्णित होता है। जन्म काल में शनिग्रह यदि पापग्रह से दृष्ट होकर लग्नस्थ हो तो सोलह दिन के बीच में उत्पन्न हुए बालक की मृत्यु होती है। और यही शनि पापग्रह युक्त होने पर सोलह महीने में एवं पापयुक्त वा पाप दृष्ट न होकर शुद्ध लग्नस्थ होने पर सोलह वर्ष में जात बालक की मृत्यु होती है। किंतु बलवान् शुभग्रह के द्वारा दृष्ट वा युक्त होकर शनि यदि लग्नस्थ हो तो रिष्ट

भंग होगा।।२२।।

राहुरिष्टम्

राहुश्चतुष्टयस्थो मरणाय वीक्षितो भवति पापैः ।
वर्षैर्व्वदन्ति दशभिः षोडशभिः केचिदाचार्य्याः ।।२३।।

राहुरिष्ट कथित होता है। जात लग्न से चतुर्थ स्थान स्थित राहु यदि पापग्रह से अवलोकित हो तो उत्पन्न हुए बालक की दश वर्ष में मृत्यु होती है। कोई कोई पण्डित कहते हैं कि इस प्रकार होने से सोलह वर्ष में मृत्यु होगी।।२३।।

केतुरिष्टम्

केतुर्यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तस्मिन्प्रसूयते यस्तु ।
रौद्रे सर्पमुहूर्त्ते प्राणैः सन्त्यज्यते चाशु ।।२४।।

केतुरिष्ट वर्णित होता है। राशिचक्र में जिस नक्षत्र में केतु स्थित हो, उस नक्षत्र में आर्द्रा नक्षत्रके मुहूर्त्त में वा आश्लेषा नक्षत्रके मुहूर्त्त में यदि बालक का जन्म हो, तो यह बालक शीघ्र ही प्राण त्याग करेगा।।२४।।

द्रेष्काणरिष्टम्

लग्ने ये द्रेष्काणा निगडाहिविहङ्गपाशधरसंज्ञाः ।
मरणाय सप्तवर्षैः क्रूरयुता न स्वपतिदृष्टाः ।।२५।।

द्रेष्काणरिष्ट कथित होता है। निगड, सर्प, पक्षी, और पाशधर नामक द्रेष्काण लग्नगत होकर पापग्रह के द्वारा दृष्ट और स्वीय अधिपति के द्वारा अवलोकित न होने पर उत्पन्न हुए बालक की सात वर्ष में मृत्यु होती है।।२५।।

लग्नाधिपादिरिष्टम्

लग्नाधिपजन्मपतौ षष्ठाष्टमरिःफगौ प्रसवकाले ।
अस्तमितौ मरणकरौ राशिप्रमितैर्व्वदेद्वर्षैः ।।२६।।

लग्नाधिप और राश्याधिपतिका रिष्ट वर्णित होता है जन्मकाल में लग्नाधिपति ग्रह और राश्याधिपति ग्रह यदि अस्तमित होकर लग्न के छठे, आठवें, वा बारहवें स्थान में स्थित हों तो उत्पन्न हुए बालक की छठे वा आठवें अथवा बारहवें वर्ष में मृत्यु होगी।।२६।।

सौम्यग्रहरिष्टम्

सौम्याः षष्ठाष्टमगाः पापैर्व्वक्रोपसंयुतैर्दृष्टाः ।
मासेन मृत्युदास्ते यदि न शुभैस्तत्र संदृष्टाः ।।२७।।

सौम्य शुभग्रह का रिष्ट कथित होता है। जन्म समय में यदि शुभग्रह छठे वा आठवें स्थान में हो वा उक्त दोनों स्थानों में स्थित होकर पापग्रह वा वक्री ग्रह से अवलोकित हो और उनके प्रति अन्य शुभग्रह की दृष्टि न हो तो उत्पन्न हुए बालक की एक महीने में मृत्यु होती है।।२७।।

पापग्रहरिष्टम्

एकः पापोऽष्टमगः शत्रुगृही शत्रुवीक्षितो वर्षात् ।
मारयति नरं प्रसूतं सुधारसो येन पीतोऽपि ।।२८।।

पापग्रह का रिष्ट कथित होता है। यदि एक पापग्रह जात लग्न के अष्टमस्थित होकर शत्रुगृहगत हो और इस पाप ग्रह के प्रति शत्रुगृह की दृष्टि हो तो उत्पन्न मनुष्य अमृत पीने पर भी एक वर्ष के बीच में शमन भवन को गमन करता है।।२८।।

मातृरिष्टम्

केन्द्रत्रिकोणगः पापो मातृहा सप्तवासरात् ।
स पापाद्भार्गवात्पापो हिबुके मातृनाशकृत् ।।२९।।
लग्नाच्चतुर्थगः पापो यदि स्याद्बलवत्तरः ।
तदा मातृवधं कुर्य्यात्तत्केन्द्रे चापरो यदि ।।३०।।

अब मातृरिष्ट कथित होता है जन्म के समय लग्न में वा लग्न से

चौथे दशवें, सातवें, नववें और पांचवें स्थान में यदि बलवान् पापग्रह वास करे, तो उत्पन्न हुए मनुष्य की सात दिन में माता मर जाती है। और पापग्रह युक्त शुक्रग्रह से चौथे स्थान में पापग्रह होने पर भी जातक का मातृ वियोग होता है अन्य प्रकार मातृरिष्ट कथित होता है जन्मलग्न से चौथे स्थान में यदि बलवान् पापग्रह अवस्थान करे और उसके केन्द्र में (उसी स्थान में चतुर्थ, सप्तम और दशम में) यदि पापग्रह हो, तो उत्पन्न हुए बालक से माता का वियोग होता है।।२९–३०।।

रिष्टशान्तियोगः

एकोऽपि केन्द्रभवने नव पञ्चमे वा,
भास्वन्मयूखविमलीकृत दिग्विभागः ।
निःशेषदोषमपहृत्य शुभं प्रसूतं ,
दीर्घायुषं विगतरोगभयं करोति ।।३१।।

अब रिष्ट भंगयोग कथित होता है। अस्तादि दोषरहित जो कोई एक शुभग्रह यदि जातलग्न में वा लग्न की अपेक्षा चौथे, सातवें, दशवें, नववें अथवा पांचवें स्थान में स्थिति करे तो उत्पन्न बालक का सर्व प्रकार रिष्ट नष्ट करके दीर्घायु और रोग भय इत्यादि दूर करता है। कोई कोई कहते हैं कि, केवल बृहस्पति ग्रह के ही उक्त स्थान में होने से ऐसा फल होता है, किंतु यह बात युक्ति संगत नहीं है।।३१।।

परमोच्चस्थरव्यादिसप्तग्रहाणामायुर्द्दायः

पिण्डायुर्व्वर्षाणां संख्या सूर्य्यादिभिः परोच्चस्थैः ।
अतिधृति तत्त्वतिथिद्वादशतिथि भूदृङ्नखाः क्रमशः ।।३२।।

अनंतर परमोच्चस्थ रव्यादि सप्तग्रहों का आयुर्द्दाय (भोग्यदिन) कथित होता है, इसी को पिण्डायुर्द्दाय कहते हैं। रवि,

चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि, यह सात ग्रह परमोच्च (सूच्च) स्थान में स्थित होने पर क्रमशः उन्नीस, पच्चीस, पन्द्रह, बारह, पन्द्रह, इक्कीस, इक्कीस और बीस वर्ष उत्पन्न मनुष्य की पिण्डायु संख्या होंगे अर्थात् मनुष्य के जन्मकाल में रवि परमोचस्थ होने पर पच्चीस वर्ष, मंगल परमोच्चस्थ होने पर पन्द्रह वर्ष, बुध परमोच्चस्थ होने पर बारह वर्ष, बृहस्पति परमोच्चस्थ होने पर पन्द्रह वर्ष, शुक्र परमोच्चस्थ होने पर इक्कीस वर्ष और शनिग्रह के परमोच्चस्थ होने पर बीस वर्ष पिंडायु होगी।।३२।।

परमनीचस्थानामायुर्हानिः

नीचेऽतोर्द्धं ह्रसति हि ततश्चान्तरस्थेऽनुपातो,
होरात्वंशप्रतिममपरे राशितुल्यं वदन्ति ।
हित्वा वक्रं रिपुगृहगतैर्हीयते स्वात्त्रिभागः,
सूर्य्योच्छन्नद्युतिषु च दलं प्रोज्झ्य शुक्रार्कपुत्रौ ।।३३।।

परम नीचस्थ रव्यादिसप्तग्रह का आयुर्द्दाय कथित होता है। परम उच्चस्थान भ्रष्ट अर्थात् नीच स्थान में रव्यादि सात ग्रहों के अवस्थित होने पर पूर्वोक्त पिण्डायु का अर्द्धह्रास होता है। यथा रवि की नौ वर्ष छः मास, चंद्र की बारह वर्ष छः मास, मंगल की सात वर्ष छः मास, बुध की छः वर्ष, छः मास बृहस्पति की सात वर्ष छः मास, शुक्र की दश वर्ष छः मास, और शनि ग्रह की दश वर्ष पिण्डायु संख्या होती है, परम उच्च और नीच के मध्य स्थित ग्रह की पिण्डायु संख्या अनुपात (गणित के) द्वारा स्थिर होगी। होरा इत्यादि के अंश भोगानुसार आयु का विचार होता है, कोई कोई पंडित राशि के भोगानुसार आयु का विचार करते हैं। मंगल ग्रह के अतिरिक्त शत्रुगृह स्थित समस्त ग्रहों के ही तृतीयांश का एक अंश आयु ह्रास होगी और शुक्र तथा शनिग्रह के अतिरिक्त अस्तमितग्रह की दत्तायु

अर्द्धहानि होगी।।३३।।

चक्रपातः

सर्वार्द्धत्रिचरणपञ्चषष्ठभागाः,
क्षीयन्ते व्ययभवनादसत्सु वामम् ।
सत्स्वर्द्धं ह्रसति ततस्तथैकगाना-
मेकोंऽशं हरति बली यथाह सत्यः ।।३४।।

चक्रपात द्वारा आयु का ह्रास कथित होता है। पापग्रह यदि लग्न के बारहवें स्थान से क्षयराशि में, वामावर्त्त में अर्थात् विपरीत भाव से स्थित हो, तो अपनी अपनी दत्तायु के समस्त अंश, अर्द्ध, त्रिभाग, चतुर्भाग, पंच और षष्ठांश क्रमशः हरण करते हैं। अर्थात् एक पाप ग्रह बारहवें स्थान में होने से दत्तायु का समस्त अंश ग्यारहवें में होने से अर्द्धांश, दशवें में तृतीयांश, नवें में चतुर्थांश, आठवें में पंचमांश और छठे स्थान में वास करने से षष्ठांश हरण करता है। द्वादशादि स्थान में शुभग्रह होने से पूर्वोक्त हृतभाग का अर्द्धपरिमाण ह्रास होता है अर्थात् द्वादश में शुभग्रह होने से अर्द्धांश, एकादश में चतुरांश,दशम में षष्ठांश इत्यादि। और यदि द्वादशादिस्थान में दो वा बहुत पापग्रह हों तो जो ग्रह बलवान् होगा वही ग्रह यथोक्तभाग हरण करेगा। इस प्रकार सत्याचार्य ने कहा है, यही सर्ववादिसम्मत है।।३४।।

अथ पापयुक्ते लग्ने सर्वग्रहाणामायुर्ह्रासः

सार्द्धोदितोदितनवांशहतात्समस्तात्-
भागोंऽष्टयुक्तशतसंख्य उपैति नाशम् ।
क्रूरे विलग्नसहिते विधिना त्वनेन,
सौम्येक्षिते दलमतः प्रलयं प्रयाति ।।३५।।

लग्न में पापग्रह के होने से परमायु की हानि कथित होती है। लग्न

में यदि पापग्रह स्थित हो तो सभाग लग्न के उदित (उत्थित) नवांश द्वारा ग्रहों की स्वीय स्वीय प्रदत्त आयु के संख्याङ्क को गुणा करके अष्टोत्तर शतद्वारा हरण कर जो अंक प्राप्त हो उसी परिमित वर्षादिग्रह की दी हुई आयु का ह्रास होगा और लग्नस्थ पापग्रह के प्रति शुभ ग्रह की दृष्टि होने से उक्त प्रकार आयु की हानि न होकर ग्रह प्रदत्त आयु का अर्द्धपरिमित वर्षादि ह्रास होगा।।३५।।

ग्रहाणामंशायुर्गणनम्

राश्यंशकलागुणिता द्वादशनवभिर्ग्रहस्य भगणेभ्यः ।
द्वादशहृतावशेषेऽब्दमासदिननाडिकाः क्रमशः ।।३६।।

ग्रहों का अंश आयुर्दाय कथित होता है। ग्रह जिस राशि में स्थित हो उसी राशि और उसके अंश एवं कला को अष्टोत्तरशत १०८ द्वारा गुणा करे। फिर राशि के अंक को बारह से और अंश के अंक को तीससे भाग करने पर जो अंक प्राप्त हो, उसका नाम भगण है। इस भाग को बारह से घटाने पर जो शेष रहे, उतनी ही वर्ष, मास, दिन और दण्डादिग्रहदत्त अंशायु होगी।।३६।।

लग्नस्यांशायुर्गणनम्

होरादयोऽपि चैवं बलयुक्तान्यानि राशितुल्यानि ।
वर्षाणि संप्रयच्छंत्यनुपाताच्चांशकादि फलम् ।।३७।।

लग्न का आयुर्द्दाय कथित होता है। लग्नायुर्द्दाय में और लग्न तथा लग्न के अंश और कला को एक सौ आठ द्वारा गुणा करके लग्न के अंश को बारह से, अंश के अंक को तीस से और कला के अंक को साठ से भाग करने पर जो प्राप्त हो उसका नाम भगण है। इस भगण को बारह से घटाने पर जो बाकी बचे उसी के द्वारा वर्ष, मास, दिनादि, लग्नायुर्द्दाय होगा किंतु इसमें विशेषता यह है कि लग्न यदि बलवान् हो तो भुक्तराशि के तुल्य वर्षादि अंशायु होगी और अंश कला

विकलादि का फल आयु के अनुपात द्वारा करना चाहिये।।३७।।

शत्रुक्षेत्रादिष्वायुर्हानिः ।

विनारं शत्रुभे त्र्यंशं स्यादर्द्धं नीचसूर्य्यगाः (क)
हित्वा सितासितावन्यश्चक्रपातश्च पूर्ववत् ।।३८।।

शत्रुगृह स्थित ग्रहप्रदत्त आयु की हानि कथित होती है। मंगल के अतिरिक्त ग्रह शत्रु के घर में स्थित होने पर स्वदत्त आयु के तीन भाग में एक भाग की हानि होती है, नीच स्थान में ग्रहों के स्थित होने पर स्वस्वदत्तायु की अर्ध हानि होती है, शुक्र और शनि के अतिरिक्त ग्रहों के अस्तमित होने पर स्वस्वदत्तायु की अर्द्ध हानि होगी। अन्यान्य स्थानों में पूर्व की समान चक्रपात द्वारा आयु निरूपण करे।।३८।।

वर्गोत्तमादिष्वायुर्व्वृद्धिः

सवर्गोत्तमस्वराशिद्रेष्काणनवांशके सकृद्द्विगुणः ।
वक्रोच्चयोस्त्रिगुणितो द्वित्रिगुणत्वे सकृत्त्रिगुणः ।।३९।।

वर्गोत्तमादिस्थान में ग्रहों के अवस्थित होने पर आयु की वृद्धि कथित होती है। ग्रहगण यदि स्वस्ववर्गोत्तम में स्वस्वराशि में स्वस्वद्रेष्काण में और स्वस्वनवांश में स्थित हों, तो स्वीयदत्तायु का द्विगुण प्रदान करते हैं और ग्रहगण वक्री वा उच्चगृह स्थित होने पर स्वस्वदत्तायु का त्रिगुण प्रदान करते हैं, इस स्थान में त्रिगुण द्विगुण होने पर भी एक वार ही त्रिगुण समझना चाहिये।।३९।।

मानुषादीनां परमायुःसंख्या

समाः षष्टिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पञ्च च निशा
हयानां द्वात्रिंशत्करकरभयोः पञ्चककृतिः ।।

(क) नीचगोऽस्तग इति पाठान्तरम् ।

विरूपासत्वायुर्वृषमहिषयोर्द्वादश शुनः
स्मृतं छागादीनां दशकसहिताः षट् च परमम् ।।४०।।

मनुष्यादि की परमायु का परिमाण कथित होता है। मनुष्य और हाथी की परमायु एक सौ बीस वर्ष पांच दिन होती है। इसी प्रकार घोड़े की परमायु बत्तीस वर्ष, गधे और ऊंट की पच्चीस वर्ष, गाय और भैंस की चौबीस वर्ष, कुत्ते की बारह वर्ष, छाग, मेष और मृगादि के परमायु की संख्या सोलह वर्ष होता है।।४०।।

परमायुषः कोष्ठी

अनिमिषपरमांशके विलग्ने,
शशितनये गवि पंचवर्षलिप्ते ।
भवतिहि परमायुषः प्रमाणं यदि,
सहिताः सकलाः सुतुङ्गभेषु ।।४१।।

जात मनुष्य का पूर्णायु योग कथित होता है। अनिमिष अर्थात् मीन राशि का नवम नवांश यदि लग्न हो, और वृष राशि की भुक्त पच्चीस कला में यदि बुधग्रह स्थित हो, और ऊपर सब ग्रह यदि सुतुङ्ग स्थान में हों, तो जातमनुष्य की एक सौ बीस वर्ष पांच दिन परमायु होगी। क्योंकि मीन राशि का नवम नवांश लग्न होने पर परमायु नौ वर्ष, रविग्रह तुङ्गस्थ होने पर उन्नीस वर्ष, चन्द्र सुतुङ्गस्थ होने पर पच्चीस वर्ष, सुतुङ्गमंगल के चक्रपात द्वारा अर्द्ध हानि होकर भी ७।६ मास, बुध वृष राशि की पच्चीस कला में स्थित होने पर ७।६।५ दिन, बृहस्पति सुतुङ्ग होने पर १५ वर्ष, शुक्र सुतुङ्गस्थ होने पर २१ वर्ष, और शनिग्रह सुतुंग होने पर भी चक्रपात द्वारा अर्द्ध हानि होती है, इस कारण सोलह वर्ष होती है, इसको एकत्र करने से ही एक सौ बीस वर्ष पांच दिन होंगे।।४१।।

दशाकथनम्

शोध्यक्षेप्यविशुद्धः कालो यो येन जीविते दत्तः ।
स विचिन्त्यस्तस्य दशास्वदशासु फलप्रदास्ते ।।४२।।

अब सुखदुःखादिज्ञान के निमित्त दशा कथित होती है। आयुर्दाय में शोध्य क्षेप्य विशुद्ध अर्थात् ह्रास वृद्धिद्वारा जो शुद्ध काल (आयु) जिस जिस ग्रह के द्वारा प्रदत्त होती है, उस काल में उसी उसी ग्रह की दशा भोग होगी। ग्रहगण स्वस्वदशा में ही सुख-दुखादिफल प्रदान करते हैं।।४२।।

दशानिर्णयः

लग्नार्कशशाङ्कानां यो लवांस्तद्दशा भवेत्प्रथमा ।
तत्केन्द्रपणफरापोक्लिमोपगानां बलाच्छेषाः ।।४३।।
आयुष्कृतं येन हि यत्तदेव कल्प्या दशा सा प्राबलस्य पूर्व्वा ।
साम्ये बहूनां बहुवर्षदस्य साम्ये तू तेषां प्रथमोदितस्य।।४४।।

दशाक्रम कथित होता है। लग्न, रवि और चन्द्र इन तीनों ग्रहों में जो ग्रह बलवान् होगा, उसी ग्रह की दशा प्रथम होती है। अत एवं पिण्डायु गणना से प्रथम रवि की दशा, अंशायुगणना से प्रथम लग्नदशा, और निसर्गायु गणना से प्रथम चन्द्र की दशा होगी। प्रथम दशाधिपति को दशा के पीछे उसके केन्द्र स्थित ग्रह की दशा होती है, फिर उसके पणफरस्थग्रह की दशा, और फिर उसके आपोक्लिम स्थितग्रह की दशा होती है। केन्द्र, पणफर अथवा आपोक्लिम में यदि एकाधिकग्रह अवस्थित हों, तो उनमें जो ग्रह अधिक बलवान् हो, पहिले उसी ग्रह की दशा होगी। एकाधिक ग्रहों के समान बली होने पर जिस ग्रहकी बहु वर्ष आयु प्रदत्त हो, प्रथम उसकी दशा और यदि केन्द्रादिस्थित एकाधिकग्रह समसंख्यक बहु वर्ष परमायु प्रदान करें, तो पहिले उदितग्रह की ही प्रथमदशा होगी।।४३–४४।

शुभदशाफलम्

मित्रोच्चस्वगृहांशोपगतानां शोभना दशाः सर्व्वाः ।
स्वोच्चाभिलाषिणामपि न तु कथितविपर्य्ययस्थानाम्॥४५॥

शुभदशा का फल कथित होता है। जो ग्रह मित्रगृह गत उच्चगृहस्थित, स्वक्षेत्रगत और स्वीयनवांशगत होते हैं, उनकी दशा में शुभ फल होता है और जो ग्रह उच्चाभिलाषी अर्थात् उच्चगृह प्राप्ति के अभिमुख (निकटवर्त्ती) हैं, उनकी दशा में भी शुभफल होता है, किंतु कथित स्थान के विपरीत स्थानस्थित अर्थात् शत्रुनीचगृहस्थित और शत्रुनीचगृहाभिमुख ग्रहों की दशा से शुभ फल नहीं होता॥४५॥

लग्नदशा द्रेष्काणफलकथनम्

लग्नदशाद्रेष्काणैः पूजितमध्याधमाश्चरे क्रमशः ।
द्विशरीरे विपरीताः स्थिरे तु पापेष्टमध्यफलाः ॥४६॥

अब लग्नदशा का फल कथित होता है। चरलग्न के प्रथम द्रेष्काण की दशा में मनुष्य पूजित होता है। इसी प्रकार चरलग्न के दूसरे द्रेष्काण की दशा में मध्यम (मिश्र) फल और चरलग्न के तीसरे द्रेष्काण की दशा में अधम फल (कष्टादि) होता है। द्वयात्मक लग्न में इसके विपरीत होता है अर्थात् द्वयात्मक के प्रथम द्रेष्काण की दशा में कष्टफल, दूसरे द्रेष्काण की दशा में मध्यमफल और तीसरे द्रेष्काण की दशा में शुभफल होता है। स्थिरलग्न के प्रथम द्रेष्काण की दशा में कष्टफल, दूसरे द्रेष्काण की दशा में मध्यमफल और तीसरे द्रेष्काण की दशा में शुभफल होता है॥४६॥

नैसर्गिकदशाकथनम्

एकं १ द्वौ २ नव ९ विंशात २० धृति १८ कृती २० पञ्चाशद५०
देषां क्रमाच्चन्द्रारेन्दुजशुक्रजीवदिनकृत्प्राभाकरीणां समाः।

स्वैः स्वैः पुष्टफला निसर्गकथितैः पक्तिर्दशानां,
पुनस्त्वन्ते लग्नदशा शुभेति यवना नेच्छन्ति केचित्तदा ।।४७।।

अब नैसर्गिक दशा और उसका फल कथित होता है। जन्मकाल से एक वर्ष चन्द्र की दशा फिर क्रमशः दो वर्ष मंगल की दशा, नौ वर्ष बुध की दशा, बीस वर्ष शुक्र की दशा, अठारह वर्ष बृहस्पति की दशा, बीस वर्ष सूर्य की दशा, और पचास वर्ष शनिग्रह की दशा होती है, यह सब निसर्गदशाधिपति ग्रह बलवान् वा उपचय स्थान में स्थित होने पर दशा मंगलदायक होती है। और बलहीन होने पर दशा अशुभदायक होती है। यदि नैसर्गिक दशा काल के सहित अंशायु और पिण्डायु दशाकाल का पाक अर्थात् समता हो तो जब तक दशा रहे तब तक पुष्ट फल होता है अर्थात् शुभदशा होने पर अतीव शुभफल और अशुभदशा होने पर अतीव अशुभ फल होता है। इस नैसर्गिक दशा का परिमाण एक सौ बीस १२० वर्ष है इससे अधिक समय तक यदि कोई मनुष्य जीवित रहे, तो उसकी लग्नदशा होगी इस लग्नदशा में शुभफल होता है, यह यवनाचार्य का मत है, किंतु अन्य किसी आचार्यको यह अभिप्रेत (इच्छित) नहीं है।।

दशाफल निर्णयः

आदौ शीर्षोदये राशावन्ते पृष्ठोदये ग्रहाः ।
उभयोदये च मध्यस्थाः फलं दद्युर्ब्बलाबलात् ।।४८।।

दशाफल कथित होता है शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, और कुम्भ) राशिस्थ ग्रह दशा के प्रथम भाग में फल देते हैं। पृष्ठोय अर्थात् मेष, वृष, कर्क, धनु और मकर राशि स्थित ग्रह दशा के शेषभाग में फल देते हैं और उभयोदय (मीन) राशिस्थित ग्रह दशा के मध्यभाग में बलाबलवशतः शुभ और अशुभदायक होते हैं।।४८।।

अष्टमचन्द्रादिदशाफलम्

अष्टमेन्दोर्दशा मृत्युं बन्धमस्तमितस्य च ।
शुभस्य वक्रिणो राज्यं पापस्य व्यसनाटते ।।४९।।

अष्टम चन्द्रादि की दशा का फल कथित होता है, जात मनुष्य की लग्न से अष्टमस्थान में चन्द्र के स्थित होने पर चन्द्र की दशा में ही मृत्यु होगी। जन्म समय अष्टम स्थान में जो ग्रह अस्तमित हो उसकी दशा में बन्धन होता है, वक्री शुभग्रह की दशा में राज्य प्राप्ति और वक्री पापग्रह की दशा में विपत्ति एवं विदेश भ्रमण होता है।।४९।।

शिरश्छेदादिकारकदशाकथनम्

अङ्गप्रत्यङ्गानां छेदं विदधाति षष्ठशत्रुदशा ।
द्यूना रिदशाकोणं निधनारिदशाशिरश्छेदम् ।।५०।।

अब छिद्र कारकदशा कथित होती है। जात मनुष्य के जन्मलग्न से षष्ठस्थित लग्नाधिपति के शत्रुग्रह की दशा में हाथ, कान इत्यादि अंग प्रत्यंगादि का छेदन होता है, सप्तमस्थित लग्नाधिपति के शत्रुग्रह की दशा में मनुष्य पंगु (लँगड़ा) होता है और अष्टमस्थ लग्नाधिपति के शत्रु ग्रह की दशा में शिरश्छेद होता है।।५०।।

दशारिष्टम्

क्रूरराशौ स्थितः पापः षष्ठे च निधने तथा ।
तस्थितेनारिणा दृष्टः स्वपाके मृत्युदो ग्रहः ।।५१।।

पापग्रह की दशा में रिष्ट कथित होता है। जातमनुष्य की लग्न से यदि छठे वा आठवें स्थान में पापग्रह स्थित हो और उसी स्थान में पापग्रह का घर हो तथा पापग्रह के क्षेत्रस्थित उक्तग्रह का शत्रुग्रह यदि उसको देखे, तो उसी ग्रह की दशा में मनुष्य की मृत्यु होगी।।५१।।

अन्तर्द्दशाविभागः

एकर्क्षेऽर्द्धं त्र्यंशं त्रिकोणयोः सप्तमे तु सप्तमांशम् ।
चतुरस्त्रयोस्तु पाद्गं पाचयति गतो ग्रहः स्वगुणैः ।।५२।।

अन्तर्दशा विभाग कथित होता है। दशाधिपति के सहित एक राशि में स्थित ग्रह दशापतिदत्त अन्तर्दशाकाल का अर्द्धपरिमाण भोग करता है, दशाधिपति की नवम और पंचमराशि स्थित ग्रह दशापतिदत्त अन्तर्दशाकाल के तृतीयांश का एक अंश प्राप्त करता है। दशापतिके सप्तम स्थान स्थित ग्रह दशापतिदत्त अन्तर्दशाकाल के सप्तम भागका एक भाग लाभ करता है। दशापति की चौथी वा आठवीं राशि में स्थित ग्रह दशापतिदत्त अन्तर्दशाकाल के चौथे भाग का एक भाग भोगता है। यदि त्रिकोणादि स्थान में एकाधिक ग्रह हों, तो जो ग्रह अधिक बलवान् होगा उसीकी प्रथम अन्तर्दशा होगी और ग्रहों के समान बली होने पर प्रथमोदित ग्रह ही अन्तर्दशाधिपति होता है।।५२।।

अन्तर्द्दशाच्छेदः

यस्मिन्नंशे भवन्त्येते भागाश्छेदविवर्जिताः ।
तत्प्रत्यंशं दशां हत्वा मिलितैर्भागमाहरेत् ।।५३।।

अन्तर्दशाके अंश की कल्पना की जाती है। जिस अंक में यह अर्द्धादि अंश भंगवर्जित अर्थात् अखण्ड हों, उस अंक के प्रति भाग द्वारा दशा परिमाण अंक को पूर्ण करके समस्त अंक को एकत्र करने पर जो अंक हो, उससे पूर्वोक्त पूरिताङ्क को घटाने पर जो हो, उसी परिमाण वर्ष की अन्तर्दशा का काल जानना चाहिये।।५३।।

रव्यादिसप्तदशासु अन्तर्दशाकथनम्

चन्द्रारजीवा बुधजीवशुक्रा दिवाकरेन्दू रविजीवशुक्राः ।
रवीन्दुशुक्रा बुधजीवसौरा जीवज्ञशुक्रा रवितः प्रशस्ताः ।।

अन्तर्दशा का फल कथित होता है। रवि की दशा में चन्द्र, मंगल और बृहस्पति की अन्तर्दशा होने पर शुभ फल होता है, चन्द्र की दशा में बुध, बृहस्पति और शुक्र की अन्तर्दशा होने पर शुभ होगा। मंगल की दशा में रवि और चन्द्र की अन्तर्दशा होने पर शुभफल होता है। बुध की दशा में रवि, बृहस्पति और शुक्र की अन्तर्दशा होने पर शुभफल होगा। बृहस्पति की दशा में रवि, चन्द्र और शुक्र की अन्तर्दशा होने पर शुभ होता है। शुक्र की दशा में बुध बृहस्पति और शनि की अन्तर्दशा होने पर शुभ होगा और शनि की दशा में बृहस्पति बुध और शुक्र की अन्तर्दशा होने पर शुभफल होता है।।५४।।

मध्यादिरिष्टान्तर्द्दशाकथनम्

चन्द्रारजीवाः सुरपूजितानां दशासु मार्त्तण्डगुरुज्ञभौमाः ।
अन्तर्द्दशायां क्रमशस्तुमध्या अनिष्टदाः स्युः शुभमध्यशेषाः ।।

चन्द्र, मंगल, बृहस्पति और शुक्र की दशा में यदि क्रमशः रवि, बृहस्पति, बुध और मंगल की अन्तर्दशा होती है अर्थात् चन्द्र की दशा में रवि की अन्तर्दशा, मंगल की दशा में बृहस्पति की अन्तर्दशा, बृहस्पति की दशा में बुध की अन्तर्दशा, और शुक्र की दशा में मंगल की अन्तर्दशा होती है, तो मध्यफल होता है और शुभ तथा मध्यफल का शेष अनिष्टफल दायक है अर्थात् रवि की दशा में शनि, बुध और शुक्र की अन्तर्दशा होने पर अनिष्ट फल होता है, इसी प्रकार चन्द्र की दशा में शनि और मंगल की अन्तर्दशा होने पर, मंगल की दशा में बुध, शुक्र और शनि की अन्तर्दशा होने पर, बुध की दशा में शनि चन्द्र और मंगल की अन्तर्दशा होने पर, बृहस्पति की दशा में शुक्र और शनि की अन्तर्दशा होने पर शुक्रकी दशा में चन्द्र और रवि की अन्तर्दशा होने पर एवं शनि की दशा में

रवि चन्द्र और मंगल की अन्तर्दशा होने पर अनिष्ट फल होता है।।५५।।

पापग्रहान्तर्द्दशाकथनम्

पापग्रहदशायान्तु पापस्यान्तर्द्दशा यदि ।
अरियोगे भवेन्मृत्युर्म्मित्रयोगे च संशयः ।।५६।।

अन्तर्दशारिष्ट कथित होता है। पापग्रह की अर्थात् शनि, रवि और मंगल ग्रह की दशा में यदि पापग्रह की अन्तर्दशा हो और दशाधिपति के सहित अन्तर्दशाधिप की शत्रुता हो तो मनुष्य की मृत्यु होगी। पापग्रह की दशा में अन्तर्दशाधिपति पापग्रह होकर भी यदि मित्रग्रह हो, तो मृत्युतुल्य पीडादि होती है।।५६।।

लग्ने शत्रोरन्तर्द्दशारिष्टम्

विलग्नाधिपतेः शत्रुर्लग्नस्यान्तर्द्दशांगतः ।
करोत्यकस्मान्मरणं सत्याचार्यः प्रभाषते ।।५७।।

लग्नान्तर्दशारिष्ट कथित होता है। मनुष्य के जन्म लग्नाधिपतिग्रह का शत्रुग्रह यदि जन्मलग्नाधिपति ग्रह की अन्तर्दशा गत हो तो मनुष्य की अकस्मात् मृत्यु होती है, इस प्रकार सत्याचार्य ने कहा है।।५७।।

दशान्तर्द्दशयोरपवादः

प्रवेशे बलवान्खेटः शुभैर्वा संनिरीक्षितः ।
सौम्याधिमित्र वर्गस्थो मृत्यवे न भवेत्तदा ।।५८।।

दशा और अन्तर्दशाकारिष्ट भंगयोग कथित होता है। दशा वा अन्तर्दशा के प्रवेश समय में दशाधिपति अन्तर्दशाधिपति ग्रह बलवान् अथवा शुभग्रह से दृष्ट वा अधिमित्रादि शुभग्रह के वर्गादि में स्थित होने पर यद्यपि उस दशा में मृत्यु न हो, किंतु तथापि मृत्युतुल्य पीडादि होती है।।५८।।

रिष्टप्रतीकार:

गोचरे वा विलग्ने वा ये ग्रहारिष्टसूचका: ।
पूजयेत्तान् प्रयत्नेन पूजिता: स्यु: शुभावहा: ।।५९।।

रिष्टशांति कथित होती है। मनुष्य के गोचर वा लग्न में यदि कोई ग्रह रिष्टदायक हो तो यत्न सहित उस ग्रह की पूजा करे, क्योंकि रिष्टदायक ग्रह भी पूजित होने पर शुभफल देते हैं।।५९।।

राजयोग:

वर्गोत्तमगते चन्द्रे चतुरादिभिरीक्षिते विलग्ने वा ।
नृपजन्म भवति राज्यं नृपयोगे बलयुतग्रहदशायाम् ।।६०।।

स्वग्रहस्थितसुहृद्ग्रहफलम्

कुलतुल्य: कुलश्रेष्ठो बन्धुमान्यो धनी सुखी ।
क्रमान्नृपसमो भूय एकाद्यै: स्वगृहे स्थितै: ।।६१।।*

अब राजयोग वर्णित होता है। चन्द्रग्रह यदि वर्गोत्तमगत होकर चार ग्रहों से दृष्ट हो, वालग्न यदि चन्द्रग्रह के अतिरिक्त चार ग्रहों के द्वारा दृष्ट हो, तो जातमनुष्य का राजयोग होता है। राजयोग होने पर जात मनुष्य के बलवान् ग्रह की दशा में राज्य प्राप्ति होती है। स्वगृह और मित्रगृह स्थित ग्रह का फल कथित होता है जन्म समय में एक ग्रह के स्वक्षेत्रस्थ वा मित्रगृहगत होने पर मनुष्य कुलतुल्य होता है। इसी प्रकार दो ग्रह होने पर कुलश्रेष्ठ, तीन होने पर बन्धुमान्य, चार होने पर धनवान्, पांच होने पर सुखी, छ: होने पर नृपतुल्य और सात ग्रहों के स्वक्षेत्रस्थ वा मित्रगृहगत होने पर मनुष्य राजा होता है।।६०–६१।।

व्योश्यादियोग:

सूर्य्याद्द्वचयगैर्व्योशिद्वितीयगैश्चन्द्रवर्जितैर्व्वोशि: ।

---

* स्वगृहेस्थितैरित्यत्र स्वसुहृद्गृहे इति क्वचित् पुस्तके पाठ: ।

उभयस्थितैर्ग्रहैरुभयचरी नामतः प्रोक्ताः ।।६२।।

अब व्योश्यादियोग कथित होता है। सूर्य के बारहवें स्थान में चन्द्र के अतिरिक्त ग्रह होने पर व्योशियोग होता है और सूर्य के दूसरे स्थान में चन्द्र के सिवाय ग्रह अवस्थित होने पर वेशिनामक योग होता है। और उक्त दोनों स्थानों में ग्रह होने पर उभयचारी योग होता है।।६२।।

व्योश्यादियोगफलम्

मन्ददृगस्थिरवचनः परिभूत परिश्रमोभवेद्व्योशौ,
उद्घृष्टवचनः स्मृतिमान् स्तब्धगतिः सात्विको वेशौ ।।६३।।
सुभगो बहुभृत्यधनो बहूनामाश्रयो नृपतितुल्यः ।
नृत्योत्साहो हृष्टो भुङ्क्ते भोगानुभयचर्य्याम् ।।६४।।

व्योश्यादि योग का फल कथित होता है। जन्म समय में व्योशियोग होने पर मनुष्य कोटराक्ष (कोतवाल) और परिप्राप्त (धनादि की प्राप्तिवाला) परिश्रमी होता है और वेशियोग होने पर मनुष्य उच्च और कुत्सितवाक्यशील (बुरे वचन कहनेवाला अथवा गाली देनेवाला) स्तब्धगति (आलसी) और दाता होता है। उभयचारी योग में मनुष्य सौभागशाली, बहुभृत्ययुक्त, बहुत धन का अधिपति, अनेकों का आश्रय, नृपति तुल्य नृत्योत्साही हृष्ट और भोग शील होता है।।६३–६४।।

अनफादियोगः

रविवर्ज्जं द्वादशगैरनफा चन्द्राद् द्वितीयगैः सुनफा ।
उभयस्थितैर्दुरधुराकेमद्रुमसंज्ञितोऽन्यः ।।६५।।

अनफादियोग कथित होता है। लग्न के बारहवें स्थान में रवि के अतिरिक्त ग्रह स्थित होने पर अनफायोग होता है। चन्द्र के दूसरे स्थान में रवि के अतिरिक्त ग्रह होने पर सुनफानामक योग होता है।

लग्न और चन्द्र के कथित दोनों स्थानों में ग्रह स्थित होने पर दुरधुरा योग होता है और लग्न तथा चन्द्र के बारहवें तथा दूसरे स्थान में ग्रह न होने पर केमद्रुम नामक योग होता है।।६५।।

अनफादियोगफलम्

सच्छीलं विषयसुखान्वितं प्रभुं ख्यातियुक्तमनफायां,
सुनफायां धीधनकीर्त्तियुक्तमात्मार्ज्जितैश्वर्य्यम् ।
बहुभृत्यकुटुम्बारम्भवित्तमुद्विग्नचित्तमपि च दौरधुरे,
मृतकं दुःखितमधनं जातं केमद्रुमे विद्यात् ।।६६।।

अनफादि योग का फल कथित होता है। अनफायोग में उत्पन्न हुआ मनुष्य सच्चरित्र, विषयसुखयुक्त, प्रभु और ख्यातियुक्त होता है। सुनफा योग में उत्पन्न हुआ मनुष्य बुद्धिमान् धनी, कीर्त्तियुक्त और निजोपार्जित धन से ऐश्वर्यशाली होता है। दुरधुरायोग में उत्पन्न हुआ मनुष्य बहुत सेवकों से युक्त, कुटुम्बारम्भवित्त (जिसका धन कुटुम्ब के प्रति व्यय होता रहे) और उद्विग्नचित्त होता है और केमद्रुम योग में उत्पन्न हुआ मनुष्य सेवक, दुःखित और धनहीन होता है।।६६।।

अन्यथा केमद्रुमयोगभंगः

त्रितयेन यदा योगाः केन्द्रग्रहवर्जितं शशांकश्च ।
केमद्रुमोऽति कष्टः शशिनि समस्तग्रहादृष्टे ।।६७।।

अब केमद्रुम योगभंग कथित होता है। अनफा, सुनफा और दुरधुरा योग न होकर यदि लग्न में वा लग्न के चौथे, सातवें और दशवें, स्थान में कोई ग्रह न हो और चन्द्र यदि किसी ग्रह से युक्त वा किसी ग्रह के द्वारा दृष्ट न हो, तो केमद्रुम योग अतिशय कष्टदायक होता है। लग्न में अथवा लग्न के केन्द्र स्थान में वा चन्द्र में ग्रह के स्थित होने पर केमद्रुम योग नहीं होगा और चन्द्र के प्रति किसी ग्रह

की दृष्टि होने पर भी केमद्रुम योग का भंग होगा।।६७।।

लग्नचन्द्रोपचयस्थशुभग्रहैर्व्वसुमत्तानिरूपणम्

लग्नादतीव वसुमान् वसुमान् शशांकात्,
सौम्यग्रहैरुपचयोपगतैः समस्तैः ।
द्वाभ्यां समोऽल्पवसुमांश्च तदूनतायामन्येषु,
सत्स्वपि कलेष्विदमुत्कटेन ।।६८।।

अब वित्तयोग कथित होता है। लग्न और चन्द्र के तीसरे, ग्यारहवें, छठे और दशवें स्थान में समस्त शुभ ग्रह (बुध, शुक्र, बृहस्पति) होने पर उत्पन्न मनुष्य अत्यंत धनवान् होता है। इसी प्रकार दो शुभग्रह होने पर मध्यम धनवान् और एक शुभग्रह उपचयस्थान में होने से जातमनुष्य, अल्प धनी होता है। इस उपचय, तीसरे, ग्यारहवें, छठे और दशवें स्थान के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान में शुभग्रह होने से जात मनुष्य दरिद्री होता है। वक्ष्यमाण अन्य प्रकार धनयोग होने पर भी यही योग फलदायक होता है।।६८।।

सूर्यकेन्द्रादिस्थचन्द्रवशेन विनयवित्तादी
नामधमत्वादिनिरूपणम्

अधमसमवरिष्ठान्यर्ककेन्द्रादि संस्थे,
शशिनि विनयवित्तज्ञानधीनैपुणानि ।
अहनि निशि च चन्द्रे स्वाधिमित्रांशके वा
सुरगुरुसितदृष्टे वित्तवान् स्यात्सुखी च ।।६९।।

अन्य प्रकार धनयोग कथित होता है। जन्म के समय चन्द्रग्रह यदि रवि के केन्द्र स्थान में स्थित हो, तो उत्पन्न मनुष्य का विनय, धन, शास्त्र, ज्ञान, प्रतिमा (प्रभाव) और कार्य में निपुणता अल्प होती है। रवि के पणफर स्थान में चन्द्र होने पर उत्पन्न मनुष्य के

विनयादि की समता होती है और रवि के आपोक्लिम स्थान में चन्द्र स्थित होने पर उत्पन्न मनुष्य के विनयादि का श्रेष्ठत्व होता है। दिन में जन्म होने पर यदि चन्द्र ग्रह स्वगृह में, स्वनवांश में, अधिमित्र गृह वा अधिमित्र नवांश में, स्थित होकर बृहस्पति के द्वारा दृष्ट हो, तो उत्पन्न मनुष्य बलवान् और सुखी होता है। रात्रि में जन्म होकर भी यदि चन्द्र ग्रह स्वगृह में, स्वनवांश में अधिमित्र गृह और अधिमित्र नवांश में स्थित होकर शुक्रग्रह के द्वारा दृष्ट हो, तो जातमनुष्य बली और सुखयुक्त होता है।।६९।।

ग्रहयोगफलम् ।

प्रायः शुभाः समेता धनभोगयशोऽन्वितं नृपतिचेष्टम् ।
पापाश्च दुःखतप्तं कुर्वन्त्यधनं सुदुर्भगं दीनम् ।।७०।।

द्विग्रहादि योगफल कथित होता है। जन्म काल में चन्द्रग्रह शुभग्रहयुक्त होने पर प्रायः अधिकांश स्थलों में ही उत्पन्न मनुष्य धन भोग और यश प्राप्त करता है और नृपति चेष्टा (राजा के समान चेष्टावाला) होता है और जन्म काल में चन्द्र पापयुक्त होने पर उत्पन्न मनुष्य दुःखतापित, धनहीन, दुर्भाग्य और दीनभावापन्न होता है।।७०।।

प्रव्रज्यायोगः ।

चतुरादिभिरेकस्थैः प्रव्रज्यां स्वां ग्रहः करोति बली ।
बहुवीर्य्यैस्तावहव्यः प्रथमावीर्य्याधिकस्यैव ।।७१।।

प्रव्रज्यायोग कथित होता है। जन्म काल में चतुरादि ग्रह एक स्थान में स्थित होने पर अर्थात् चार ग्रह, पांच ग्रह, छः ग्रह, अथवा सातग्रहों के एकत्र वास करने पर यदि प्रव्रज्यायोग होता है, तो उनमें जो ग्रह अधिक बलवान् हो, वही अपनी प्रव्रज्या दान करता है। एकाधिक ग्रह के बलवान् होने पर प्रव्रज्या भी अनेक होती हैं,

किंतु अधिक बलवान् ग्रह की प्रव्रज्या प्रथम होती है, फिर बलाधिक्य क्रम से अन्यान्य प्रव्रज्या होती है।।७१।।

प्रव्रज्यानिर्णयः

तापसबुद्धश्रावकरक्तपटाजीविभिक्षुचरकाणाम् ।
निर्ग्रन्थानां चार्कात् पराजितैः प्रच्युतिर्ब्बलिभिः ।।७२।।

प्रव्रज्या का फल कथित होता है। रव्यादि सात ग्रहों की क्रमानुसार तापस, बुद्ध श्रावक, रक्तपट, आजीवक, भिक्षु, चरक, और निर्ग्रन्थ यह सात प्रकार प्रव्रज्या होती है अर्थात् रवि प्रवज्या कारक होने पर तापस (वानप्रस्थ) वा ब्रह्मचारी इसी प्रकार चन्द्र होने पर बुद्ध श्रावक (बौद्धधर्मावलम्बी) मंगल होने पर रक्तपट धारी (शाक्यनामक बौद्ध विशेष) बुध होने पर आजीवक, (एकदण्डी) बृहस्पति होने पर भिक्षु (यती) शुक्र होने पर चरक (चार्वाक) और शनिग्रह प्रव्रज्या कारक होने पर निर्ग्रन्थ (मूर्ख, क्षपणक) होता है। प्रव्रज्या कारक बलवान् ग्रह यदि पराजित हो तो प्रव्रज्या की च्युति होगी।।७२।।

संख्यायोग

एकादि ग्रहोपगतैरुक्तान् योगान् विहाय संख्याख्याः ।
गोलयुक्शूलकेदारपाशदामाख्यवीणाः स्युः ।।७३।।

संख्यायोग कथित होता है एकादि ग्रह में ग्रहों के स्थित होने पर बीस प्रकार आकृतियोग त्यागकर संख्या नामक गोलादि सप्त प्रकार योग होता है अर्थात् एक गृह में सात ग्रहों के होने पर गोलयोग, दो गृह में सात ग्रहों के होने पर युगयोग, तीन गृहों में सात ग्रहों के होने पर शूलयोग, चार गृहों में सात ग्रहों के होने पर केदार योग, पांच गृहों में सात ग्रहों के होने पर पाशयोग, छः गृहों में सात ग्रहों के होने पर दामयोग और सात गृहों में सात ग्रहों के होने

पर वीणा योग होता है।।७३।।

संख्यायोगफलम् ।

दु:खितदरिद्रघातककृषिकरदु:शीलपशुपनिपुणानाम् ।
जन्मक्रमेण सुखिन: परभाग्यै: सर्व्व एवैते ।।७४।।

गोलादि योग का फल कथित होता है। जन्म समय में गोलयोग होने पर उत्पन्न मनुष्य दु:खित होता है। इसी प्रकार युगयोग में दरिद्र, शूल में हिंस्रक, केदारयोग में कृषक, पाशयोग में दु:शील अर्थात् धनार्ज्जन विहीन, दामयोग में पशु जीवी, और वीणायोग में उत्पन्न मनुष्य कार्य दक्ष (चतुर) होता है। उक्तगोलादि योग में उत्पन्न हुआ मनुष्य जीवन पर्यंत दु:खादि भोगता है, यदि कुछ सुख भोगे, वह पराये भाग्य से होता है।।७४।।

राशिशीलम्

अस्थिरविभूतिमित्रं चलमटनं फलितनियमपि चरमे ।
स्थिरमेतद्विपरीतं क्षमान्वितं दीर्घसूत्रञ्च ।
द्विशरीरे त्यागयुतं कृतज्ञमुत्साहिनं विविधचेष्टम् ।
ग्राम्यारण्यजलोद्भवराशिषु जातास्तथा शीला: ।।७५।।

अब राशिफल कथित होता है। जन्मकाल में चर (मेष, कर्क, तुला और मकर) राशि में चन्द्रमा होने पर जातमनुष्य अस्थिर ऐश्वर्य, चंचल मित्र, अस्थिर स्वभाव, चंचलगति, गमनशील और स्खलित नियम होता है। जन्म समय में स्थिर (वृष, सिंह, वृश्चिक और कुंभ) राशि में चन्द्रमा के स्थित होने पर जातक सबंध में इसके विपरीत होता है अर्थात् स्थिर ऐश्वर्य, स्थिर मित्र, अनटनशील (एकत्र स्थित रहने वाला) स्थिर प्रतिज्ञ, क्षमावान् और दीर्घसूत्री होता है। जन्मकाल में द्व्यात्मक (मिथुन, कन्या धनु और मीन राशि में) चंद्रमा होने पर जात मनुष्य दानशील, कृतज्ञ,

उत्साही और विविधचेष्ट (अनेक प्रकार की चेष्टा करनेवाला) होता है। ग्राम्य, आरण्य और जलज राशि के भेद से जातमनुष्य ग्रामादि के स्वभाव को प्राप्त होता है।।७५।।

नक्षत्रशीलम् ।

शतानलादित्यविशाखमैत्रशक्रोद्भवा मिश्रगणाः प्रदिष्टाः ।
शिवाजहस्ताहिभवा जघन्याः शेषोद्भवाः सत्पुरुषा भवन्ति।।

नक्षत्रफल कथित होता है। शतभिषा, कृत्तिका, पुनर्वसु, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा, नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य मिश्रगण अर्थात् मध्यम स्वभाव युक्त होता है, आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपद, हस्त और आश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य गुणहीन होता है, इनके अतिरिक्त अर्थात् अश्विनी भरणी,रोहिणी मृगशिरा,पुष्य,मघा,पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा स्वाती, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद और रेवती नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य सत्स्वभावयुक्त होता है।।७६।।

दृष्टिफलम् ।

क्षेत्राधिपसंदृष्टे शशिनि नृपस्तत् सुहृद्भिरपि धनवान् ।
तद्द्रेष्काणांशकपैः प्रायः सौम्यैः शुभं नान्यैः ।।७७।।

क्षेत्राधिपति की दृष्टि द्वारा चन्द्र का फल कथित होता है। जन्मकाल में जिस ग्रह के क्षेत्र में चन्द्रमा स्थित हो, वह ग्रह यदि चन्द्रमा को देखे, तो उत्पन्न मनुष्य नृप अर्थात् पुरग्रामादि का अधिकारी होता है किंतु उसका पुत्र राजा होता है, और क्षेत्राधिपति के मित्रग्रह द्वारा चन्द्रमा दृष्ट होने पर जात मनुष्य बलवान् होता है और जिस द्रेष्काण एवं नवांश में चन्द्रमा स्थित हो, उसी द्रेष्काण और नवांश पति द्वारा यदि वह दृष्ट हो तो जात मनुष्य धनवान् होगा। शुभग्रह द्वारा चन्द्र के दृष्ट होने पर प्रायः

शुभफल होता है और अशुभग्रह के द्वारा दृष्ट होने पर प्रायः अशुभफल होता है।।७७।।

भावफलम् ।

पुष्णन्ति शुभा भावान् मूर्त्त्यादीन् घ्नन्ति संश्रिताः पापाः ।
सौम्याः षष्ठेऽविघ्ना नेष्टाः पापा व्ययाष्टमगाः ।।७८।।

भावफल कथित होता है। तन्वादि बारह भाव के जिस जिस स्थान में शुभग्रह स्थित हो वा शुभग्रह के द्वारा जो जो भावदृष्ट हो, उस उस भाव की पुष्टि होती है और पापग्रह जिस जिस भाव में हो अथवा जिस जिस भाव को देखे, उस उस भाव की हानि होती है, किंतु विशेष यह है कि, छठे स्थान में पापग्रह की स्थिति वा दृष्टि होने पर शत्रुवृद्धि और शुभग्रह की स्थिति वा दृष्टि होने पर शत्रु नाश होता है और बारहवें तथा आठवें स्थान में पापग्रह के स्थित होने पर अथवा पापग्रह के द्वारा उक्तस्थान दृष्ट होने पर अशुभ फल अर्थात् व्यय और मृत्यु की वृद्धि एवं शुभग्रह की स्थिति वा दृष्टि होने पर शुभफल अर्थात् व्यय और मृत्यु की हानि होती है।।७८।।

मिश्रफलम्

शुभं वर्गोत्तमे जन्म वेशिस्थाने च सद्ग्रहे ।
अशून्येषु च केंद्रेषु कारकाख्यग्रहेषु च ।।७९।।

अब वर्गोत्तमादि स्थित लग्न चन्द्रादि का शुभफल कथित होता है। जन्म काल में वर्गोत्तम गतलग्न वा वर्गोत्तम गतचन्द्र होने पर जन्म शुभ अर्थात् उत्पन्न मनुष्य सत्स्वभावयुक्त होता है। जन्मकाल में रवि के दूसरे स्थान में शुभग्रह होने पर भी जन्म शुभ होता है और जन्मलग्न के केन्द्र का एक स्थान भी यदि ग्रह विहीन न हो, तो जन्म शुभ होगा और वक्ष्यमाण कारक संज्ञक योग में उत्पन्न मनुष्य

भी सत्पुरुष होता है।।७९।।

कारकतान्योगौ।

लग्नस्थः सुखसंस्थो वा दशमश्चापि कारकः सव्वः।
चन्द्रोपचयेऽन्योऽन्यं पापाः सौम्याश्चतानाख्याः ।।८०।।

कारक और तान्संज्ञक ग्रह कथित होते हैं। लग्न और चतुर्थ दशम और सप्तमस्थ समस्त ग्रह परस्पर कारकसज्ञक होते हैं और स्वक्षेत्र, तुङ्ग, और मूलत्रिकोणस्थ ग्रह केन्द्र में होने पर भी परस्पर कारक संज्ञक होते हैं। और चन्द्र के उपचय स्थित पाप और समस्त शुभग्रह परस्पर तान्संज्ञक होते हैं।।८०।।

स्त्रीणां रूपादिनिर्णयः

स्त्रीपुंसोर्ज्जन्मफलं तुल्यं किन्तत्र चन्द्रलग्नस्थम्।
तद्बलयोगाद्वपुराकृतिः सौभाग्यमस्तमये स्त्रीणाम् ।।८१।।

अब स्त्री जातक कथित होता है। स्त्री और पुरुष का जन्म फलतुल्य अर्थात् पुरुष का जो फल कथित हुआ है। स्त्री का भी प्रायः उसी प्रकार होगा किंतु विशेष यही है चन्द्र और लग्न के बलाबल अनुसार शरीर का रूप और शीलादि और सातवें स्थान में सौभाग्य की चिंता करनी चाहिये।।८१।।

सप्तमस्थभौमादिफलम्

बाल्ये विधवाभौमे पतिसंत्यक्तादिवाकरेऽस्तस्थे।
सौरे पापैर्दृष्टे कन्यैवजवांसमुपयाति ।।८२।।

सप्तमस्थ पापग्रह का फल कथित होता है। स्त्री के जन्मकालीन लग्न की अपेक्षा सातवें स्थान में मंगल ग्रह होने से बाल्यकाल में विधवा होती है। रवि सप्तमस्थ होने पर जात स्त्री पति के द्वारा परित्यक्त होती है अर्थात् पति उसको छोड़ देता है और शनिश्चर ग्रह यदि पाप ग्रह से अवलोकित हो तो यह कन्या अनूढ़ा अवस्था में

जरा (बुढ़ापा) को प्राप्त होती है॥८२॥

वैधव्यादिनिर्णयः

क्रूरैरस्ते विधवा भवति पुनर्भूः शुभाशुभैर्नारी ।
क्रूरेऽष्टमे च विधवा स्यात् स्वार्थे सा स्वयं म्रियते ॥८३॥

अब वैधव्यादि योग का निर्णय किया जाता है। क्रूर अर्थात् पापग्रह जन्मकाल में लग्न के सातवें स्थान में होने पर जात स्त्री विधवा होती है। शुभाशुभ ग्रह के सातवें स्थान में स्थिति करने पर पुनर्भू अर्थात् द्विरुढ़ा * होती है और पापग्रह के आठवें स्थान में स्थित होने पर भी कन्या विधवा होती है। किंतु दूसरे स्थान में यदि शुभग्रह हो, तो विधवा न होकर स्वयं मर जाती है॥८३॥

विषमस्थानादिलग्नकथनम्

ओजे लग्नेन्द्वोः दुःशीला शीलसंयुता युग्मे ।
शून्येऽबले कदर्य्यः पतिश्चरेऽस्ते प्रवासी स्यात् ॥८४॥

इति श्री श्रीनिवासविरचितायां शुद्धिदीपिकायां
जातनिर्णयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

स्त्री का जन्म ओज अर्थात् अयुग्म लग्न में होने से वा जन्म चन्द्र अयुग्म राशि में होने से वह स्त्री दुःशील होती है युग्मराशि यदि लग्न हो वा चन्द्र युग्मराशि में हों तो जात स्त्री सुशील होती है। सप्तमस्थान ग्रहशून्य वा बलशून्य होने पर पति कापुरुष होता है और चर राशि सप्तम स्थान में होने पर उस स्त्री का पति नित्य प्रवासी होता है॥८४॥

इति भाषाटीकायां जातकनिर्णयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

---

* जिसके दो पति हों।

सप्तमोऽध्यायः

अथ नामकरणम्

ध्रुवमृदुचरवर्गे वाजिहस्तासमेते,
क्षणमुदयमथैषां सत्सु केन्द्रस्थितेषु ।
दिग्रविशिवशताहे तत्कुलाचारतो वा,
शुभदिन तिथियोगे नाम कुर्य्यात् प्रशस्तम् ।।१।।

अब नामकरण कथित होता है। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, अश्विनी और हस्त नक्षत्र में वा इन सब नक्षत्रों के असम्भव होने पर इनके मुहूर्त्त में लग्न स्थिर कर उसके केन्द्र स्थान में शुभग्रह होने पर दशम, द्वादश, एकादश, वा शतदिवस में अथवा कुलाचार के हेतु षष्ठमासादि में शुभ दिन शुभ तिथि और शुभयोग में बालक का नामकरण प्रशस्त (श्रेष्ठ) होता है।।१।।

निष्क्रामणम्

आर्द्राधोमुखवर्ज्जितानुपहतेष्वृक्षेष्वरिक्ते,
तिथौ वारे भौमशनीतरे घटतुलाकन्यामृगेन्द्रोदये ।
सद्दृष्टेऽथ चतुर्थमासि यदि वा मासे तृतीये शशि-
न्यक्षीणे शुभदे शिशोरभिनवं निष्क्रामणं कारयेत् ।।२।।

निष्क्रामण कथित होता है। आर्द्रा, आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद और शतभिषा, इन सब नक्षत्रों के अतिरिक्त नक्षत्र के, औत्पातिक वा पापग्रहों के पीड़ा देने का अधिकार न होने पर, रिक्ता के अतिरिक्त तिथि में, मंगल और शनि के अतिरिक्त वार में, कुंभ, तुला, कन्या और सिंह लग्न में (शुभग्रह की दृष्टि होने पर) चौथे वा तीसरे महीने में क्षीणचन्द्र के अतिरिक्त में और चन्द्रगोचर में शुभ होने पर नवीन बालक को घर से प्रथम निष्क्रामण करे।।२।।

ताम्बूलदानम्

विगतवरुणनाथाधोमुखार्द्रान्यभेषु ,
त्रिभवरिपुगपापैः केन्द्रकोणस्थसौम्यैः ।।
विकुजरविजवारे सार्द्धमासद्वये स्याद्,
वृषझषबुधसौरर्क्षोदये पूगदानम् ।।३।।

ताम्बूलदान कथित होता है। शतभिषा नक्षत्र वर्जित अधोमुख अर्थात् आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा,पूर्वाभाद्रपद यह सब और आर्द्रा के अतिरिक्त नक्षत्र में, लग्न के तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थान में पापग्रह एवं केन्द्र और त्रिकोण स्थान में शुभग्रह के वास करने पर, मंगल और शनि के अतिरिक्त वार में, जन्म दिन से ढ़ाई महीने में, वृष, मीन, मिथुन, कन्या मकर और कुंभ लग्न में ताम्बूल दान श्रेष्ठ होता है।।३।।

प्राग्भूम्युपवेशनम्

ब्रह्मोत्तरेन्द्रमृगमैत्रकराश्विनीषु,
वारेषुसप्तसु विशिष्य कुजस्य वारे ।।
मासे तु पञ्चम इह प्रति मुच्चरिक्तां-
शस्तंशिशोर्भवति भूम्युपवेशनं प्राक् ।।४।।

शिशु का प्रथम भूमि में उपवेशन (भूमि में बैठना) कथित होता है। रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा, मृगशिरा, अनुराधा, हस्त और अश्विनी, नक्षत्र में, रवि इत्यादि सात वार में विशेषकर मंगलवार में, पांचवें महीने में रिक्ता के अतिरिक्त तिथि में शिशु का प्रथम भूमि में उपवेशन प्रशस्त है।।४।।

अन्नप्राशनम्

पूर्वेशान्तकसर्पमूलरहितेष्वृक्षेष्वरिक्ते तिथौ,
षष्ठे मासि सितेन्दुजीवदिवसे गोज्ञर्क्षमीनोदये ।
केन्द्राष्टान्त्यत्रिकोणभैः शुभयुतैस्तैरेव पापोज्झितै,
र्हित्वेन्दुंरिपुरन्ध्रगं शिशुजनस्यान्नाशनं शोभनम् ।।५।। (१)

अब बालकों का अन्न प्राशन कथित होता है। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद , आर्द्रा, भरणी, आश्लेषा और मूल के अतिरिक्त नक्षत्र में, रिक्ता के अतिरिक्त तिथि में छठे महीने में शुक्र, सोम, बृहस्पति, रवि और बुधवार में, वृष, मिथुन, कन्या, और मीन लग्न में, लग्न के केन्द्र में (लग्न) चतुर्थ, सप्तम, और दशमं स्थान में, आठवें बारहवें और त्रिकोण में (नवें और पांचवें स्थान में) शुभ ग्रह के अवस्थित होने पर और लग्न के उक्त समस्त स्थानों में पापग्रह के न होने पर लग्न से छठे और आठवें चन्द्रमा को त्याग कर बालक को अन्नप्राशन करावे।।५।।

अथ नवान्नभक्षणम्

मेषूग्राहिशिवान्येषु विभौमशनिवासरे ।

---

(१) एकादश्याञ्च सप्तम्यां द्वादश्यां पञ्चपर्वसु । बलमायुर्यशोहन्याच्छिशूनामन्नभक्षणम् ।। अष्टमी पौर्णमासी च अमावस्या चतुर्द्दशी । पञ्चएवं वदन्त्यार्य्यास्तथा संक्रमणं रवेः । (इति क्वचित्पुस्तके मूलम्)

अन्नप्राशनवत्कुर्यान्नवान्नफलभक्षणम् ॥६॥ (क)

अब नवान्न और नवफल भोजन कथित होता है। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, मघा, भरणी, आश्लेषा और आर्द्रा के अतिरिक्त नक्षत्रों में मंगल, और शनि के अतिरिक्त वार में शुक्लपक्ष में, अन्नप्राशनोक्त लग्नादि में नवान्न और नवफल भक्षण उचित है, किंतु हरिशयन में मृगनेत्रा में (कृष्णपक्ष) और (सूर्य से प्रवृत्त होने वाले) पौष और कार्तिक मास में नन्दा और त्रयोदश्यादि तिथि में नवान्नादि भक्षण उचित नहीं है॥६॥

अथ चूड़ाकरणम्

चूड़ा माघादिषट्के लघुचरमृदुभे मैत्रहीनेऽसशक्रे,
नानंशे सत्सु केन्द्रेष्वशुभगगनगैर्वृद्धिगैर्व्विष्णु बोधे ।
नो रिक्ताद्यष्टषष्ठचन्त्यतिथिषु न यमाराह युग्माब्दमासे
ऽनो जन्मर्क्षेन्दुमासे विधटकुजशशीनर्क्षलग्नेऽर्कशुद्धौ ॥७॥

चूड़ाकरण कथित होता है। माघ, फाल्गुन, चैत्र (क) वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में, पुष्य, अश्विनी, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, मृगशिरा, रेवती और ज्येष्ठानक्षत्र में अनंशभिन्न अर्थात् संक्रमण के अतिरिक्त दिन में, केन्द्र स्थान में शुभग्रह और तीसरे ग्यारहवें तथा छठे स्थान में पापग्रह के स्थित होने पर हरिशयन के अतिरिक्त काल में, रिक्ता, प्रतिपद, अष्टमी, षष्ठी और पूर्णिमा के अतिरिक्त तिथि में शुक्लपक्ष में शनि और मंगल के अतिरिक्त वार में युग्मवर्ष में युग्म मास में, जन्म नक्षत्र, जन्म चंद्र, और जन्ममास के अतिरिक्त तुला, मेष, वृश्चिक, कर्क और सिंह के अतिरिक्त लग्न में रवि शुद्ध होने पर चूडाकार्य करे॥७॥

(क) चैत्र मास में रविवार में चूड़ा कर्त्तव्य है।

नित्यक्षौरम्

चूडोदितर्क्षमुदयः क्षण एंव चैषा-
मिष्टौ बुधेन्दुदिवसौ क्षुरकर्मशुद्धौ ।
नेष्टो हरीज्यभवनोपगतोऽत्रसूर्य्यः
कालविशुद्धिरहितं त्वितरत्पुरावत् ।।८।।

नित्यक्षौर कथित होता है। चूड़ोदित नक्षत्रमें वा चूड़ोदित नक्षत्र के मुहूर्त्त में लग्न करके बुध अथवा सोमवार में, सौर (सूर्य से प्रवृत्त होनेवाले) भाद्र, पौष औ.र चैत्र के अतिरिक्त मास में कालाशुद्धि त्याग भिन्न चूडोक्त समस्त ही (समय) नित्यक्षौर कर्म में प्रशस्त होता है।।८।।

कर्णवेधः

नो जन्मेन्दुभमाससूर्यरविजक्ष्माजेषुसुप्ताच्युते,
शस्तेऽर्के लघु विष्णुयुग्ममृदुभस्वात्युत्तरादित्यभैः ।
सौम्यैस्त्र्यायत्रिकोणकण्टकगतैः पापैस्त्रिलाभारिगै-
रोजोऽब्दे श्रुतिवेध इज्यसितभे लग्ने च काले शुभे ।।९।।

अस्यार्थः अब कर्णवेध कथित होता है जन्म चंद्र जन्म नक्षत्र और जन्म मास के अतिरिक्त में, रवि, शनि, मंगल के अतिरिक्त वार में श्रीहरिशयन के अतिरिक्त काल में, रवि शुद्ध होने पर पुष्य, अश्विनी, हस्त, श्रवण, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, स्वाती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, और पुनर्वसु नक्षत्र में, लग्न के तीसरे, ग्यारहवें, नवें, पांचवें और केन्द्र स्थान में शुभ ग्रह होने पर और तीसरे, ग्यारहवें तथा छठे स्थान में पापग्रह के अवस्थित होने पर अयुग्म वर्ष में, धनु, मीन, वृष, और तुला लग्न में शुद्ध काल में कर्णवेध करावे।।९।।

विद्यारम्भः

लघुचरशिवमूलाधोमुखस्त्वाष्ट्रपौष्ण-
शशिषु च हरिबोधे शुक्रजीवार्कवारे ।
उदितवति च जीवे केन्द्र कोणेषुसौम्यै-
रपठनदिनवर्ज्जं पाठयेत्पंचमेऽब्दे ॥१०॥

अब विद्यारंभ कथित होता है। पुष्य, अश्विनी, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, आर्द्रा, मूल, आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद , चित्रा, रेवती, और मृगशिरा नक्षत्र में, श्रीहरि के जाग्रत समय में, शुक्र, बृहस्पति और रविवार में, बृहस्पति की उदित अवस्था में (काल शुद्ध होने पर) केन्द्र और त्रिकोण स्थान में, शुभग्रह होने पर अनध्याय दिन छोड़कर पांचवें वर्ष में बालक को विद्यारंभ करावे॥१०॥

अथोपनयम् ।

जीवार्केन्दूडुशुद्धौ हरिशयनबहिर्भास्करे चोत्तरस्थे
स्वाध्याये वेदवर्णाधिप इह शुभदे क्षौरभे नादितौ च ।
शुक्रार्केज्यर्क्षलग्ने रविमदनतिथिं प्रोज्झ्य षष्ठाष्टमेन्दुं
नो जीवास्तातिचारेऽर्क सितगुरुदिने कालशुद्धौ व्रतं स्यात् ॥

अब उपनयन कथित होता है बालक के गोचर में बृहस्पति, रवि, चन्द्र और तारा शुद्ध होने पर, श्रीहरिशयन के अतिरिक्त काल में, उत्तरायण में, स्वाध्याय दिन में, गोचर में, वेदाधिप और वर्णाधिप के शुभ होने में, पुनर्वसु नक्षत्र के अतिरिक्त चूड़ोदित नक्षत्र में वृष, तुला, सिंह, धनु, मीन लग्न में, सप्तमी और त्रयोदशी के अतिरिक्त तिथि में लग्न की अपेक्षा षष्ठ और अष्टमस्थ चन्द्र त्यागकर, बृहस्पति के अस्त और अतिचारादि द्वारा अशुद्ध काल न

होने पर, रवि, शुक्र और बृहस्पति वार में काल शुद्ध होने पर उपनयन प्रशस्त होता है।।११।।

समावर्त्तनम्

तृतीयलाभारिगतैरसौम्यैः केन्द्रत्रिकोणोपगतैः शुभैश्च ।
(क) चूडोदितर्क्षादि (ख) विलग्नयोगे,
मौञ्जीविमोक्षः शुभदो द्विजानाम् ।।१२।।

समावर्त्तन कथित होता है लग्न के तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थान में पापग्रहों के अवस्थित होने पर और लग्न के केन्द्र तथा त्रिकोण स्थान में शुभग्रह होने पर चूडोदित नक्षत्र तिथिवार योग और लग्नादि में ब्राह्मणों को समावर्त्तन (विद्या पाठ के अनंतर जो संस्कार किया जाता है) शुभदायक होता है।।१२।।

धनुर्विद्यारम्भः

अदितिगुरुयमार्कस्वातिपित्र्याग्निचित्रा,
ध्रुवहरिवसुमूलाश्वीन्दुभाग्यान्त्यभेषु ।
विशशिशनिबुधाहे विष्णुबोधे विपौषे,
सुसमयतिथियोगे चापविद्या प्रदानम् ।।१३।।

अव धनुर्विद्यारम्भ कहा जाता है। पुनर्वसु, पुष्य, भरणी हस्त, स्वाती, मघा, कृत्तिका, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, अश्विनी, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी और रेवती, नक्षत्र में शनि, सोम और बुध के अतिरिक्त वार में श्रीहरि के शयन भिन्नकाल में पौष और चैत्रमास के अतिरिक्त मास में काल शुद्ध होने पर रिक्ता के अतिरिक्त (शुभ) तिथि में और शुभयोगादि में धनुर्विद्या प्रदान

(क) त्रिकोणोपगतैश्च सौम्यैरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।
(ख) क्षौरोदितर्क्षादि । इति क्वचित पुस्तके ।

करनी चाहिये।।१३।।

नृपाभिषेकः

पुष्टैः शुक्रेन्दुजीवैर्ध्रुवलघुबलभिद्विष्णुमैत्रेन्दुपौष्णैः,
सल्लग्ने पाकजन्मोदयपतिषु विरन्ध्रारिगेन्दाव सौम्यैः ।
त्र्यायारिस्थे रथाष्टव्ययधनरहितैः सग्रहैः केन्द्रकोणे,
वीर्याढचे क्षत्रियेशे सुदिनतिथियुतेन्दौ नृपस्याभिषेकः ।।१४।।

नृपाभिषेक कथित होता है। शुक्र चन्द्र और बृहस्पति ग्रह स्फुटकिरण द्वारा उदित होने पर उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी, हस्त, ज्येष्ठा, श्रवण, अनुराधा, मृगशिरा और रेवती, नक्षत्र में शुभग्रह के क्षेत्र में लग्न करके तत्कालीन दशाधिपति जन्मराश्याधिपति और जन्मलग्नाधिपति ग्रह के शुभ होने पर तत्कालीन लग्न के सप्तम और अष्टम भिन्न स्थान में चन्द्र के अवस्थित होने पर तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थान में पापग्रह होने पर आठवें और बारहवें स्थान में शुभग्रहों के अवस्थित न होने पर क्षत्रियेश ग्रह (जिस जाति का अभिषेक होगा, उसी जाति का अधिपति) बलवान् होकर केन्द्र में स्थित होने पर शुभग्रह के वार में शुभ (रिक्ता के अतिरिक्त) तिथि में शुभयोग और गोचर में चन्द्र शुद्ध होने पर राज्याभिषेक करना चाहिये।।१४।।

नववस्त्रपरिधानम्

ब्रह्मानुराधवसुपुष्यविशाखहस्ताचित्रोत्तराश्विपवनादितिरेवतीषु
जन्मर्क्षजीवबुधशुक्रदिनोत्सवादौ धार्यं नवं वसनमीश्वर विप्रतुष्टौ

अभिनव वस्त्र परिधान कथित होता है। रोहिणी अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, विशाखा, हस्त, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, स्वाती, पुनर्वसु, रेवती और

जन्मनक्षत्र में बृहस्पति, बुध, शुक्र, और जन्मवार में नूतन वस्त्र पहिरें और विवाहादि उत्सवकार्य में तथा ईश्वर और ब्राह्मण की तुष्टि के निमित्त अनुक्तवार और अनुक्त नक्षत्रादि में भी नवीन वस्त्र पहर सकता हैं।।१५।।

अलङ्कारपरिधानम्

पुष्यार्कादितिपित्र्यमित्रशशभृद्दित्तध्रुवत्वष्टृषु,
मुक्तादन्तसुवर्ण विद्रममणीन्दध्याद्विबुद्धे हरौ ।
पुष्टेज्ये समये शुभे ध्रुवसुरा चार्यादितीशेऽङ्गना,
नो रत्नं बिभृयात्प्रवालकमणीन्शंखं हिता स्वामिनः ।।१६।।

अनंतर रत्नादिअलंकार परिधान कथित होता है। पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, मघा, अनुराधा, मृगशिरा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद , रोहिणी और चित्रा नक्षत्र में, श्रीहरि के जाग्रत् काल में, बृहस्पति की उदितावस्था में (काल शुद्ध होने पर) शुभग्रह के वार में चन्द्र शुद्ध होने पर मुक्ता, हस्तिदन्तनिर्मित भूषण, सुवर्ण और विद्रुममणि इत्यादि स्त्री और पुरुष दोनों ही धारण कर सकते हैं। किंतु पति का हित चाहने वाली स्त्रियां उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद , रोहिणी, पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र में रत्न, प्रवाल, मणि और शंख धारण न करें।।१६।।

खड्गादिधारणम्

मूलेन्दुपूर्वात्रययाम्यपित्र्यशक्राग्निसर्पानलशूलिनश्च ।
खड्गादिसंधारणमेषु कुर्य्यात्तिथौ विलग्ने च शुभे शुभाहे ।।

खड्गादि धारण कहा जाता है। मूल, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद , भरणी, मघा, विशाखा, आश्लेषा, कृत्तिका और आर्द्रा नक्षत्र में शुभ तिथि में शुभलग्न और शुभवारादि में खड्गादि धारण करे।।१७।।

नवशय्याद्युपभोगः

मैत्रेन्दुपोष्णपितृभादितिवाजिचित्र-
हस्तोत्तरात्रयहरीज्य विधातृभानि ।
एतेष्वभीष्टशयनासनपादुकादि,
सम्भोगकार्यं मुदितं मुनिभिः शुभाहे ॥१८॥

अब नूतन शय्यादि का प्रथम उपभोग कथित होता है। अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, मघा, पुनर्वसु, अश्विनी, चित्रा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद , श्रवण, पुष्य और रोहिणी नक्षत्र में शुभवार, और शुभतिथ्यादि में नूतनशय्या, नवासन, और नूतनपादुकादि प्रथम उपभोग करे॥१८॥

छेदनं संग्रहश्चैव काष्ठादीनां न कारयेत् ।
श्रवणादौ बुधः षट्के न गच्छेद्दक्षिणां दिशम् ॥१९॥

गृहादि के लिये तृणकाष्ठादि का छेदन संचय निषेध कथित होता है। श्रवणादि छः नक्षत्रों में बुद्धिमान् मनुष्य गृहनिर्माण काष्ठादि का छेदन वा ग्रहण और दृढबन्धन न करे उक्त छः नक्षत्रों में दक्षिण दिशा के जाने का भी निषेध है॥१९॥

क्र[2]यविक्रयनक्षत्राणि

यमाहिशक्राग्निहुताशपूर्वा नेष्ठा क्रये विक्रयणे प्रशस्ताः ।
पौष्णाश्विचित्राशतविष्णुवाताःशस्ताः क्रये विक्रयणे निषिद्धाः

क्रय विक्रय नक्षत्र कहते हैं। भरणी, आश्लेषा, विशाखा कृत्तिका,

---

१ न हरेत्तृणकाष्ठानि न कुर्य्याद्दृढबन्धनम् । अग्निदाहो भयं शोको राजपीडा धनक्षयः । संग्रहस्तृणकाष्ठानां कृते द्रविणपञ्चके । इति क्वचित्पुस्तके मूलम्।
२ पौष्णाश्विनीपवनवारुणवासुदेवचित्रादिति श्रवणहस्तसुरेज्यभेषु वारे च जीवशशिसूर्यसुतेन्दुजानामारोहणं गजतुरङ्गरथेषु शस्तम् । इति गजाद्या-रोहणं पुस्तकान्तरे मूलम् ।

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में द्रव्यादि क्रय नहीं कर सकता है। किंतु विक्रय कर सकता है। और रेवती, अश्विनी, चित्रा, शतभिषा, श्रवण और स्वाती नक्षत्र में द्रव्यादि क्रय करे। किंतु विक्रय निषिद्ध है।।२०।।

धनप्रयोगनिषेधः

आजं यमद्वन्द्वमहित्रयञ्च शक्रत्रयं वायुयुगं महेशम् ।
कार्यो न चैतेषु धनप्रयोगो मृदौ गणे ग्राह्यमृणं न देयम् ।।२१।।

ऋणदान और ग्रहण का निषेध कथित होता है। पूर्वाभाद्रपद , भरणी, कृत्तिका, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा,स्वाती, विशाखा और आर्द्रा इन नक्षत्रों में ऋणदान और ऋण ग्रहण न करे। चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा और रेवती इन नक्षत्र में ऋण ग्रहण करे। किंतु ऋणदान निषिद्ध है। इनके अतिरिक्त नक्षत्र में ऋणदान कर सकता है।।२१।।

अश्विन्यादिनक्षत्राणां तारकसंख्याकथनम्

शिखिगुणरसेन्द्रियानलशशिविषयगुणर्त्तुपंच यमपक्षाः ।
विषयैकचन्द्र (क) युग्मार्णवाग्नि रुद्राश्विवसुदहनाः ।।२२।।
भूतशतपक्षवसवो द्वात्रिंशच्चेति तारकामानम् ।
क्रमशोऽश्विन्यादीनां कालस्ताराप्रमाणेन ।।२३।।

तारा प्रमाण द्वारा विवाहादि कार्य का शुभाशुभ फल जानने के लिये अश्विन्यादि नक्षत्रों की तारका संख्या कही जाती है। तीन, तीन,छः, पांच, तीन, एक, पांच, तीन, छः,पांच, दो, दो, पांच, एक, एक, दो, चार, तीन, ग्यारह, दो, आठ, तीन, पांच, एकशत दो, आठ और बत्तीस अश्विनी इत्यादि नक्षत्रों की यथाक्रम से उक्त सब

(क) विषयैकचन्दभूतार्णवाग्नीत्यादि पुस्तकान्तरे पाठान्तरमिति ।

तार का संख्या शुभाशुभ होती है, अर्थात् अश्विनी की तीन, भरणी की तीन, कृत्तिका की छ, रोहिणी की पांच इत्यादि॥२२–२३॥

विवाहे तन्नक्षत्रतारकसंख्या परिमितवत्सरैर्व्वैवाहिक नक्षत्रोक्तशुभाशुभकथनं रोगोत्पत्तिनक्षत्र परिमितदिनैरोगोपशमनकथनञ्च

नक्षत्रजमुद्वाहे फलमब्दैस्तारकमितैः सदसत् ।
दिवसैर्ज्वरस्य नाशो व्याधेरन्यस्य वा वाच्यः ॥२४॥

विवाह नक्षत्र में तारक संख्या परिमित वत्सर द्वारा वैवाहिक नक्षत्रोक्त शुभाशुभ फल और रोगोत्पत्ति नक्षत्र में तारक संख्या परिमित दिन द्वारा रोगोपशम कथित होता है। जिस नक्षत्र में विवाह होगा, उस नक्षत्र का शुभाशुभ जो फल उक्त है, वही पूर्वोक्त तारक संख्या परिमित वर्ष में होता है और ज्वरादिरोग जिस नक्षत्र में उत्पन्न होता है। वह भी उसी नक्षत्र के तारक संख्यान्वित दिन भोगकर शमित होता है।२४॥

मरणप्रदरोगजन्मनक्षत्रकथनम्

आर्द्राश्लेषास्वातीज्येष्ठासु च यस्य रोगजन्म स्यात् ।
धन्वन्तरिणापि चिकित्सितस्यासवो न स्युः ॥२५॥ (क)

आर्द्रादि नक्षत्र में रोग होने पर मृत्यु कथित होती है। आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाती और ज्येष्ठानक्षत्र में जिस मनुष्य को रोग उत्पन्न हो, उसकी चिकित्सा यदि धन्वतरि करें, तो भी उसकी जीवन रक्षा नहीं हो सकती॥२५॥

(क) मूलामघार्द्राश्लेषाभरणी वसुदेवभेषु नरः । गरुड़प्रियोऽपि दृष्टौ न प्राणिति दन्दशूकेन । इति सर्पक्षतानां नक्षत्रवशेन मरणकथनम् । क्वचित् पुस्तके मूलम् ।२५॥

यः कृत्तिकामूलमघाविशाखासर्पान्तकार्द्रासु भुजंगदष्टः।
स वैनतेयेन सुरक्षितोऽपि प्राप्नोति मृत्योर्व्वदनं मनुष्यः।(क)

कृत्तिका, मूल, मघा, विशाखा, आश्लेषा, भरणी, और आर्द्रा, जिस मनुष्य को सर्प डसता है। वह, गरुड़ के द्वारा रक्षित होने पर भी यम के मुख में जाता है।।२६।।

मरणप्रदरोगापवादः

यद्यंत्र चन्द्रमास्तस्य गोचरे च शुभप्रदः।
तदा नूनंभवेन्मृत्युः सुधासंसिक्तदेहिनः ।।२७।। (ग)

मरण प्रद नक्षत्र में रोग होने पर उसका अपवाद कथित होता है। जिस व्यक्ति के रोगोत्पत्ति समय में चन्द्रग्रह गोचर में शुभ हो, उसका देह सुधासिक्त होने पर भी प्राण नष्ट होगा, किंतु चन्द्र गोचर में शुभफल प्रदान करने से संशय होता है।।२७।।

प्रश्नलग्नवशेन रोगोपशमनानुपशमनज्ञानम्

चरराशौ विलग्नस्थे द्विदेहार्द्धे च पश्चिमे।
रोगस्योपशमः प्रश्ने विपर्य्यासे विपर्य्ययः ।।२८।।

प्रश्न लग्न द्वारा उपशम और अनुपशम कथित होता है। यदि चरराशि वा द्व्यात्मक राशि का शेषार्द्ध प्रश्न लग्न हो, तो रोगी मनुष्य के रोग का उपशम जानना चाहिये और राशि तथा द्व्यात्मक राशि का पूर्वार्द्ध प्रश्नलग्न होने पर वह मनुष्य चिररोगी होता है।।२८।।

आर्द्रादिषु रोगे सति मृत्युमाह । आर्द्रेति आर्द्रादिषु यस्य रोगजन्मस्यात् तस्यासवः प्राणा न स्युरित्यर्थः । २५।।

आर्द्रा इति। एषु नक्षत्रेषु देहिनो यस्य रोगोत्पत्तिः स्यात् देववैद्येन चिकित्सितस्यापि तस्य प्राणा न स्युः ।।२५।।

(क) श्लोकोऽयं मूले न दृश्यते टीकाकृद्भिश्च नोद्धृतः ।

(ग) इति पुस्तकान्तरे मूलम् ।

प्रश्नलग्ने रोगोपशमयोगकथनम्

शुभग्रहाः सौम्यनिरीक्षिताश्च विलग्नसप्ताष्टमपंचमस्थाः ।
त्रिषड्दशा येषु निशाकरः स्याच्छुभं वदेद्रोगनिपीडितानाम्।।

प्रश्न द्वारा रोगोपशम कथित होता है। प्रश्नलग्न में अथवा प्रश्नलग्न के सातवें, आठवें और पांचवें स्थान में शुभग्रह अवस्थित होकर वह यदि अन्य शुभग्रह द्वारा अवलोकित हो, तो रोगी मनुष्य की कुशल समझनी चाहिये। यदि प्रश्न लग्न के तीसरे, छठे, दशवें अथवा ग्यारहवें स्थान में चन्द्रमा स्थित हो, तो भी रोगी मनुष्य का शुभ जाने।।२९।।

प्रश्ने रोगिणां मरणयोगद्वयकथनम्

पापर्क्षे प्रश्नलग्ने तु पापसंयुतवीक्षिते ।
तथैव चाष्टमे स्थाने रोगिणां मरणं वदेत् ।।३०।।

प्रश्न लग्न द्वारा रोगी मनुष्य की मृत्यु कथित होती है। यदि प्रश्नलग्न पापग्रह का क्षेत्र हो और उसमें पापग्रह अवस्थान करे, अथवा प्रश्नलग्न पापग्रह के द्वारा अवलोकित हो, तो रोगी की मृत्यु जाननी चाहिये। प्रश्नलग्न का आठवां स्थान पापग्रह का क्षेत्र अथवा पापग्रह युक्त किम्वा पापग्रह से अवलोकित होने पर रोगी की मृत्यु होती है।।३०।।

परदेशस्थस्य रोगज्ञानं मरणज्ञानञ्च

मन्दः पापसमेतो लग्नान्नवमः शुभैर्युतदृष्टः ।
रोगार्त्तः परदेशे चाष्टमगो मृत्युकर एव ।।३१।।

विदेश स्थित मनुष्य का रोग ज्ञान और मृत्यु ज्ञान कथित होता है। यदि पापग्रह युक्त शनि प्रश्न लग्न के नवमस्थ होकर शुभग्रह युक्त वा शुभग्रह द्वारा अवलोकित न हो, तो विदेशीय मनुष्य को रोग पीडित जानना चाहिये। और यदि पापग्रह युक्त शनिग्रह यदि प्रश्न लग्न में अष्टमस्थ होकर शुभग्रह युक्त वा शुभग्रह कर्तृक अवलोकित

न हो तो विदेशीय मनुष्य का रोग पीडित होकर प्राण परित्याग करना जाने।।३१।।

औषधकरणम्

द्व्यङ्गोदये गुरुबुधेन्दुसितेषु तेषां,
वारे रवेश्च सुतिथौ सुविधौ सुयोगे ।
भेषूग्रपन्नगविशाखशिवेतरेषु ,
जन्मर्क्षविष्टिरहितेष्वगदः शुभाय ।।३२।।

अब औषधकरण कथित होता है। द्वयात्मक अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु और मीन लग्न में बृहस्पति, बुध, चन्द्र और शुक्रग्रह के अवस्थित होने पर शुभग्रह के वार और रविवार में चन्द्र शुद्धि होने से शुभतिथि और शुभयोग में पूर्वाफाल्गुनी,पूर्वाषाढ़ा,पूर्वाभाद्रपद, मघा, भरणी, आश्लेषा, विशाखा और आर्द्रा के अतिरिक्त नक्षत्र में जन्म नक्षत्र के अतिरिक्त और विष्टि के अतिरिक्त करण में औषध करण प्रशस्त है अर्थात् वह औषधी रोगी के आरोग्य का निमित्त होती है।।३२।।

औषधभक्षणम्

पौष्णाश्विनीद्रविणशक्रसमीरपुष्य,
हस्तादितीन्दु हरिमूलहुता शमित्रैः ।
चित्रान्वितैर्भृगुबुधेन्दुरवीज्यवारे ,
भैषज्यपानमचिरादपहन्ति रोगान् ।।३३।।

औषध भक्षण कहते हैं। रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, स्वाती, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, मृगशिरा श्रवण, मूल, कृत्तिका (मतांतर में विशाखा) अनुराधा और चित्रा नक्षत्र में शुक्र, बुध, सोम, रवि, और बृहस्पतिवार में रोगी मनुष्य प्रथम औषधि सेवन करने से तत्काल सब रोग नष्ट होते हैं।।३३।।

बस्तिविरेचनवधे शुद्धिः

चित्रायुगे विधुयुगे मित्रयुगे लघुषु वारुणाविष्ण्वोः ।
बस्तिविरेचनवेधाः शुभदिनतिथिचन्द्रलग्नेषु ॥३४॥

बस्ति विरेचनादि कथित होता है। चित्रा, स्वाती, रोहिणी, मृगशिरा, अनुराधा, ज्येष्ठा, पुष्य, अश्विनी, हस्त, शतभिषा, और श्रवण नक्षत्र में शुभग्रह के वार में शुभतिथि में, चन्द्र शुद्ध होने पर शुभलग्न में बस्तिविरेचनादि अर्थात् नाभि के नीचे व्यथा होने पर मण्डादि का प्रलेपदान और अन्तर्धौत और व्रणादि वेंध करे।। ३४।।

रोगिस्नानम्

व्यादित्येषु चरेषु शक्रदिनकृत्पुष्योग्रचन्द्रेषु च,
क्रूराहे व्यतिपातविष्टिदिवसेष्विन्दावशस्ते तथा ।
केन्द्रस्थेष्वशुभेष्व कामतिथिषु स्नानं गदोन्मुक्तितः शस्तं,
तत्र न शोभना विधिभुजंगर्क्षेन्दु सद्वासराः ॥३५॥
दशमी नवमी चैव प्रतिपच्च त्रयोदशी ।
तृतीया च विशेषेण स्नाने चैता विवर्जयेत् ॥३६॥

आरोग्य स्नान कथित होता है। पुनर्वसु वर्जित चरण में, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषानक्षत्र में, अथवा ज्येष्ठा नक्षत्र में किम्बा हस्त, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, मघा, भरणी और मृगशिरा नक्षत्र में, रवि मंगल और शनिवार में व्यतिपातयोग में विष्टिकरण में, चन्द्र के गोचर में अशुद्ध होने पर, लग्न के केन्द्र स्थान में अशुभग्रह के अवस्थान करने पर रिक्तातिथि में आरोग्य स्नान उचित है। किंतु रोहिणी, आश्लेषा नक्षत्र में और शुभग्रह के वार में कभी आरोग्य स्नान प्रशस्त नहीं है। दशमी, नवमी, प्रतिपद, त्रयोदशी और तृतीया तिथि आरोग्य स्नान में त्याग देनी चाहिये।। ३५-३६।।

नृपादिदर्शनम्

ध्रुवमृदुलघुवर्गे वासवे विष्णुदेवे,
विकुजरविजवारे केन्द्रकोणेषु सत्सु ।
द्वितनुवृषभपंचास्योदये चन्द्रशुद्धौ,
सुतिथिकरणयोगे दर्शनं भूमिपानाम् ।।३७।।

राज दर्शन कथित होता है। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, पुष्य, अश्विनी, हस्त, ज्येष्ठा और श्रवण नक्षत्र में मंगल और शनि के अतिरिक्त वार में, केन्द्र और त्रिकोण स्थान में शुभग्रह होने पर द्वयात्मक वृष और सिंह लग्न में चन्द्र के शुद्ध होने पर शुभतिथि शुभकरण और शुभयोग में राजदर्शन शुभ होता है।।३७।।

नाट्यारम्भः ।

अनुराधा धनिष्ठा च पुष्या हस्तत्रयं तथा । ज्येष्ठा वारुण पौष्णे च नाट्यारम्भे शुभो गणः ।।३८।।

नाट्यारंभ विहित नक्षत्र कथित होते हैं। अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, शतभिषा और रेवती नक्षत्र में नाट्यारम्भ (नाटक का आरम्भ) प्रशस्त होता है।।३८।।

हलप्रवाहः

पूर्वाग्नियाम्यफणिचित्रशिवान्यभेषु,
रिक्ताष्टमीविगत चन्द्र तिथीन् विहाय ।
द्व्यंगालिगोसमुदये विकुजार्किवारे ,
शस्तेन्दुयोगकरणेषु हलप्रवाहः ।।३९।।

अब हलारम्भ कथित होता है। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका, भरणी, आश्लेषा, चित्रा और आर्द्रा के अतिरिक्त नक्षत्र में रिक्ता, अष्टमी और अमावस्या के अतिरिक्त

तिथि में द्व्यात्मक, वृश्चिक और वृष लग्न में, मंगल और शनि के अतिरिक्त वार में, चन्द्र शुद्ध होने पर शुभयोग और शुभ करण में हल प्रवाह करना चाहिये।।३९।।

बीजवपनम्

हलप्रवाहवद्बीजवपनस्य विधिः स्मृतः ।
चित्रायाश्च शुभे केन्द्रस्थिरर्क्षे मनुजोदये ।।४०।।

बीजवपन कथित होता है। हलप्रवाहोदित नक्षत्रों में और चित्रा नक्षत्र में लग्न के केन्द्र स्थान में शुभग्रह होने पर वृष, सिंह, वृश्चिक, और कुंभ लग्न स्वीय जन्म लग्न एवं मिथुन, तुला, कन्या और धन का पूर्वार्द्ध इन सब लग्नों में बीज बोना श्रेष्ठ होता है।।४०।।

मेधिकरणम्

वंशोदुम्बरनीपानां शाकोटबदरस्य च ।
शाल्मलेर्मूषलश्चैव मेधिं कुर्य्याद्विचक्षणः ।।४१।।

मेधिकरण अर्थात् धान्य मर्दन के स्थान में पशुओं को बांधने के लिये खूंटा गाड़ना कथित होता है। बांस, गूलर, कदम्ब, शेओरा, बेर और शाल्मली (सैमल) काष्ठ के मूषल द्वारा मेधि करे।।४१।।

धान्यच्छेदत्तम्

याम्याजपादऽहिधनानलतोयशक्र-,
चित्रोत्तरोडुषु कुजार्कजवा रवर्जम् ।
शस्तेन्दुयोगकरणेषु तिथावरिक्ते,
धान्यच्छिदिं स्थिर नरस्वमृगोदयेषु ।।४२।।

धान्य काटना कहा जाता है। भरणी, पूर्वाभाद्रपद, आश्लेषा, धनिष्ठा, कृत्तिका, पूर्वाषाढ़ा, ज्येष्ठा, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में मंगल और शनि के अति रिक्त वार में शुभयोग और शुभ करण में रिक्ता के अतिरिक्त तिथि

में स्थिर, द्विपद, स्वीय जन्म लग्न और मकर लग्न में धान्य काटना श्रेष्ठ होता है।।४२।।

धान्यादिसंस्थापनम्

याम्याग्निरुद्राहिविशाखपूर्वमहेन्द्रपित्रेतरभैः शुभाहे ।
धान्यादि संस्थापनमेव कुर्य्यान्मृगस्थिरद्व्यंगगृहोदयेषु।४३।।

धान्यादि संस्थापन कथित होता है। भरणी, कृत्तिका, आश्लेषा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, ज्येष्ठा और मघा के अतिरिक्त नक्षत्र में, शुभग्रह के वार में, मकर, स्थिर और द्व्यात्मक लग्न में धान्य संस्थापन करना चाहिये।।४३।।

धान्यादिवृद्धिकथनम्

श्रवणात्रयविशाखाध्रुवपौष्णपुनर्वसूनि पुष्या च ।
अश्विन्यथ च ज्येष्ठा धनधान्यविवर्द्धने कथिता ।।४४।।

धान्यादि को वृद्धिप्रयोग विषय में नक्षत्र कथित होते हैं। श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य अश्विनी और ज्येष्ठा नक्षत्र धन धान्य के वृद्धि विषय में प्रशस्त होता है।।४४।।

धान्यमूल्यज्ञानम्

हस्तपूरोवरं मूल्यं पक्षादौ लक्षयेद्बुधः ।
उत्कमूरेसमं विद्याच्छेषे धान्यमधः क्रयम् ।।४५।।

अब धान्यादि का मूल्य ज्ञान कथित होता है। हस्त, शतभिषा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद रोहिणी नक्षत्र यदि प्रतिपदारम्भ काल में हों, तो धान्यादि का मूल्य अधिक होगा। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, कृत्तिका, मूल अथवा रेवती नक्षत्र यदि प्रतिपदारम्भ काल में हों, तो धान्यादि का मूल्य समान भाव से रहेगा और उक्त सब नक्षत्रों के पर पर नक्षत्र यदि

प्रतिपदारम्भ काल में हों, तो धान्यादि का मूल्य अल्प दिखाई देगा।।४५।।

गवां यात्रादिकम्

दर्शाष्टमीभूततिथिप्रजेशपूर्वोत्तराकेशवयाम्यचित्राः ।
क्रूराह विष्टिव्यतिपातयोगा नेष्टा गवां चालनविक्रयादौ ।।

गोयात्रादि का निषेध कथित होता है। अमावस्या, अष्टमी और चतुर्दशी तिथि में रोहिणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, श्रवण, भरणी और चित्रा नक्षत्र में शनि, रवि और मंगल वार में विष्टि भद्रातिथि में और व्यतीपातयोग में गोचालन और गोविक्रयादि करने से शुभ नहीं होता।।४६।।

प्रश्नात्सद्योवृष्टिज्ञानम्

वर्षप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्य चन्द्रो,
लग्नं जातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे ।
सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टो,ऽल्पमम्भः
प्रावृट्काले सृजति न चिराच्चन्द्रवद्भार्गवोऽपि ।।४७।।

प्रश्न लग्न द्वारा वृष्टिज्ञान कथित होता है। कर्कट, मकर वा मीन यदि प्रश्न लग्न हो, और उसमें चन्द्रग्रह अवस्थित हो अथवा चन्द्र यदि शुक्लपक्ष में लग्न के केन्द्रस्थान में रहकर शुभग्रह कर्त्तृक अवलोकित हो, तो बहुत जल की वृष्टि होगी और चन्द्र यदि पापग्रह कर्त्तृक अवलोकित हो, तो अल्प (थोड़े) जल की वृष्टि होती है। वर्षा के समय कर्कट, मकर, अथवा मीन लग्न में यदि शुक्रग्रह अवस्थित हो या शुक्ल पक्ष में शुक्रलग्न के केन्द्र स्थान में रहकर शुभग्रह कर्त्तृक अवलोकित हो तो बहुत वृष्टि होगी, पापग्रह कर्त्तृक शुक्र के अवलोकित होने से अल्प वृष्टि होती है।।४७।।

ग्रहसंस्थाने वृष्टिज्ञानम्

प्रावृषि शीतकरो भृगुपुत्रात्सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः ।
सूर्य्यसु तान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगोऽपि जलागमनाय ।।४८।।

वर्षा समय में ग्रह संस्थानवशतः वृष्टिज्ञान कथित होता है। वर्षाकाल में यदि चन्द्र शुक्रग्रह से सप्तम राशिगत होकर शुभग्रह कर्त्तृक अवलोकित हो तो उस दिन वर्षा होगी और शनि से नवम पंचम वा सप्तमगत चन्द्र शुभग्रह कर्त्तृक अवलोकित होने पर भी वर्षा काल में उस दिन वष्टि होती है।।४८।।

कार्त्तिके वातादिज्ञानम्

शनिभौमदिनेशानां वारे स्वातीगते रवौ ।
नष्टचन्द्रे ध्रुवं वातो भवेद्वा वृष्टिरद्भुता ।।४९।।

कार्तिक मास में वातादि (पवन आदि) ज्ञान कथित होता है। शनि, मंगल अथवा रविवार में यदि स्वाती नक्षत्रगत रवि होकर अमावस्या तिथि हो, तो निःसंदेह अत्यंत झड़ और वृष्टि होती है।।४९।।

गजवाजिक्रिया

स्ववरुणगुरुपार्श्वास्येषु मौमार्कवारे,
सुतिथिकरणताराचन्द्रयो गोदयेषु ।
शुभमिभहयकार्यं चाथसुप्ते मुरारौ,
गुरुगृहगतभानौ कल्पयेन्नेभदन्तान् ।।५०।।

हाथी और घोड़े की खुर छेदनादि (नाखून काटना) क्रिया कही जाती है। धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, अनुराधा ज्येष्ठा, मृगशिरा, हस्त, अश्विनी चित्रा, स्वाती, रेवती, और पुनर्वसु, नक्षत्र में मंगल और शनिवार में एवं शुभतिथि शुभकरण, शुभतारा, शुभचन्द्र, शुभयोग और शुभलग्न में हाथी और घोडे की जिह्वा मार्जन (मुख

साफ करना) रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना) खुरछेदनादि चिकित्सा और प्रथम दमन प्रशस्त है, किंतु उक्त सब योग होने पर भी श्रीहरि के शयनकाल में अथवा सौर चैत्र वा सौर पौषमास में हाथी के दंतमार्जन और भूषादिक्रिया उचित नहीं होती।।५०।।

नवदोलाद्यारोहणम् ।

उग्रेन्दुमूलाहिशिवाग्निवर्ज्जं शस्तेन्दुताराततिथिलग्नयोगे ।
विष्टिमापुत्रयमाहवर्ज्जं दोलादिकारोहणमाद्यमिष्टम्।।५१।।

नूतन दोलादि में (पालने में आरोहण कराना) में कथित होता है। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, मघा, भरणी, मृगशिरा, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा और कृत्तिका के अतिरिक्त नक्षत्र में, चन्द्र तारा शुद्ध होने पर, शुभ तिथि, शुभलग्न और शुभयोग में, विष्टिभद्रा के अतिरिक्त तिथि में, एवं मंगल और शनि के अतिरिक्तवार में नूतन दोलादि में प्रथम चढ़ना शुभ होता है।।५१।।

पुष्करिण्यारम्भः

पुष्यामैत्रकरोत्तरस्ववरुणब्रह्माम्बुपित्र्येन्दुभैः ।
शस्तेऽर्केशुभवारयोगतिथिषु क्रूरेष्ववीर्येषु च ।
पुष्टेन्दौजलराशिगे दशमगे शुक्रे शुभांशोदये ।
प्रारंभः सलिलाशयस्य शुभदो जीवेन्दु शुक्रोदये ।।५२।।

अब पुष्करिणी आरंभ कथित होता है। पुष्य अनुराधा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी, पूर्वाषाढ़ा मघा और मृगशिरा नक्षत्र में, गोचर में रवि शुद्ध होने पर शुभग्रह के वार में शुभयोग और शुभ तिथि में क्रूरग्रह गणहीन पल होने पर पुष्ट (संपूर्ण) चन्द्र जलराशि में (कर्क, मीन, कुंभ, अथवा मकर के शेषार्द्ध में) अवस्थित होने पर दशम स्थान में

शुक्रग्रह अवस्थित होने पर शुभग्रह के नवांश में धनु, मीन, कर्क, वृष और तुला लग्न में जलाशय आरम्भ शुभदायक होता है।।५२।।

वृक्षादिरोपणम्

वारुणमूलविशाखासौम्यहस्तपुष्यपौष्णेषु ।
तरुगुल्मलतादीनामारामे रोपणं शुभम् ।।५३।।

वृक्षादिरोपण कथित होता है। शतभिषा, मूल, विशाखा, मृगशिरा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, हस्त, पुष्य और रेवती, नक्षत्र में आराम (उपवन) में वृक्ष गुल्म लतादि का आरोपण प्रशस्त है।।५३।।

देवताघटनम्

ध्रुवलघुमृदुवर्गे वारुणे विष्णुदेवे,
मरुददितिधनिष्ठे शोभने वासरे च ।
त्रिदशमदनजन्मैकादशे शीतरश्मौ,
विबुधकृतिरभीष्टा नाडिनक्षत्रहीने ।।५४।।

देवता घटन कथित होता है। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, शतभिषा, श्रवण, स्वाती, पुनर्वसु और धनिष्ठा, नक्षत्र में शुभग्रह के वार में गोचर में चन्द्र के तृतीय, दशम, सप्तम, जन्मस्थ अथवा एकादशस्थ होने पर नाड़ी नक्षत्रहीन दिन में देवता घटन प्रशस्त होता है।।५४।।

सामान्य देवप्रतिष्ठा

शस्तेन्दौ माघषट्के शुभदिवसतिथौ गोगुरुज्ञर्थलग्ने,
वित्तद्वन्द्वाहियुग्मादितिहयभरणीयुग्विशाखान्यभेषु ।
क्षीणं षष्ठाष्टमेन्दुं हरिशयनमसद्युक्त लग्नञ्च हित्वा,
केन्द्रे जीवे च शुक्रे त्रिभवरिपु ग्रहे सत्सु देवप्रतिष्ठा ।।५५।।

सामान्य देवता की प्रतिष्ठा कथित होती है। चन्द्रग्रह गोचर में शुद्ध होने पर माघादि छः मास में, शुभग्रह के वार में शुभतिथि में, वृष, धनु, मीन, मिथुन, और कन्या लग्न में धनिष्ठा, शतभिषा, आश्लेषा, मघा, पुनर्वसु, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका और विशाखा, इन सब नक्षत्रों के अतिरिक्त नक्षत्र में क्षीण चन्द्र और लग्न के षष्ठ तथा अष्टम चन्द्र के अतिरिक्त हरिशयन और पापग्रह युक्त लग्न को परित्याग करके लग्न के केन्द्र स्थान में बृहस्पति और शुक्र अवस्थित होने पर तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थान में पापग्रह होने पर देवता की प्रतिष्ठा करे।।५५।।

हरिप्रतिष्ठा

प्राजेशवासवकरादितिभाश्विनीषु
पौष्णामरेज्यशशिभेषु तथोत्तरासु ।
कर्त्तुः शुभे शशिनि केन्द्रगते च जीवे,
कार्या हरेः शुभ तिथौ विधिवत् प्रतिष्ठा ।।५६।।

विष्णु प्रतिष्ठा कथित होती है। रोहिणी, ज्येष्ठा, हस्त, पुनर्वसु, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपद, नक्षत्र में कर्त्ता के गोचर में चन्द्र शुभ होने पर बृहस्पति के केन्द्र में स्थित होने पर शुभ तिथि में यथाविधि विष्णु की प्रतिष्ठा करे।।५६।।

हरिप्रतिष्ठायां विशेषतिथिकथनम्

द्वादश्येकादशी राका शुक्ले कृष्णे च पञ्चमी ।
अष्टमी च विशेषेण प्रतिष्ठायां हरः शुभाः ।।५७।।

विष्णु की प्रतिष्ठा में तिथि विशेष कथित होती है। द्वादशी, एकादशी, पूर्णिमा, दोनों पक्ष की पंचमी और अष्टमी, यह सब तिथि विष्णु की प्रतिष्ठा में शुभ होती हैं।।५७।।

महादेवप्रतिष्ठा

पुष्पाश्विशक्रभगदैवतवासवेषु,
साम्यानिलेश मघ रोहिणिमूल हस्ते ।
पौष्णानुराधहरिभेषु पुनर्व्वसौ च,
कार्याभिषेकतरुभूतपतिप्रतिष्ठा ।।५८।।

महादेव प्रतिष्ठा और वृक्षादि प्रतिष्ठा कथित होती है। पुष्य, अश्विनी, ज्येष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, धनिष्ठा, मृगशिरा, स्वाती, आर्द्रा, मघा, रोहिणी, मूल, हस्त, रेवती, अनुराधा, श्रवण और पुनर्वसु नक्षत्र में अभिषेक, वृक्षादि प्रतिष्ठा और शिव प्रतिष्ठा करनी चाहिये।।५८।।

दीक्षाग्रहणम्

ध्रुवमृदुनक्षत्रगणे रविशुभवारे सत्तिथौ दीक्षा ।
स्थिरलग्ने शुभचन्द्रे केन्द्रे कोणे शुभे गुरौ धर्म्मे ।।५९।।

अब दीक्षा ग्रहण कहते हैं। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा और रेवती नक्षत्र में, रवि, सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवार में शुभतिथि में, स्थिर लग्न में, चन्द्र शुद्ध होने पर केंद्र और त्रिकोण स्थान में शुभग्रह होने पर और बृहस्पति के नवमस्थ होने पर दीक्षा ग्रहण करे।।५९।।

परीक्षाविधिः

नो शुक्रास्तेऽष्टमार्के गुरुसहितरवौ जन्ममासेऽष्टमेन्दौ,
विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ
नाडीनक्षत्रहीने गुरुरविरजनीनाथताराविशुद्धौ,
प्रातः कार्या परीक्षा द्वितनुचरगृहांशोदये शस्तलग्ने ।।६०।।

परीक्षा विधि कही जाती है। शुक्रग्रह के अस्तगत न होने पर (शुद्धकाल में) रवि गोचर में अष्टमराशि में अवस्थित न होने पर

और गुर्वादित्य योग, जन्ममास, गोचर में अष्टंमचन्द्र विष्टि भद्रा तिथि मलमास, मंगल और शनिवार, जन्मतारा, और नाडीनक्षत्र विहीन दिन में गोचर में बृहस्पति रवि, चन्द्र और ताराशुद्ध होने पर द्व्यात्मक और चरलग्न के नवांश में प्रशस्त लग्न में प्रातः समय परीक्षा करे।।६०।।

नौकाघटनम् ।

ज्ञभहरिघटलग्ने देवराड्युग्विशाखा,
त्रिनयन विधियास्यद्वन्द्वसर्पान्त्यभेषु ।
सुकरणतिथियोगे शुक्रजीवार्कवारे,
तरणिघटनमिष्टं चन्द्रतारा विशुद्धौ ।।६१।।

अब नौकाघटन कहते हैं। मिथुन, कन्या, सिंह और तुला लग्न में ज्येष्ठा, मूल, विशाखा, आर्द्रा, रोहिणी, भरणी, कृत्तिका, आश्लेषा और रेवती, नक्षत्र में शुभकरण शुभतिथि और शुभयोग में शुक्र बृहस्पति और रविवार में चन्द्र और ताराशुद्ध होने पर नौका घटन शुभदायक होता है।।६१।।

घटनस्थानान्नौकाचालनम्

शुभाहे विष्णुयुग्मेन्दुभगमैत्राश्विपाणिषु ।
चालनं घटनस्थानान्नावः शुभतिथीन्दुषु ।।६२।।

घटन स्थान से नौका चालन कहते हैं। सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवार में श्रवण, धनिष्ठा, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, अश्विनी और हस्त नक्षत्र में शुभतिथि में गोचर में चन्द्रशुद्धि होने पर घटन स्थान से नौका चलाना उचित है।।६२।।

नौकायात्रा

अश्विकरेज्यसुधानिधिपूर्वमैत्रधनाच्युतभेषु सुलग्ने ।
तारकयोगतिथीन्दुविशुद्धौ नौगमनं शुभदं शुभवारे ।।६३।।

नौकायात्रा कथित होती है। अश्विनी, हस्त, पुष्य, मृगशिरा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, अनुराधा, धनिष्ठा और श्रवण नक्षत्र में शुभलग्न में शुभतारा में शुभयोग में शुभतिथि में गोचर में चन्द्र शुद्धि होने पर शुभग्रह के वार में नौका यात्रा प्रशस्त होती है।।६३।।

नौकायात्रायां नक्षत्रनिन्दाकथनम्

नौकायात्रासु मृत्युः स्यात् पक्षरुद्रमघासु च ।
स्वप्नेनापि नरो गच्छेन्नक्षत्रे क्रूरदूषिते ।।६४।। (क)

नौका यात्रा में निषिद्ध नक्षत्र कथित होते हैं। भरणी, आर्द्रा, और मघा, नक्षत्र में नौका यात्रा करने से मृत्यु होती है, यही क्या स्वप्नमें भी यदि क्रूर दूषित नक्षत्रमें नौका यात्रा करे तो मृत्यु होती है।

वास्तुलक्षणम्

स्निग्धा स्थिरा सुरभिगुल्मलता सुगन्धा
शस्ता प्रदक्षिणजला च निवासभूमिः।
नेष्टा विपर्य्यय गुणा कचशर्करास्थि-
वल्मीककण्टकिविभीतकसंकुला चं ।।६५।।

अब वास्तुभूमिका लक्षण कहते हैं। स्निग्धा स्थिरा अर्थात् पराधिकार के लिये उपद्रवादि विहीन सुगंधित गुल्मलतादि द्वारा परिवेष्टित और प्रशस्त जलाशय के समीप ऐसी भूमि वास करने के उपयुक्त होती है। यदि इसके विपरीत गुणयुक्त अर्थात् रूक्ष, पराधिकारादि उपद्रव द्वारा चंचल, वृक्षादिहीन, दुर्गंधा, निर्जला और केशशर्करास्थि (वालरेता तथा हड्डी से) युक्त वल्मीक कंटकयुक्त वृक्ष और थूण मयभूमि हो, तो इस भूमि में कभी वास न करे।।६५।।

(क) नौकेत्यादिश्लोकः प्रक्षिप्तः ।

वास्तुभूमेः प्लवक्षणम्

पूर्वप्लवो वृद्धिकरो धनदश्चोत्तरप्लवः ।
दक्षिणो मृत्युदश्चैव धनहा पश्चिमप्लवः ।।६६।।

वास्तुभूमि के प्लव का वर्णन करते हैं। वास्तु भूमि की पूर्व दिशाप्लव (नीची) होने पर उन्नति होती है इसी प्रकार उत्तर दिशा नीची होने से धनवृद्धि दक्षिण दिशा नीची होने से मृत्यु और पश्चिम दिशा नीची होने से धनहानि होती है।।६६।।

वास्तुभूमेः पूर्वाद्यष्टदिक्षुजलाशयफलम्

यागादिस्थे सलिले सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयञ्च ।
स्त्री कलहः स्त्रीदौष्टयं नैःस्वं वित्तात्मजविवृद्धौ ।।६७।।

वास्तु भूमि की पूर्वादि दिशा और विदिशा में जलाशय का फल कहा जाता है। वास्तु भूमि की पूर्व दिशा में जलाशय के होने से सब हानि होती है। इसी प्रकार अग्नि कोण में अग्निभय दक्षिण में शत्रुभय, नैर्ऋतकोण में स्त्री कलह, पश्चिम में स्त्री की दुश्चरित्रता, वायुकोण में निर्धनता, उत्तर में धनवृद्धि और ईशानकोण में जलाशय होने से पुत्रादि की वृद्धि होती है।।६७।।

गृहारम्भः

आदित्ये मूककर्किक्रियमिथुन घटालिस्थिते सत्स मेतैः-,
केन्द्राष्टान्त्यैरसोम्यैस्त्रिभवरिपुगतैः सुस्थिरग्राम्यलग्ने ।।
भेषु स्वा राडिशाखादिति फणिदहनोग्रेतरेष्वर्कशुद्धौ,
वेश्मारम्भः शुभः स्यात्सुतिथिंशुभविधौ भौमसूर्येन्तराहे ।।

अव गृहारम्भ कथित होता है। सौर कार्त्तिक, श्रावण, वैशाख, आषाढ़, फाल्गुन और अगहन मास में लग्न के केन्द्र अष्टम और बारहवें स्थान में शुभग्रह होने पर, तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थान में पापग्रह अवस्थित होने पर स्वीय जन्मलग्न और वृष, सिंह,

वृश्चिक, कुंभ, मिथुन, तुला, कन्या और धनु लग्न के पूर्वार्द्ध में ज्येष्ठा, विशाखा, पुनर्वसु, आश्लेषा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, मघा और भरणी के अतिरिक्त नक्षत्र में, रवि शुद्धि होने पर शुभतिथि में, चन्द्र शुद्ध होने पर मंगल और रवि के अतिरिक्तवार में गृहारम्भ शुभजनक होता है।।६८।।

नक्षत्रशुध्या वासगृहस्थाननिर्णयः

कृत्तिकाद्यास्तु पूर्वादौ सप्तसप्तोदितां क्रमात् ।
यदिश्यं यस्य नक्षत्रं तस्य तत्र गृहं शुभम् ।।६९।।

अब नक्षत्रशुद्धि अर्थात् स्वनक्षत्र क्रम से पूर्व दिशा में गृहस्थान निर्णीत होता है। कृत्तिकादि सात सात नक्षत्र पूर्वादि चारों दिशाओं में सन्निवेशित करने से गृह स्वामी का जन्मनक्षत्र जिस दिशा में पड़े, उसी दिशा में गृह निर्माण करने से शुभ होता है।।६९।।

वाटचां प्रशस्तवृक्षरोपणम्

पूगश्रीफलनारिकेललवनीजम्बीरकण्ठाफलाः
चूतादाडिमनागरंगमधुका रम्भाशिरीषामलाः ।
जातीचम्पकमल्लिका बकुलकाः शोभाञ्जनः पाटलो,
देवाशोकजयन्तिका तगरिका नित्यं श्रियं वर्द्धते ।।७०।।

घर में किस किस वृक्ष को रोपण करना चाहिये सो कहते हैं। सुपारी श्रीफल, नारिकेल, नवनीफल जँभीरी नींबू, कण्ठपूर, आम, दाडिमी, नागरंग, मधुपर्णी, केला, सिरस, आमला, जाती (जायफल अथवा आंवला) चम्पक, मल्लिका (मालती) बकुल, सेंजना, पाटल, देवदारु, अशोक, जयंती और तगर, इन सब वृक्षों को घर में लगाने से श्री की वृद्धि होती है।।७०।।

वाटचां वृक्षरोपणनिषेधः ।

धवखदिरपलाशा निम्बखर्जूरजम्बू,

सरललकुचचिञ्चा काञ्चन स्थूलशिम्बा ।
कलिविटपकपित्थैरण्डधुस्तूरपत्या,
विदधति धनहानिं सप्तपर्णः स्नुही च ।।७१।।

घर में कौन कौनसा वृक्ष न लगावें सो कहते है। धव, (धाय) खैर, पलाश, नींब, खजूर, जामुन, सरल, लकुच, तेंतुल काञ्चन, (चम्पा) स्थूल, शिम्बा, वयड़ा, कैथ, अरण्ड, धतूरा, हरड, सप्तपर्ण (वृक्ष विशेष) और स्नुही, (निर्गुण्डी) यह सब वृक्ष गृह में लगाने से धन हानि होती है।।७१।।

नागशुध्या वास्तुस्थाननिर्णयः

पूर्वादिषु शिरः कृत्वा नागः शेते त्रिभिस्त्रिभिः ।
भाद्राद्येर्वामपार्श्वेन तस्य क्रोडे गृहं शुभम् ।।७२।।

अब नाग शुद्धि द्वारा गृह स्थान का निर्णय होता है। भादों इत्यादि तीन तीन महीनों में पूर्वादि क्रम से मस्तक रखकर नाग वाम पार्श्व में शयन करता है। इस नाग के क्रोडदेश (गोद अर्थात् मध्य भाग में) गृहारम्भ शुभदायक होता है।।७२।।

एकशालादिव्यवस्था

एक नागोडुसशुद्धौ द्वे चेद्दक्षिणपश्चिमे ।
त्रिशालं पूर्वतो हीनं कार्यं वा सौम्यवर्ज्जितम् ।।७३।।

एकादि गृहारंभ कथित होता है। वास्तु भूमि में नूतन एक गृह बनाना हो तो नाग और नक्षत्र शुद्धि देखकर बनावे। दो गृह बनाने हों तो वास्तु के दक्षिण ओर पश्चिम भाग में बनाना चाहिये और यदि तीन गृह बनाने हों तो पूर्वभाग वा उत्तरभाग त्यागकर गृह निर्माण करे, किंतु दक्षिण वा पश्चिम भाग त्यागकर कभी गृह निर्माण न करे।।७३।।

पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु गृहबन्धध्रुवाः

पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वाममेकादयो ध्रुवाः ।
प्रस्तारस्याथदैर्ध्यस्य त एवैकसमन्विताः ।।७४।।

पूर्वादिचारों दिशाओं के गृहबंध के ध्रुवांक कथित होते हैं। वामावर्त्तक क्रम से प्रस्थ (शिला) का परिमाण पूर्वादि चारों दिशाओं में एकादि अंक ध्रुवांक है अर्थात् पूर्व दिशा में एक, उत्तर में दो, पश्चिम में तीन, दक्षिण में चार और दीर्घ का परिमाण पूर्वादिक्रम से वामावर्त्त में एकाधिक एकादि अंक ध्रुवांक है अर्थात् पूर्व में दो उत्तर में तीन पश्चिम में चार दक्षिण में पांच।।७४।।

वायव्यादिचतुष्कोणेषु गृहबन्धध्रुवकथनमुभयतः स्वेच्छानुरूपचतुः संख्यादानेन ध्रुववृद्धिश्च

वामं वातादिकोणेषु ध्रुवाः प्रस्तदैर्ध्ययोः ।
एकाद्याः स्वेच्छया सर्व्वे कार्या वेदसमन्विताः ।।७५।।

वायव्यादि कोण में वाम अर्थात् विपरीत (वायु नैर्ऋति, अग्नि, और ईशान) क्रम से प्रस्थ में एकादि अंक ध्रुवांक हैं अर्थात् वायुकोण में एक, नैर्ऋतकोण में दो, अग्निकोण में तीन, ईशानकोण में चार और दीर्घ में एकाधिक एकादि अंक ध्रुवांक होता है। यथा वायुकोण में दो, नैर्ऋतकोण में तीन, अग्निकोण में चार, ईशानकोण में पांच। दिक् और कोण इनको आठ स्थान में ही स्वेच्छानुसार चार मिलाकर ध्रुवाङ्क किया जाता है।।७५।।

गृहाणामायज्ञानम्

व्यासेन गुणिते दैर्ध्ये वसुभिर्विह्लते ततः ।
यच्छेषमायं तं विद्यात् पूर्वादिभवनाष्टके ।।७६।।

गृह का आयज्ञान (लाभ विधि के जानने की क्रिया) कथित होती है। प्रस्थ के हस्त परिमित अंक द्वारा दीर्घ के हस्त परिमित

अंकको गुणा करके आठसे घटानेपर जो अंक शेष रहे, वही पूर्वादि अष्टकोण का आय अंक होगा॥७६॥

गृहाणां नक्षत्रानयनम्

तस्माद् व्यासगुणाद्दैर्घ्यात् पुनर्मङ्गलताडितात् ॥
त्रिघनेन हृताच्छेषं नक्षत्रं तस्य वेश्मनः ॥७७॥

गृह का नक्षत्रज्ञान कथित होता है। प्रस्थांक द्वारा गुणित दीर्घ परिमित अंक को पुनर्वार आठ द्वारा पूर्ण करके सत्ताईस से हरण करने पर जो अंक शेष रहे, उसी का उस गृह का नक्षत्र जाने॥७७॥

गृहाणां व्ययकथनम्

वसुशिष्टं यदा जातं नक्षत्रं भवति व्ययः ।
व्ययाधिकं न कर्त्तव्यं गृहमायाधिकं शुभम् ॥७८॥

गृह का व्यय कथन होता है। पूर्वोक्त वचनानुसार गृह नक्षत्र निर्णय करके उसको आठ द्वारा घटाने से शेष जो अंक रहे उसका नाम व्यय है। आय के अंक की अपेक्षा व्यय का अंक अधिक होने पर वैसागृह न करे किंतु व्यय के अंक की अपेक्षा आय का अंक अधिक होने पर वह गृह करने से शुभ होता है॥७८॥

गृहाणां नक्षत्रव्यवस्था

प्रत्यग्दक्षिणयोर्भं द्रविणाद्यं विदिक्षु दहनादि ।
पूर्वोत्तरयोर्गृहयोरश्विन्यादीनि भानि स्युः ॥७९॥

पूर्वोक्त गृहनक्षत्र की व्यवस्था कथित होती है। पश्चिम और दक्षिण दिक्स्थ गृह का नक्षत्र धनिष्ठादि होता है। इसी प्रकार विदिक् (कोण) स्थित गृह का नक्षत्र कृत्तिकादि एवं पूर्व और उत्तरदिक् स्थित गृह का नक्षत्र अश्विनी इत्यादि होता है॥७९॥

गृहारम्भे लोकपालादिपूजा

बलिभिः पुष्पधूपाद्यैर्लोकपालानथ ग्रहान् ।

पूजयेत् क्षेत्रपालांश्च भूतक्रूरांश्च बाह्यतः ॥८०॥

अब गृहारंभ के समय लोकपालादि की पूजा कही जाती है। प्रशस्त पुष्प और धूपादि उपहार द्वारा लोकपाल (दशदिक् पाल) नवग्रह और क्षेत्रपालादि देवताओं की पूजा करे और घर के बाहर क्रूर भूतगणों की पूजा करनी चाहिये॥८०॥

गृहारम्भे ब्रह्मादिपूजा

सितपुष्पैस्तथा लाजैस्तिलतण्डुलमिश्रितैः ।
ब्रह्माणं वास्तु पुरुषं तद्देशस्थाश्च देवताः ॥८१॥

गृहारंभ के समय ब्रह्मादि की पूजा कही जाती है। शुक्ल पुष्प और तिल तण्डुल मिश्रित खीलों के द्वारा ब्रह्मा, वास्तु पुरुष और तत् ग्राम्याधिपति देवताओं की पूजा करे॥८१॥

सूत्रच्छेदादिफलम्

सूत्रच्छेदे भवेन्मृत्युः कीले चावाङ्मुखे रुजः ।
गृहनाथस्थ पतीनां स्मृतिलोपे मृत्युरादेश्यः ॥८२॥

गृहारंभ में सूत्रच्छेदादि का फल कहा जाता है। गृहारंभ के समय सूत्रछिन्न होने पर गृह स्वामी की मृत्यु होगी (गाड़ी हुई कीली) उखड़ जाने से महारोग होता है और नाप करने के समय यदि परिमाण स्मरण न रहै, तो गृह स्वामी और गृह निर्माता की मृत्यु होती है॥८२॥

गृहार्घ्यदानाय स्थापितकलशभङ्गादिफलम्

स्कन्धाच्च्युते शिरोरुक् गलोपसर्गोऽपवर्ज्जिते कुम्भे ।
भग्नेऽपि च कर्म्मिवधः कराच्च्युते गृहपतेर्मृत्युः ॥८३॥

अब अर्घ्य के निमित्त स्थापित घटादि के टूट जाने पर दोष कथित होता है। जल लाने के समय यदि कलश कंधे से गिर जाय, तो गृह स्वामी को शिर की पीड़ा होती है। स्थापित घट किसी प्रकार से

अधोमुख होने पर गलरोग उत्पन्न होता है, घट टूट जाने पर कर्मी (कार्य्य कर्त्ता) की मृत्यु होती है और घट हाथ से गिर जाने पर गृहपति का मरण होता है।।८३।।

सूत्रदानसमये कुब्जादिदर्शननिषेधः

कुब्जं वामनकं भिक्षुं वैद्यं रोगातुरानपि ।
न पश्येत्सूत्रकाले तुश्रियमिच्छन् प्रयत्नतः ।।८४।।

सूत्रपातादि के समय कुब्जादि को देखने का निषेध कथित होता है। गृह स्वामी यदि विभूति की अभिलाषा करे, तो गृहारंभ के सूत्रपात समय में कुब्ज (कुबड़े) वामन (वौने) भिक्षुक, वैद्य और रोग ग्रसित मनुष्य का दर्शन न करे।।८४।।

सूत्रदानकाले हुलहुलादिश्रवणफलम्

श्रुतौ हुलहुलानाञ्च मेघानां गर्जितेन च ।
गजानामपि हंसानां स्वनितं धनदं भवेत् ।।८५।।

सूत्रदान के समय हुलहुलादि (आनंद गान) श्रवणफल कथित होता है। गृहारंभ के सूत्रपात समय में हुलाहुलि ध्वनि स्त्रियों की उलुध्वनि (आनन्दनाद) मेघ गर्जन, और हाथी तथा हंस की ध्वनि सुनने से धन लाभ होता है।।८५।।

सूत्राद्यारोपणव्यवस्था

ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेये स्तम्भरोपणम् ।
द्वारं नवमभागे तु कार्यं वामात्प्रदक्षिणम् ।।८६।।

गृहारंभ के सूत्रादि का आरोपण कथित होता है। गृहारंभ के समय ईशानकोण में सूत्रपात और अग्नि कोण में स्तम्भ रोपण करना चाहिये और वामावर्त्त के क्रम से अष्टम भाग का एक भाग में द्वार करे।।८६।।

द्वारव्यवस्था

तृतीयतुर्य्ययोः प्राच्यां यास्ये तुर्य्योथ पश्चिमे ।
तुर्य्यपश्चिमयोः पञ्च त्रिचतुर्थेऽपि चोत्तरे (१) ॥८७॥

किस दिशा में स्थित घर के कितने अंश में द्वार करना चाहिये, सो कहते हैं। पूर्वदिक्स्थित घर के तीसरे वा चौथे भाग के एक भाग में द्वार करना चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण दिक्स्थ घर के चौथे भाग में दरवाजा शुभदायक है और पश्चिम दिक्घर के चौथे वा पांचवें भाग के एक भाग में एवं उत्तर दिक्स्थ घर के पांचवें तीसरे अथवा चौथे भाग के एक भाग में दरवाजा करना चाहिये॥८७॥

गृहप्रवेशः

ज्येष्ठापुनर्वसुवर्ज्जं गृहारम्भोदितञ्च यत् ।
तत्सर्वं चिन्तयेद्वेश्म प्रवेशे दैवचिन्तकः ॥८८॥

अब गृहप्रवेश कहते हैं। ज्येष्ठा, पुनर्वसु वर्जित जो गृहारंभोक्त नक्षत्रादि हैं, उनमें गृह प्रवेश करे इस वचन से ज्येष्ठा पुनर्वसु वर्ज्ज, इस प्रकार (क) निषेध के पुनः निषेध के हेतु गृहप्रवेश में उक्त दो नक्षत्र प्रशस्त होते हैं॥८८॥

---

(१) भीर्ति स्त्रीजनतां जयश्रियमथातिथ्यं परं धर्मितां सौजन्यं समतां तथा नलभयं त्यागं सुहृन्नाशनम् । नैःस्वं मृत्युमथापि वा धनयशः स्त्रीणां सहार्द्धाङ्गता प्रस्थं जीवितदीर्घतामथ विदुःप्राव्रज्यमृद्धिं क्रुधेः । पुत्रान्नित्यरुजो धृतिं वसुकृति चैवं परां सम्मतिं उन्मादं जनमुख्यतागतिधनान्यापूंषि गेहच्युतिम् । मानित्वं मतिमर्द्दनं मुनिजना ईशानदिक् कादितः ।। तत्पर्यंतममूनि वास्तुवसतेर्द्वारैः फलानि क्रमात् । इतिपुस्तकांतरे मूलम् ।

(क) गृहारंभ में ज्येष्ठा और पुनर्वसु नक्षत्र वर्जित रहते भी यहां वर्जन के वर्जन में विधि हुई।

गृहप्रवेशविधिः ।

कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् । दत्वा हिरण्यवसनानि तथा द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयं निलयं विशेच्च ।।८९।।

अब गृहप्रवेश की विधि कही जाती है। गृह स्वामी ब्राह्मण और दधि, अक्षत, आम्रशाखा, पुष्प फलद्वारा शोभित पूर्णघट आगे करके ब्राह्मणों को सुवर्ण और वस्त्रादि दान पूर्वक नवीन घर में प्रवेश करे।।८९।।

अनियतकालिकश्राद्धविधिः ।

त्रयोदशीं जन्मदिनञ्च नन्दां जन्मर्क्षतारां सितवासरञ्च।
त्यक्त्वा हरीशेन्दुकरान्त्यमैत्रध्रुवेषु च श्राद्ध विधानमिष्टम्।।

अब अनावश्यक अर्थात् अनियतश्राद्ध काल कथित होता है। त्रयोदशी, जन्मतिथि, नन्दातिथि, जन्मराशि जन्मतारा और शुक्रवार त्यागकर श्रवण मृगशिरा, हस्त, रेवती, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी नक्षत्र में श्राद्ध प्रशस्त होता है।।९०।।

शान्तिकपौष्टिकशुद्धिः

शुभग्रहार्कवारेषु मृदुक्षिप्रध्रुवेषु च ।
शुभराशीन्दुलग्नेषु शुभं शान्तिकपौष्टिकम् ।।९१।।

अब शांतिक और पौष्टिक कर्म कहते हैं। शुभग्रह के वार और रविवार में चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती पुष्य, अश्विनी, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी नक्षत्र में शुभराशि में चन्द्रगोचर में शुद्ध होने पर एवं शुभलग्न में शान्तिक और पौष्टिक कार्य करने चाहियें।।९१।।

इति महीतापनीय श्री श्रीनिवासविरचितायां शुद्धिदीपिका भाषाटीकायां नामादिनिर्णयोनाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अष्टमोऽध्यायः ।

जेययातृविवेकः

दैवहीनं रिपुं जेतुं यायाद्दैवान्वितो नृपः ।
योज्या दैवान्वितामात्या दैवहीने तथात्मनि ।।१।।

अब यात्रा अध्याय कहा जाता है। कामज और क्रोधज, वासनासक्त, विनष्ट धर्म और त्रिविध उत्पात द्वारा पीडित इस प्रकार दैवहीन शत्रु को जीतने के लिये दैवयुक्त नृपति गमन करे और यदि नृपति दैवहीन हो, तो वह स्वयं न जाकर दैवयुक्त मंत्री को शत्रुजय के निमित्त भेजे।।१।।

दैवहीनदैवान्वितलक्षणम्

व्यसनी विनष्टधर्मा त्रिविधोत्पातप्रपीडितो यश्च ।
पुरुषः स दैवहीनः कथितो दैवान्वितोह्यन्तः ।।२।।

दैवहीन और दैवान्वित के लक्षण कहे जाते हैं। कामज दश और क्रोधज आठ यह अठारह प्रकार वासनासक्त विहित राजधर्म विहीन एवं दिव्य भौम और आन्तरिक्ष इन त्रिविध उत्पात द्वारा पीडित जो मनुष्य है, उसको दैवहीन कहा जाता है। इसके अतिरिक्त, अर्थात् व्यसन में, अनासक्त, स्वधर्म निरत, और विविध उत्पात रहित मनुष्य दैवान्वित है।।२।।

त्रिविधोत्पातनिर्णयः

दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृतमगचरजं भूमिजं खजं चान्यत् ।
दिव्यमनिष्टं शान्त्या नश्यति भौमंहिनाभसं याप्यम् ।।३।।

त्रिविध उत्पात कहते हैं। ग्रहकृत विकार (दशा और गोचरादि में रिष्ट) नक्षत्रकृत विकार (नाडी नक्षत्र उपतापकृत) इन दोनों को दिव्य उत्पात कहा जाता है, अगचरज अर्थात् पर्वतादि (भूकम्पादि) वृक्षज अयोग्यकाल फलित अर्थात् असमय में फलित फल पुष्पादि एवं अन्य वृक्ष में अन्यफल पुष्पादि की उत्पत्ति इन सबको भूमिज उत्पात कहते हैं और खज अर्थात् उल्कापात, निर्घात शब्द (ओले गर्जना) धूमकेतु का उदय, ग्रहयुद्ध और रजोवृष्टि इत्यादि यह सब आन्तरिक्ष उत्पात कहे गये हैं। दिव्य अनिष्ट शांति द्वारा नष्ट होता है। भौम और नाभभे उत्पात शांति करने पर भी कुछ विलम्ब से (यथा काल में) प्रशमित होता है।।३।।

त्रिविधोत्पातशान्तिः

दिव्यमपि शममुपैति प्रभूतकनकान्नगोमहीदानैः ।
रुद्रायतने भूमौ गोदोहात्कोटिहोमाच्च ।।४।।

त्रिविध उत्पात की शांति कहते हैं। दिव्य उत्पात भी अधिक स्वर्ण, अन्न, गो और भूमिदान से शांत होता है और रुद्रायतन, भूमि में गोदोहन और करोड़ होम करने से भी शमन होता है, नाभसादि उत्पात भी बहुत प्रतीकार से नष्ट होता है।।४।।

वेलामण्डलनिर्णयः

प्राग्द्वित्रिचतुर्भागेषु द्युनिशोरद्भुतेषु सर्वेषु ।
अनिलाग्निशक्रवरुणा मण्डलपतयः शुभाशुभकुर्युः ।।५।।

त्रिविध उत्पात में वेलाक्रम से (समय के क्रमानुसार) वायव्यादि मण्डल कहते हैं। दिन और रात्रि के प्रथम, दूसरे चौथे

प्रहर में दिव्य, भौम और अन्तरिक्ष उत्पात उपस्थित होने पर यथाक्रम से वायु, अग्नि, इन्द्र, और वरुण मण्डलाधिपति होते हैं अर्थात् प्रथम प्रहर में उत्पात उपस्थित होने पर वायु, दूसरे प्रहर में अग्नि तीसरे प्रहर में इन्द्र, और चौथे प्रहर में उत्पात उपस्थित होने पर वरुण मण्डलाधिपति होते हैं। यह मण्डलाधिपति वक्ष्यमाण नक्षत्रमण्डल द्वारा शुभाशुभफल देते हैं ।।५।।

नक्षत्रमण्डलनिर्णयः

आर्य्यम्णादिचतुष्कचन्द्रतुरगादित्येषु वायुर्भवेत्,
देवेज्याजविशाखयास्ययुगले पित्रद्वये चानलः ।।
वैश्वादित्रयधातृमैत्र युगलभवेन्मण्डलः,
सर्पोपान्त्यशतान्त्मूलयुगलेशानेष्व पामीश्वरः ।।६।।

नक्षत्रमण्डल कथित होता है। उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, मृगशिरा, अश्विनी और पुनर्वसु इन सात नक्षत्रों में वायुमण्डल होता है। इसी प्रकार पुष्य, पूर्वाभाद्रपद, विशाखा, भरणी, कृत्तिका, मघा और पूर्वाफाल्गुनी इन सात नक्षत्रों में अग्निमण्डल, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, अनुराधा और ज्येष्ठा, इन छः नक्षत्रों में इन्द्र मण्डल एवं आश्लेषा, उत्तराभाद्रपदा, शतभिषा, रेवती, मूल, पूर्वाषाढ़ और आर्द्रा इन सात नक्षत्रों में वरुणमण्डल होता है।।६।।

मण्डलस्थशुभाशुभनिर्णयः

पवनदहनौ नेष्टौ योगस्तयोरतिदोषदः,
सुरपवरुणौ शस्तौ योगस्तयोरतिशोभनः ।
सवरुणमरुन्मिश्रः शक्रस्तथाग्निसमायुतः,
फलविरहितः सेन्द्रोवायुस्तथाग्नियुतोऽम्बुपः ।।७।।

मण्डल का शुभाशुभफल वर्णित होता है। वायु और अग्नि शुभ

जनक नहीं है अर्थात् वायु वेला में वायु नक्षत्रमण्डल और अग्नि नक्षत्र वेला में अग्नि नक्षत्रमण्डल शुभफल दायक नहीं होता। वायु और अग्नि का मिलना अत्यंत दोषावह है, वायु वेला में अग्नि नक्षत्र होने पर अथवा अग्नि वेला में वायु नक्षत्र होने पर अत्यंत दोष जनक होता है। इन्द्र और वरुण शुभ जनक होता है अर्थात् इन्द्र वेला में इन्द्र नक्षत्र और वरुण वेला में वरु नक्षत्र होने से शुभ होगा। विशेषतः इन्द्र वेला में वरुण नक्षत्र और वरुण वेला में इन्द्र नक्षत्र होने पर अधिक शुभफल होता है। वरुण युक्त वायु मिश्रफलदायक है अर्थात् वरुणवेला में वायु नक्षत्र में और वायु वेला में वरुण नक्षत्र में मिश्रफल होता है। अग्नियुक्त इन्द्र भी मिश्रफलदाता है अर्थात् अग्नि वेला में इन्द्र नक्षत्र में और इन्द्र वेला में अग्नि नक्षत्र में मिश्रफल होता है। इन्द्रयुक्त वायु फलरहित है (इन्द्र वेला में वायु नक्षत्र में और वायु वेला में इन्द्र नक्षत्र में शुभाशुभ नहीं होता) अग्नियुक्त वरुण भी फल रहित है अर्थात् अग्नि वेला में वरुण नक्षत्र में और वरुण वेला में अग्नि नक्षत्र में शुभफल अथवा अशुभफल कुछ भी नहीं होता।।७।।

मण्डलाधिपाना फलपाककालः

पक्षैश्चतुर्भिर्बलिनस्त्रिभिरग्निर्द्वैवराद् च सप्ताहात् ।
सद्यः फलति च वरुणो येषु न पाकोऽद्भुतेषूक्तः ।।८।।

मण्डलाधिपतिगणों के फल पाक का समय निर्णय किया जाता है। चार पक्ष अर्थात् दो महीने में वायु मण्डलोत्पन्न अद्भुत (उत्पात) फल जनक होते हैं। इसी प्रकार अग्नि मण्डलोत्पन्न उत्पात तीन पक्ष (डेढ़ महीने) में इन्द्र मण्डलोत्पन्न अद्भुत सप्ताह में और वरुण मण्डलोत्पन्न शीघ्र ही फलजनक होते हैं और मिश्र फल दायक मण्डलोत्पन्न उसी उसी काल में फलदाता होते हैं।।८।।

भूकंपनिर्घातयोः पाककालनिर्णयो मण्डलैस्त्रि-विधोत्पातज्ञानञ्च

षड्भिर्मासैः कम्पो द्वाभ्यां पाकञ्च याति निर्घातः ।
एवं त्रिविधोत्पातांश्चिन्त्येन्मण्डलैरेभिः ।।९।।

भूकंप और निर्घात (वज्रपात) का पाक काल निर्णय और मण्डल द्वारा तीनों उत्पात का ज्ञान कहा जाता है। भूकंप छः महीने के पीछे फलदायक होता है निर्घात दो महीने के पीछे फलदायक होता है और पूर्वोक्त मण्डल द्वारा विविध उत्पात के फल को विचारना चाहिये।।९।।

मण्डलशान्तिः

यन्मण्डलेऽद्भुतं जातं शान्तिस्तद्दैवतोद्भवा ।
तथा शान्तिद्वयं कार्यं मण्डलद्वयजाद्भुते ।।१०।।

अब मण्डल की शांति कही जाती है। जिस मण्डल में उत्पात उत्पन्न हो, उस मण्डल के अधिपति देवता की पूजा व होमादि करने से ही शांति होगी और यदि दो मण्डल में उत्पात हो तो दोनों मण्डल के दोनों अधिपति पूजा व होमादिरूप शांती करनी चाहिये।।१०।।

पार्ष्णिग्राहादिविवेकः

पार्ष्णिग्राहः पृष्ठतो भास्करस्य,
प्राग्यातव्यस्तिग्मरश्मिश्च याता ।
आक्रन्दोऽर्कात्सप्तमे यः स्थित स्यात्,
तुल्यास्ते शक्तितश्चिन्तनीयाः ।।११।।

पार्ष्णिग्राहादि ग्रह द्वारा यात्रा में शुभाशुभ विचारा जाता है। सूर्यावस्थित राशि के जितने अंश रविभुक्त हों सूर्यावस्थित राशि की अपेक्षा दशराशि का शेष उसी परिमाण अंश एकादश द्वादश

राशि समस्त और सूर्यावस्थित राशि का रवि भुक्तांश इन सब स्थानों में जो ग्रह हो उसको पार्ष्णिग्राह कहा जाता है। सूर्यावस्थित राशि के रविभोग्यांश में रविभुक्ता राशि की अपेक्षा दूसरी तीसरी राशि समस्त और सूर्यावस्थित राशि का रविभोग्यांश परिमित चौथी राशि का प्रथम भाग इन सब स्थानों में स्थित ग्रहों को यातव्य संज्ञा होती है और उक्त अवस्थित रवि की यातृसंज्ञा होती है सूर्यावस्थित राशि की अपेक्षा समस्त स्थान स्थित ग्रहों का नाम आक्रन्द है, इन समस्त स्थान स्थित ग्रहों का बलाबल विचार कर राजा को यात्रा करनी चाहिये और यदि उक्त सब स्थानों में ग्रह न हों तो राशि के अधिपति का बल विचार कर यात्रा करे।।११।।

आक्रन्दादिविवेकः

मध्याह्नेऽर्कस्तुहिनकिरणो नित्यमाक्रन्दसंज्ञः,
पौरः पूर्वे भवति दिनकृद्यायिसंज्ञोऽन्यसंस्थः ।।
जीवः सौरिस्तुहिनकिरणस्यात्मजश्चेति पौराः ।
केतुर्यायी सभृगुजकुजः सिंहिकानन्दनश्च ।।१२।।

अब आक्रन्दादि योग कहा जाता है। मध्याह्न अर्थात् दिनमान के तीसरे भाग के मध्य भाग में रवि की आक्रन्द संज्ञा होती है। चंद्र ग्रह सर्वदा ही आक्रन्द संज्ञक पूर्वाह्ण में (दिनमान के तीसरे भाग के प्रथम भाग में) रवि की और संज्ञा होती है, दिन के शेष तीसरे अंश में रवि की यायी संज्ञा होती है बृहस्पति शनि और बुधग्रह पौर संज्ञक है केतु, शुक्र, मंगल और राहु इन सब ग्रहों की यायी संज्ञा होती है।।१२।।

षड्गुणव्यवस्था

यानं यायिभिरासनं शुभकरैर्वीर्यान्वितैर्नागरै,
द्वैधीभावमि याद्यदा शुभकराः पौराः सयायिग्रहाः ।

सौम्यैः सन्धिरसद्ग्रहैर्बलयुतैर्युद्धेऽनुकूलैर्ज्जयः,
सर्व्वैरप्यशुभप्रदैर्नरपतिर्द्दैवान्वितं संश्रयेत् ।।१३।।

पूर्वोक्त संज्ञाफल कथन में षड्गुण व्यवस्था कही जाती है। पूर्वोक्त यायिग्रह दशा और गोचरादि में शुभप्रद एवं बलवान् होने पर यान (गमन) करना चाहिये। नागर अर्थात् पौरग्रह शुभकर और बलवान् होने पर आसन (स्व स्थान में रहना) प्रशस्त है। यायिग्रह और पौरग्रह शुभकर होने पर द्वैधीभाव अर्थात् आसन और गमन कुछेक सैन्य के सहित और कुछेक सैन्य का भेजना उचित है। शुभग्रह बलवान् और शुभप्रद होने से संधि करनी चाहिये। पापग्रह बलवान् अनुकूल और शुभकर होने से युद्ध में जय होती है। यायि इत्यादि समस्त ग्रह अशुभप्रद होने से नरपति दैवयुक्त सामन्त अथवा दैवयुक्त मंत्री को युद्धादि कार्य में भेजे।।१३।।

चतुरुपायव्यवस्था ।

साम्नो जीवः सभृगुतनयो दण्डनाथौ कुजार्कौ
दानस्येन्दुः शिखियमबुधाः सासुरा भेदनाथाः ।
वीर्य्योपेतैरुपचयकरैर्नग्नगैः केन्द्रगैर्वा
तत्तत्सिद्धिर्भवति तदहः स्वांशके वापि तेषाम् ।।१४।।

समादि चारों उपाय कहे जाते हैं। शुक्र और बृहस्पति ग्रह साम उपाय का अधिपति होता है इसी प्रकार मंगल और रवि दण्ड नीति का अधिपति, चन्द्र ग्रह दान उपाय का अधिपति एवं केतु, शनि, बुध, और राहुग्रह भेदनीति का अधिपति होता है। उक्त सामादि नीति का अधिपति बृहस्पति इत्यादि ग्रहों में जो ग्रह बलवान् है, गोचर और दशा में शुभकर है, उसके लग्न स्थित अथवा केन्द्र स्थित होने पर उसी के बारह और नवांश में समादि के उपाय की सिद्धि होती है।।१४।।

विज्ञातजन्मायुर्दशान्तर्दशादेः पुरुषस्य यात्रादानाधिकारकथनम्

यात्राविधिरुपदिष्टो विजिगीषोर्विदितजन्मसमयस्य ।
प्रत्यब्दमासवासरविभक्तसुखदुःखरिष्टस्य ॥१५॥

विज्ञातजन्मायुर्दशान्तर्दशा पुरुष का यात्राधिकार कथित होता है। जिस विजयाकांक्षी के प्रतिवर्ष, प्रति मास और प्रतिदिन का विभक्त सुख, दुःख और रिष्टादि जाना जाता है, इस प्रकार ज्ञातजन्म काल पुरुष की यात्रा विधि का उपदेश करना चाहिये॥१५॥

अविदितजन्मायुर्दशान्तर्दशादेः पुरुषस्य प्रश्न निमित्तादिभिः यात्राविधिनिषेधकथनम्

अथवा प्रश्ननिमित्तैः शुभमशुभं वा फलं निरुप्याग्रे ।
प्रस्थाप्यो वा नृपतिर्विदुषा निभृतं निषिध्यो वा ॥१६॥

नहीं जाने जन्मकाल पुरुष के प्रश्न द्वारा यात्रा की विधि निषेध कथित होता है। अज्ञात जन्मकाल पुरुष के प्रथम पण्डितगण प्रश्नकालगत निमित्तद्वारा (प्रश्न करने के समय जितना समय अतिक्रांत हुआ हो) यात्रा का शुभ हो वा अशुभ हो फल निरूपण करके शुभ होने पर राजा को यात्रा की विधि दे और अशुभ होने पर निभृत (गुप्त) अर्थात् एकांत स्थान में जाने का निषेध करे॥१६॥

यात्राप्रश्नविधिः

प्रश्न मनोरमा भूर्माङ्गल्यद्रव्यदर्शनश्रवणे च ।
यदि चादरेण पृच्छति दैवज्ञं तदा निर्द्दिशेद्विजयम् ॥१७॥

प्रश्न विधि द्वारा यात्रा विषय में शुभ कथित होता है। मनोहर स्थान में यदि यात्रा का प्रश्न अथवा यात्रा प्रश्न काल में माङ्गल्य

द्रव्य दर्शन वा माङ्गल्य वस्तु का नाम सुना जाय अथवा यदि दैवज्ञ (ज्योतिषी) से आदर पूर्वक यात्रा का प्रश्न किया जाय, तो युद्ध में राजा की विजय निर्देश करे।।१७।।

प्रश्नेऽङ्गविशेषस्पर्शेनादिभिर्विजयज्ञानम्

स्तन चरणतलोष्ठाङ्गुष्ठहस्तोत्तमाङ्ग
श्रवणवदननासागुह्य रन्ध्राणि भूपः ।
स्पृशति यदि कराग्रैर्गण्डकटच्चं शकं वा,
द्युतिगमशुभशब्दान्व्या हरञ्छास्ति शत्रून् ।।१८।।

यात्रा प्रश्न में अंग स्पर्शनादि द्वारा जय ज्ञान कथित होता है। स्तन पैर का तलुआ होठ अंगूठा, हाथ, मस्तक, कर्ण, मुख, नासिका, गुदा, गण्ड, कमर, अथवा कंधे को यदि राजा प्रश्न काल में कराग्र द्वारा स्पर्श करें किम्वा वीर्ध प्रकाशक वा मंगल सूचक शब्द कहें, तो शत्रु का पराजय समझना चाहिये।।१८।।

यात्राप्रश्नलग्नाज्जयनिर्णयः

जन्मोदयर्क्षलग्ने तदधिपयोर्वा यियासतः प्रश्ने ।
त्रिषडेकादशकोदयेऽष्टवर्गोदये च जयः ।।१९।।

प्रश्नलग्न द्वारा जय का निर्णय किया जाता है। गमन शील राजा **की जन्मलग्न** वा जन्म राशि यदि प्रश्नलग्न हो अथवा जन्मलग्न या **जन्म राशि** का अधिपति ग्रह यदि प्रश्न लग्न में हो, तो युद्ध में विजय **प्राप्त होगी** यदि जन्म लग्न की तीसरी छठी, ग्यारहवीं और दशवीं **राशि अथवा** शीर्षोदय (सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुंभ, मिथुन **वा मीन**) राशि प्रश्नलग्न हो या गोचर में, दशा में वा जन्मकाल में **जो ग्रह** शुभदायक हो उसी ग्रह का क्षेत्रादि वर्गसमूह प्रश्नलग्न हो, **तो भी** युद्ध में जय प्राप्त होती है।।१९।।

यात्राप्रश्ने सिद्धिप्रदयोगद्वयकथनम्

गुर्वर्कशशिभिः सिद्धिर्लग्नारिदशमस्थितैः ।
तद्वल्लग्नारिरन्ध्रस्थैर्ज्जीवशुक्रदिवाकरैः ।।२०।।

यात्रा प्रश्न में इष्ट सिद्धिप्रद दो योग कथित होते हैं। यदि प्रश्नलग्न में बृहस्पति लग्न के छठे स्थान में रवि और दशवें स्थान में चन्द्र अवस्थित हो, तो युद्ध में जय होती है। और प्रश्नलग्न में बृहस्पति, छठे स्थान में और आठवें स्थान में रविग्रह के होने पर भी युद्ध में जय प्राप्त होती है।।२०।।

यात्राप्रश्नेऽशुभयोगद्वयकथनम्

तनयस्य बुधः प्रष्टुः पापैरुदयपुत्रगैः ।
शशाङ्कयमयोर्लग्ने मृत्युर्भूपुत्रदृष्टयोः ।।२१।।

यात्रा प्रश्न में दो अशुभ योग कथित होते हैं। प्रश्न लग्न के पांचवें स्थान में पापग्रहों के अवस्थित होने पर प्रश्न कर्त्ता के पुत्र की मृत्यु होती है और चन्द्रमा शनि प्रश्न लग्नमें रहकर यदि मंगल ग्रह से अवलोकित हों तो प्रश्न कर्त्ता की मृत्यु होती है।।२१।।

यात्राप्रश्ने मृत्युप्रदयोगचतुष्टयकथनम्

सवक्रे निधने मन्दे मृत्युर्लग्ने दिवाकरे ।
चन्द्रेऽस्मिस्त्र्यायमृत्युस्थे ससूर्ये वा वदेद्बुधः ।।२२।।

मृत्युदायक चार योग कथित होते हैं। यात्रा प्रश्न लग्न के आठवें स्थान में शनि और मंगल एवं प्रश्नलग्न में रवि ग्रह के अवस्थित होने पर प्रश्नकर्त्ता की मृत्यु होती है तथा शनि और मंगल अष्टमस्थ होकर रवि के सहित चन्द्र तीसरे ग्यारहवें अथवा आठवें स्थान में अवस्थित होने से भी प्रश्न कर्त्ता की मृत्यु होती है।।२२।।

यात्राप्रश्ने मृत्युयोगः शत्रुवृद्धिसहित क्षुधामृत्यु प्रदयोगाश्च

वक्रज्ञशशिभिर्द्यूने प्रष्टूर्नाशोऽभिगच्छतः ।

क्षुन्मारः शत्रु वृद्धिश्च लग्ने माहेयशुक्रयोः ।।२३।।

यात्रा प्रश्न में मृत्युदायक योग शत्रुवृद्धि योग और क्षुधा द्वारा मृत्युयोग कहा जाता है। प्रश्न लग्न के सातवें स्थान में मंगल, बुध, और चन्द्रमा के अवस्थित होने पर गमनेच्छु प्रश्नकर्त्ता की मृत्यु होती है और प्रश्नलग्न के सातवें स्थान में मंगल एवं शुक्र होने से प्रश्नकर्त्ता की क्षुधा द्वारा मृत्यु और शत्रु वृद्धि होती है।।२३।।

यात्राप्रश्ने त्रासादिप्रदयोगः

द्यूननैधनयोश्चन्द्रे लग्नं याते दिवाकरे ।
विपर्य्यये प्रयातस्य त्रासभंगवधागमः ।।२४।।

यात्रा प्रश्न में त्रासादि प्रदयोग कथित होता है। प्रश्न लग्न के सातवें वा आठवें स्थान में चन्द्र और प्रश्न लग्न में रवि होने से प्रश्नकर्त्ता को त्रास, युद्ध में पराजय और मृत्यु होती है। और रवि सातवें वा आठवें स्थान में एवं चन्द्र प्रश्नलग्न में होने से भी प्रश्न कर्त्ता को त्रास युद्ध में पराजय और मृत्यु होती है।।२४।।

यात्राप्रश्ने बन्धादिप्रदयोगः

द्वित्रिकेन्द्रगतैः पापैः सौम्यैश्च बलवर्जितैः ।
अष्टमस्थे निशा नाथे प्रष्टुर्बन्धवधात्ययाः ।।२५।।

यात्रा प्रश्न में बन्धादि योग कथित होता है। यदि यात्रा प्रश्न लग्न में दो केन्द्र में अथवा तीन केन्द्र में पाप (रवि शनि और मंगल) ग्रह अवस्थित हों और शुभग्रहगण जिस किसी स्थान में अवस्थित रहकर हीनबल हों और आठवें स्थान में चन्द्रग्रह वास करे तो प्रश्नकर्त्ता का बन्धन ताड़न और मरण होता है।।२५।।

यात्राप्रश्ने शत्रुक्षययोगाष्टककथनम्

शत्रोर्होराराशिस्तदधिपतिर्ज्जन्मभं तदीशो वा ।
यद्यस्ते हिबुके वा तथापि शत्रुर्हतो वाच्यः ।।२६।।

यात्रा प्रश्न में शत्रुक्षय कारक योगाष्टक कथित होता है। यात्रा प्रश्न काल में यदि प्रश्न लग्न से सातवें स्थान में अथवा चौथे स्थान में शत्रु जन्म लग्न राशि हो वा प्रश्न काल में जन्मराशि हो अथवा शत्रु का जन्मराश्यधिपति ग्रह अवस्थिति करे तो शत्रु की मृत्यु होगी।।२६।।

यात्राप्रश्ने क्रूरसौम्यग्रहाणां निधनाद्यवस्थित्या शुभाशुभयोगातिदेशः

निधनहिबुकहोरा सप्तमर्क्षेषु पापाहन-,
शुभफलकराः स्युः पृच्छतां मानवानाम् ।
दशमभवनयुक्तेष्वेषु सौम्यां प्रशस्तां,
सदसदिदमशेषं यानकालेऽपि चिन्त्यम् ।।२७।।

यात्रा प्रश्न में पाप और शुभग्रह की अष्टमादि स्थान में अवस्थिति द्वारा शुभाशुभ कहा जाता है। यात्रा प्रश्न के समय यदि अष्टम चतुर्थ लग्न और सातवें स्थान में पापग्रह अवस्थित हो, तो प्रश्नकर्त्ता का अमंगल होता है और अष्टम चतुर्थ लग्न सप्तम और दशमस्थान में शुभग्रह अवस्थित होने पर प्रश्नकर्त्ता का शुभफल होता है। यात्रा प्रश्न काल का जो सब शुभाशुभ विचारा गया यात्रा काल में भी यह सब शुभाशुभ विचारना चाहिये।।२७।।

यात्राप्रश्ने यात्रा जातकोक्तशुभाशुभयोरतिदेशः

शुभाशुभफला योगा यात्रायां जातकेऽपि च ।
ये प्रोक्तास्तानपि प्रश्नेयुक्त्या सञ्चिन्तयेद्बुधः ।।२८।।

शुभ और अशुभदायक जो समस्त योग यात्रा कालीन और जन्मकालीन कहे गये हैं प्रश्न काल में भी बुद्धिमानों को उन सब योगों का युक्ति द्वारा विचार करना चाहिये।।२८।।

यात्रासमयकथनम्

यात्रार्के झषमेषसिंहधनुषिच्छिद्रे रिपोर्वाशरद्,
उच्चादिस्थ शुभेषु पृष्ठगरवौ सर्वग्रहस्योदये ।
यात्राभंगविधावसत्यथ भवेत्सोऽर्कात्त्रिकोणे विधौ,
भौमज्ञादिषु वा बलिन्यथ सुते गन्तव्यदिक्पालतः ॥२९॥

यात्रा काल कहा जाता है। मीन मेष, सिंह और धनु राशि में रवि के अवस्थान काल में (सौर, चैत्र, वैशाख, भाद्रपद और पौषमास में) शत्रु का छिद्र उपस्थित होने पर शरत्काल में अर्थात् अशुभ दशा द्वारा शत्रुकारिष्ट, सामन्तनाश, एवं दुर्भिक्ष और मरकादि द्वारा सेना का क्षय होने पर आश्विन और कार्त्तिक मास में, शुभग्रह उच्चस्थान स्थित, मूलत्रिकोणस्थ, स्वगृहस्थित अथवा मित्रगृहगत होने पर रविग्रह पीछे रखकर, समस्त ग्रह उदित रहते, यात्रा भंगविधि न होने पर राजा की यात्रा श्रेष्ठ होती है। रवि के त्रिकोण में (नवें और पांचवें स्थान में) चन्द्रमा होने पर और मंगल के त्रिकोण में बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनिग्रह अवस्थित होने पर यात्रा भंगविधि होती है और गन्तव्यादिग अधिपति ग्रह के पांचवें स्थान में जिस किसी बलवान् ग्रह के अवस्थित होने पर भी यात्रा भंगविधि होती है, इसमें यात्रा निषिद्ध है।।२९।।

यात्रायां निषिद्धवारकथनम्

संत्यजेद्दिवसे यात्रां सूर्य्यारार्कीन्दुवक्रिणाम् ।
अष्टवर्गदशापाकाद्यनिष्टफलदस्य च ॥३०॥

यात्रा का निषेधवार कथित होता है। रवि, मंगल, शनि, सोम और वक्री ग्रहों के वार में यात्रा त्याग दे और अष्टवर्ग वा दशापाक में जो सब ग्रह अनिष्ट फलदायक हों उन ग्रहों के वार में भी यात्रा न करे।।३०।।

यात्रायां निषिद्धतिथिकथनम्

षष्ठ्यष्टमीद्वादशीषु न गच्छेत्त्रिदिनस्पृशि ।
पूर्णिमाप्रतिपद्दर्शरिक्तावमदिनेषु च ॥३१॥ (१)

यात्रा में निषिद्धतिथि कही जाती हैं। छठ, अष्टमी और द्वादशी तिथि में एवं त्र्यहस्पर्श दिन में यात्रा न करे और पूर्णिमा, प्रतिपद, अमावास्या, चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी तिथि में अथवा अवम दिन में भी यात्रा निषिद्ध है॥३१॥

नक्षत्राणां दिग्व्यवस्था

पूर्वाद्यग्निमघानुराधवसुभादीन्यत्र दण्डोऽन्तरे,
वाय्वग्न्योर्न स लङ्घ्य ऐक्यमनलप्राच्योस्तथान्या विदिक् ॥
लग्ने दिग्वदने तु दण्डगमनं प्राच्यादि शूलं विना,
तज्ज्येष्ठाजपदं सरोजननिलयः स्यादुत्तरा फाल्गुनी ॥

नक्षत्रों की दिक् व्यवस्था कथित होती है। पूर्व की ओर कृत्तिकादि से आश्लेषा पर्यंत सात नक्षत्रों में गमन करे। इसी प्रकार दक्षिण की ओर मघादि से विशाखा पर्यंत सात नक्षत्रों में पश्चिम की ओर अनुराधादि अभिजित से श्रवण पर्यंत सात नक्षत्रों में और उत्तर की ओर धनिष्ठादि से भरणी पर्यंत सात नक्षत्रों में गमन करना चाहिये। वायु कोण से अग्निकोण पर्यंत एक दण्ड की कल्पना करनी चाहिये उक्त दण्ड अलङ्घनीय है अर्थात् पूर्व और उत्तरा दिक्स्थ नक्षत्रों में दक्षिण और पश्चिम दिशा में न जाय, एवं दक्षिण और पश्चिमस्थ नक्षत्रों में पूर्व और उत्तर दिशा में न जाय किंतु पूर्वदिक्स्थ नक्षत्रों में उत्तर की ओर गमन और उत्तर दिक्स्थ नक्षत्रों में पूर्व की ओर गमन करना उचित है और दक्षिण दिक्स्थ नक्षत्रों में

---

(१) अजातचन्द्रा प्रतिपत्तिथिर्या सा सर्वदा सिद्धिकरी न पुंसाम् । कलो न चन्द्रो विदधाति सैव धर्मार्थकामांश्च यशांसि नूनम् । इति पुस्तकांतरे मूलम्।

पश्चिम की ओर एवं पश्चिम दिक्स्थ नक्षत्रों में अग्निकोण में, दक्षिण दिक्स्थ नक्षत्रों में नैर्ऋतकोण में पश्चिम दिक्स्थ नक्षत्रों में वायुकोण में और उत्तर दिक्स्थ नक्षत्रों में ईशानकोण में गमन करना चाहिये। विशेषतः यात्रानुकूल लग्न यदि दिङ्मुखलग्न हो तो पूर्वादि दिशा का शूलसंज्ञक नक्षत्र त्यागपूर्वक पूर्वोक्त कल्पित दण्ड लंघन करके भी गमन कर सकता है दिक्शूल नक्षत्र यथा पूर्वादिशा में ज्येष्ठा, दक्षिण दिशा में पूर्वाभाद्रपद पश्चिम में रोहिणी और उत्तर दिशा में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र शूल होता है।।३२।।

यात्रायां निषिद्धनक्षत्रगणः

नेशाजाग्निविशाखवायुहिमघायाम्यैः परार्द्धं न सत्,
चित्राह्यन्त कजं परप्रथमजं पित्र्यानिले चाखिले ।
राहुक्रूरयुगस्तसन्निधितथोत्पातप्रदुष्टं ग्रहैः,
द्व्यर्याद्यैर्युग्ममसद्दिनेनिशितिथावृक्षेऽप्यनिष्टे गमः ।।३३।।

अब यात्रा विषय में निषिद्ध नक्षत्र कहे जाते हैं। आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका, विशाखा, स्वाती, आश्लेषा, मघा भरणी और चित्रा नक्षत्र में गमन निषिद्ध है। चित्रा, आश्लेषा, और भरणी नक्षत्र का परार्द्ध अत्यंत निन्दनीय है। आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका और विशाखा का पूर्वार्द्ध, अतिशय गर्हित एवं मघा, और स्वाती का समस्त अंश ही अत्यंत निन्दनीय है। राहु और क्रूरग्रह (रवि, शनि, और मंगल,) युक्तनक्षत्र, रविभुक्तनक्षत्र, रविभोग्यनक्षत्र, उत्पात (धूम, केतु, उल्कापात, भूकम्प, और पांशुवृष्टि आदि) द्वारा प्रदुष्टनक्षत्र एवं द्वित्रिग्रहादि द्वारा आक्रांत नक्षत्र में यात्रा निषिद्ध है। विशेषतः अनिष्टद तिथि में दिन में और अनिष्ट दायक नक्षत्र में रात्रि के समय कभी यात्रा न करे।।३३।।

यात्रायां समयविभागव्यवस्थया निषिद्धनक्षत्रकथनम्
सार्व्वकालिकसार्व्वद्वारिकनक्षत्रकथनञ्च

दग्धुं शत्रपुरं सदग्निभमुदेत्यर्कोनचेदुत्तरे,
रोहिण्यां च विशाखभे च न गमः पूर्वाह्णकाले शुभः ।
मध्याह्ने न शिवाहिमूलबलभिद्भेष्वह्निशेषेऽश्विनी,
पुष्याहस्तमरुत्सु चित्रशशिमैत्रान्त्येन रात्र्यादितः ।।३४।।

यात्रा में समय भेद से निषिद्ध नक्षत्र दो श्लोकों में कहे जाते हैं। जिस समय सूर्य उदय हो उस काल के अतिरिक्त समय में कृत्तिका का नक्षत्र शत्रु पर दहन में प्रशस्त होता है। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी और विशाखा नक्षत्र में पूर्वाह्न के समय यात्रा न करे। मध्याह्न के समय आर्द्रा, आश्लेषा, मूल और ज्येष्ठा नक्षत्र में यात्रा शुभदायक नहीं होगी अपराह्ण के समय अश्विनी पुष्य, हस्त और स्वाती नक्षत्र यात्रा में शुभदायक नहीं होगा। रात्रि के प्रथम भाग में चित्रा, मृगशिरा, अनुराधा और रेवती नक्षत्र में यात्रा न करे।।३४।।

रात्रेर्मध्यमसतुपूर्वभरणीपित्रेषु शेषे निशो ह्यर्यादि,
त्रितयाबि तिष्वपि जलं मध्याह्नरात्र्यन्त्योः ।
पुष्याहस्तमृगाच्युतेषु शुभदाः सर्वेपि कालास्तथा,
सार्व्वद्वारिकसंज्ञितानि गुरुभं हस्ताश्विमैत्राणि च ।।३५।।

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वषाढ, पूर्वाभाद्रपद, भरणी और मघा नक्षत्र में रात्रि के मध्य भाग में यात्रा न करै। श्रवण धनिष्ठा, शतभिषा, और पुनर्वसु नक्षत्र में रात्रि के शेष भाग में यात्रा अनुचित है पूर्वाषाढ नक्षत्र रात्रि के मध्य भाग में यात्रा में शुभदायक नहीं होता। पुष्य, हस्त, मृगशिरा और श्रवणनक्षत्र में सदा ही यात्रा कर सकता है और पुष्य, हस्त, अश्विनी एवं अनुराधा नक्षत्र की सार्वद्वारिक संज्ञा है।।३५।।

यात्रायां करणव्यवस्था

गरवणिजविष्टिपरिवर्जितानि करणानि यातुरिष्टानि ।
गरमपि कैश्चिच्छस्तं वणिजस्तु वणिक्क्रियास्वेव ।।३६।।

यात्रादि में करणव्यवस्था कही जाती है गर, वणिज और विष्टि के अतिरिक्त करण में यात्रा करने से शुभफल होता है। किसी किसी पण्डित के मत से गरकरण में भी यात्रा कर सकता है और वाणिज्य विषय में वणिजकरण प्रशस्त होता है।।३६।।

यात्रादिषु मुहूर्त्तव्यवस्था

नक्षत्रवत्क्षणानां परिघः शूलं समयभेदश्च ।
तारा च चन्द्रशुद्धिः सर्वं तत्स्वामिभिश्चिन्त्यम् ।।३७।।

यात्रा में नक्षत्र का मुहूर्त फल कहा जाता है। पूर्वोक्तवायु और अग्निकोण कल्पितदण्ड, शूलनक्षत्र, समय भेद, कालभेद (तारा, चंद्रशुद्धि) और सार्वद्वारिक नक्षत्र, यात्रा विषय में जो सब कहे गये हैं, उक्त नक्षत्रों की समान इन सब नक्षत्रों के मुहूर्त्त को भी विचारना चाहिये। केवल जो यात्रा विषय में ही इस प्रकार कहा गया, ऐसा नहीं है, जिस जिस नक्षत्र में जो जो कार्य कहे गये हैं, उस उस नक्षत्र के मुहूर्त्त में और उस उस नक्षत्राधिपति तथा मुहूर्ताधिपति की एकता में भी वह वह कार्य कर सकता है।।३७।।

यात्रायां चन्द्रशुद्धिः

यायिक्षेत्रगतोऽथवा शुभफलश्चन्द्रो यथा गोचरे ,
शुक्लादौ गमने तदादिशुभदं कृष्णादितस्त्वन्यथा ।
संचिन्त्याहिमदीधितेः समुदिता शुद्धिर्बुधैः पूर्ववत्,
जन्मस्थः पुनरिष्टोदोऽत्र हिमगुर्यद्यष्टवर्गाच्छुभः ।।३८।।

यात्रा में चन्द्र शुद्धि कही जाती है। शुक्लप्रतिपद तिथि में यदि चन्द्रग्रह पूर्वोक्त यायिग्रह के क्षेत्र में अवस्थित हो अथवा गोचर में शुभजनक हो, तो शुक्लपक्ष में गमन शुभकारी होगा। कृष्ण प्रतिपद

तिथि में यदि चन्द्रग्रह यायिग्रह के क्षेत्र में अवस्थिति न करे वा गोचर में रिष्टदायक न हो, तो कृष्णपक्ष में यात्रा शुभदायक नहीं है, पण्डितगण पूर्वोक्त चन्द्र शुद्धि का यात्रा में भी विचार करें किंतु जन्म चन्द्र अष्टवर्ग में शुद्ध होने पर यात्रा में शुभदायक होगा और अष्टवर्ग में शुद्ध न होने पर यात्रा में शुभकारी नहीं होगा।।३८।।

यात्रायांताराशुद्धिः

यात्रायां शोभनास्तारा: समा: कर्मान्त्यसंयुता: ।
पुराभिषेकभे यत्नात् गमनं वर्ज्जयेन्नृप: ।।३९।।

यात्रा में तारा शुद्धि कही जाती है। दूसरा, चौथा, छठा, आठवां, नवां और दशवां तारा यात्रा में शुभदायक होता है। राजा पुरनक्षत्र और अभिषेक नक्षत्र यात्रा में यत्नपूर्वक त्याग दें।।३९।।

यात्रायामशुभलग्नकथनम्

मीने कर्किन्यलिनि च वृषे जन्मकालस्थपापे,
वामे वा दिग्द्युनिशवलिनां जन्मलग्नाष्टमे वा ।
वर्गे पापनुपचयकृतां वक्रिणां पृष्ठलग्ने,
पापान्त: स्थे न शुभमबले लग्नजन्माविधेये ।।४०।।

यात्रा में निषिद्ध लग्न कही जाती है। मीन कर्क वृश्चिक और वृष लग्न यात्रा में अशुभदायक होता है, इसी प्रकार जन्म के समय जिस राशि में पापग्रह अवस्थित था उसी लग्न वा राशि में दिवाबली राशि लग्न में दिन में जन्मराशि वा जन्मलग्न को अष्टमलग्न में पाप ग्रह के क्षेत्र और नवांशादि में गोचर में वा दशा में अशुभदायक शुभग्रह के क्षेत्रादि में वक्री ग्रह के क्षेत्रादि में पृष्ठोदय राशि को लग्न में पापद्वय मध्यगत लग्न में बलहीन लग्न में और जन्म लग्न एवं राशि की अवशीभूत लग्न में यात्रा करने से अशुभ फल होता है।।४०।।

यात्रायां शुभलग्नादिकथनम्

लग्नं सज्जन्मराशेरुपचयमुदयारित्रिलाभश्च वेशि,
मित्रं वश्यं सजन्मस्वतनुभवनयोर्यद्ग्रहैर्नो निरंशं,
स्थानं सौम्यस्य जन्मन्य भिमतफलदस्यापि यत्रं प्लवश्च,
याम्यां त्यक्त्वाभिजिद्धं शुभ दिवसफलेन्दोश्च याः कालहोराः

यात्रा में विहित (शुभ) लग्न वर्णित होती है जन्म राशि की **अपेक्षा तृतीय,** एकादश और षष्ठ राशि के लग्न यात्रा में शुभदायक हैं। **जन्मलग्न से षष्ठ** तृतीय और एकादश लग्न भी यात्रा में शुभजनक होती **है और** जन्म कालीन सूर्य से द्वितीय राशि की लग्न स्वीय जन्म राशि **और** जन्म लग्न गृह का मित्र तथा वश्य लग्न जिस राशि के **शेषांश में ग्रह** अवस्थित न हो वह लग्न जन्मकालीन जिस राशि में **शुभग्रह** अवस्थित हो वह लग्न जन्मकालीन शुभफलद पापग्रहाक्रांत राशि **लग्न,** जिस राशि में यात्रा करे, उस राश्यधिपति की क्षेत्रलग्न **दक्षिण दिशा** के अतिरिक्त अभिजित् (अष्टम) मुहूर्त्ताधिष्ठित राशि **लग्न,** एवं शुभफलदायक ग्रह का वार और चन्द्रमा का **कालहोरा** यह सब ही यात्रा में शुभफल दायक होते हैं।।४१।।

यात्रायां होराफलम्

तिर्य्यगधऊर्द्धवदनहोराः स्युः सूर्ययोगतः क्रमशः ।
वाञ्छितफलदोर्द्धमुखीशेषे द्वे न शुभे यातुः ।।४२।।

यात्रा में होराफल कहा जाता है। राशि वा लग्न के अर्द्ध भाग को **होरा कहा** जाता है, जिस राशि के अर्द्धभाग में सूर्य अवस्थित हो **उसका नाम** तिर्य्यङ्मुखी होरा है। तत्पश्चात् भाग अधोमुखी और **उसका पश्चात्** भाग ऊद्र्ध्वमुखी होरा है। ऊद्र्ध्वमुखी होरा वांछित **फल देता है** तिर्यङ्मुखी और अधोमुखी यह दो होरा ही अशुभ **जनक हैं।।४२।।**

यात्रायां द्रेष्काणफलम् ।

लग्ने यद्यद्ग्रहाणां फलमुदितमिहांशेऽपि तेषां.
दृकाणे सन्नाथे सौम्यरूपे कुसुमफलयुते रत्नभाण्डान्विते वा ।
सौम्यैर्दृष्टे जयः स्यात् प्रहरणसहिते पापदृष्टे च भङ्गो.
वह्नौ दाहोऽथ बन्धः सभुजग निगडे पापयुक्ते च यातुः ॥४३॥

यात्रा में द्रेष्काण और नवांश का फल कहा जाता है। लग्न स्थित ग्रहों के जो जो फल "पापक्षीण इत्यादि" वक्ष्यमाण वचनों में कहे जांयगे यहां भी यात्रा में उस उस ग्रह के नवांश में तत्तत् फल जानना चाहिये। शुभग्रह जिस द्रेष्काण का अधिपति हो, उस द्रेष्काण में सौम्यरूप द्रेष्काण में कुसुम फलयुक्त द्रेष्काण में रत्नभाण्डान्वित द्रेष्काण में और शुभग्रह की दृष्टि जिस द्रेष्काण में हो, उस द्रेष्काण में यात्रा करने से यात्रिक राजा की जय होती है। उद्यतास्त्र द्रेष्काण में पापग्रह से अवलोकित द्रेष्काण में गन्ता (गमन करने वाले) की यात्रा भंग होती है और भुजंग द्रेष्काण में निगड द्रेष्काण और पापग्रहयुक्त द्रेष्काण में यात्रा करने से यात्री का अग्निदाह और वन्धन होता है।।४३।।

यात्रायां द्वादशांशत्रिंशांशफलम्

यत्प्रोक्तं राश्युदये द्वादशभागेऽपि तत्फलं वाच्यं ।
यच्च नवांशकविहितं त्रिंशांशस्योदये तत्स्यात् ॥४४॥

यात्रा में द्वादशांश का फल कहा जाता है। 'मीने कर्किन्यलिनि इत्यादि' वचनों में मेषादि लग्न का जो जो शुभाशुभफल कहा गया है, उस उस लग्न के द्वादशांश में भी वह वह फल जानना चाहिये। और नवांश में जो फल कहा गया है त्रिंशांश में भी वही फल होगा।।४४।।

यात्रायां रविशुद्धिः ।

दशत्रिलाभारिगतः प्रशस्तः शेषेष्वशस्तः सविताविलग्नात् ।
पुत्रापदं धर्महतिं व्ययञ्च कृत्वा त्रिकोणान्त्यगतोऽर्थदश्च।।४५।

यात्रा में द्वादश भाग की रवि शुद्धि कही जाती है। यात्रिक लग्न से दशम, तृतीय, एकादश और षष्ठ राशिस्थ सूर्य प्रशस्त होता है, अन्यस्थान स्थित सूर्य प्रशस्त नहीं होता। लग्न की अपेक्षा पञ्चमस्थ सूर्य पुत्रापद (पुत्र अथवा संतान को कष्ट) देकर धनदाता होता है। नवमस्थ सूर्य धर्म की हानि करके अर्थदान करता है और द्वादश स्थान स्थित सूर्य व्यय (खर्च) कराकर धनदाता होता है।।४५।।

यात्रायां लग्नादिस्थचन्द्रशुद्धिः

केन्द्रकोणार्थगो नेष्टः क्षीणः पूर्णः शुभः शशी ।
सदैवत्र्यायगः शस्तो न शस्तोऽन्त्यारिरन्ध्रगः ।।४६।।

यात्रा में लग्नादि स्थित चन्द्र शुद्धि कही जाती है। लग्न से केन्द्र त्रिकोण और द्वितीय राशि स्थित क्षीण चन्द्रमा अशुभ दायक होता है। पूर्ण चन्द्रमा केन्द्र त्रिकोण और द्वितीय स्थानस्थ होने से शुभफल देता है। लग्न से तृतीय और एकादशस्थ चन्द्रमा सदा ही शुभदाता होता है और द्वादश, षष्ठ तथा अष्टमस्थ चन्द्र क्षीण वा पूर्ण सभी अवस्था में अशुभ दाता होता है।।४६।।

यात्रायां कुजशुद्धिः

भौमस्तूपचये शस्तः कैश्चित् खस्थोऽपि निन्दितः ।
धने भित्वा निजं सैन्यं धनदोऽन्येष्वनिष्टदः ।।४७।।

यात्रा में लग्नादिस्थ मंगल का फल कहा जाता है। मंगल ग्रह यात्रिक लग्न से तृतीय, एकादश, षष्ठ अथवा दशम स्थान में स्थित होने पर प्रशस्त होता है। किसी किसी पण्डित के मत से दशमस्थ मंगल निन्दित है। यात्रिक लग्न के द्वितीय स्थान में मंगल अवस्थित

होने पर निज सैन्य में भेद कराकर धन प्रदान करता है और यात्रिक लग्न के चतुर्थ, पंचम, सप्तम, अष्टम, नवम अथवा द्वादश स्थान स्थित मंगल अशुभ दायक होता है।।४७।।

यात्रायां लग्नादिस्थबुधशुद्धिः

क्रूरो बुधस्तूपचये प्रशस्तः शेषेष्वशस्तोऽथ यदा शुभः स्यात् ।
सर्वत्र शस्तोऽन्त्यरिपुं विहाय छिद्रेप्यनिष्टं प्रवदन्ति केचित् ।।

यात्रा में लग्नादिस्थ बुध का फल कहा जाता है। पापयुक्त बुधग्रह यात्रिक लग्न के तीसरे, ग्यारहवें, छठे और दशवें स्थान में स्थित होने से प्रशस्त फलदाता होता है। इसके अतिरिक्त स्थान में अवस्थित होने से अप्रशस्त फल देता है, शुभ बुधलग्न के बारहवें और छठे स्थान के अतिरिक्त सर्वत्र ही प्रशस्त फल देता है। किंतु किसी किसी पण्डित के मत से अष्टमस्थ बुध अनिष्ट दायक कहा गया है।।४८।।

यात्रायां लग्नादिस्थगुरुशुद्धिः

तृतीयव्ययगो नेष्टः शेषेष्विष्टफलो गुरुः ।
षष्ठाष्टमेऽपि केषाञ्चिन्मतेनाशुभदो भवेत् ।।४९।।

यात्रा में लग्नादिस्थ बृहस्पति का फल वर्णित होता है यात्रिक लग्न के तीसरे और बारहवें स्थान में बृहस्पति अवस्थित होने पर शुभफल नहीं देता इनके अतिरिक्त समस्त स्थानों में ही शुभफल देता है कोई कोई पण्डित कहते हैं षष्ठ और अष्टम स्थित बृहस्पति अशुभ दायक है।।४९।।

यात्रायां लग्नादिस्थशुक्रशुद्धिः

विहाय सप्तमं स्थानं सर्वत्र शुभदः सितः ।
केचिद्व्ययारिसंस्थस्य फलं नेच्छन्ति शोभनम् ।।५०।।

यात्रा में लग्नादिस्थ शुक्र का फल कहा जाता है। यात्रिक लग्न के सातवें स्थान के अतिरिक्त सर्वत्र ही शुक्रग्रह शुभ फलदाता होता है, कोई कोई पंडित यात्रिक लग्न के बारहवें और छठे स्थान में शुक्र होने से शुभफल स्वीकार नहीं करते।।५०।।

यात्रायां लग्नादिस्थशनिराहुशुद्धिः

शौरिस्त्र्यायारिगः शस्तो न शस्तोऽन्यत्र संस्थितः ।
त्र्याय कर्मारिगो राहुः शोभनोऽन्येष्वशोभनः ।।५१।।

यात्रा में लग्नादिस्थ शनि और राहु का फल वर्णित होता है। शनिग्रह यात्रिक लग्न के तीसरे ग्यारहवें अथवा छठे स्थान में अवस्थित होने से शुभफल दायक होता है इनके अतिरिक्त स्थान में होने से अशुभफल दाता होता है। लग्न के तीसरे, ग्यारहवें, दशवें और छठे, स्थान स्थित राहु शुभफलदाता होता है। इनके अतिरिक्त स्थानों में अशुभ फल देता है।।५१।।

यात्रायां लग्नादिस्थकेतुशुद्धिः

केतावभ्युदये यायात्त्यक्त्वा सप्तैव वासरान् ।
दिशि नम्र शिखायान्तु यदि स्यात्र्याद्यकर्मपः ।।५२।।

यात्रा में लग्नादिस्थकेतु का फल कहा जाता है। जिस दिशा में धूमकेतु की शिखा नम्र भाव से गिरे, केतु उदय होकर सप्ताह के पीछे उसी दिशा में गमन करेगा। यदि यात्रिक लग्न के तीसरे, ग्यारहवें, और दशवें, स्थान में केतु अवस्थित हो, तो शुभफल देता है इनके अतिरिक्त स्थानों में होने से अशुभफलदाता होता है।।५२।।

यात्रायां लग्नेस्थनिषिद्धग्रहनिर्णयः शून्यकेन्द्रवक्रिकेन्द्रनिधेषश्च

पापः क्षीणो विधुरविदिनं यस्य जन्मर्क्षपीडा,
होराजन्माष्टमगृहपतीर्ज्जन्मभं प्रत्यनिष्टः ।
नीचस्थास्तंगतपरजितो जन्म लग्नेशशत्रुः,

लँग्नेनेष्टा खचरंरहितं वक्रियुक्तञ्च केन्द्रम् ।।५३।।

यात्रा में लग्नस्थनिषिद्ध ग्रह वर्णित होते हैं। पापग्रह और **क्षीणचन्द्रमा यात्रिक लग्न में होने से शुभदायक नहीं होता।** इसी प्रकार जिस वार में यात्रा करे, वह वाराधिपति जिस ग्रह का शत्रु है, वह ग्रह, जिस ग्रह का जन्मनक्षत्र पीडित है, वह ग्रह, जन्मलग्न और जन्मराशि का अष्टमाधिपतिग्रह, गोचर में निष्टदायक अथवा शुभदायकग्रह, दशांतर्दशापति का शत्रुग्रह, नीचस्थ ग्रह, अस्तगतग्रह, युद्ध में पराजित ग्रह एवं जन्मलग्न और जन्मराश्यधिपति का शत्रुग्रह यात्रिक लग्न में अवस्थित होने से यात्रा अशुभदायक होती है और लग्न में अथवा लग्न के चौथे सातवें वा दशवें स्थान में ग्रह न होने पर अथवा वक्रीग्रह अवस्थित होने से भी यात्रा शुभदायक नहीं होगी।।५३।।

ग्रहाणां जन्मनक्षत्राणि

विशाखानलतोयानि वैष्णवं भगदैवतम् ।

पुष्यापौष्णं यमः सर्पो जन्मर्क्षाण्यर्कतः क्रमात् ।।५४।।

सूर्यादि नवग्रह का जन्मनक्षत्र कथित होता है। विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाषाढा, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, पुष्य, रेवती, भरणी और आश्लेषा नक्षत्र क्रमशः रव्यादि नवग्रहों का जन्मनक्षत्र होता है अर्थात् रवि का विशाखा, चन्द्रमा का कृत्तिका, मङ्गल का पूर्वाषाढा, बुध का श्रवण, बृहस्पति का पूर्वाफाल्गुनी, शुक्र का पुष्य शनि का रेवती, राहु का भरणी और केतु का आश्लेषा जन्मनक्षत्र होता है।।५४।।

यात्रायां लग्नस्थग्रहापवादः

स्थानेऽर्कः स्वस्य सूनोरुदयमुपगतः शस्त इन्दुः स्वकीयैः,

भौमः सौरेर्बुधादेर्विदथ शशिसितान्यस्य जीवोऽथ शुक्रः ।

सौम्यः स्वस्थानसंस्थः शनिरपि तरणे रक्षका जन्मकाले,
तानः स्यात्कारको वा सुहृदपि शुभकृल्लग्नजन्मेशयोर्यः।।५५।।

यात्रा में लग्नस्थ निषिद्ध ग्रह का अपवाद कहा जाता है। यात्रिक लग्न यदि सिंह, मकर वा कुंभ हो और उसमें यदि रवि अवस्थान करे तो यात्रा शुभ होती है। इस प्रकार चन्द्र अपने गृह में (कर्क लग्न में) स्थित मङ्गल, मकर वा कुम्भ लग्न में अवस्थित बुध, मिथुन, कन्या, धनु, मीन, वृष, तुला, मकर अथवा कुंभ लग्नमें अवस्थित बृहस्पति, कर्क वृष, और तुला के अतिरिक्त लग्न में स्थित शुक्र, मिथुन, कन्या, वृष और तुला लग्न में अवस्थित एवं शनि सिंह लग्न गत होने से यात्रा शुभदायक होती है। जन्म के समय जो ग्रह रक्षक संज्ञक अर्थात् पणफर स्थित हो, जन्मलग्नाधिपति का जो ग्रह तान संज्ञक हो एवं जो ग्रह मित्र और शुभकारक है, यह पाप होने पर भी यदि लग्नगत हो तो यात्रा में शुभ होता है।।५५।।

स्वदिक्स्थलालाटिग्रहादौ यात्रानिषेधः

लालाटिनि दिगधीशे दिग्बलयुक्ते (१) ललाटगे वापि ।
प्रतिभृगुजे प्रतिशशिजे कालाशुद्धौ हि संत्यजेद्यात्राम् ।।५६।।

ललाटगत ग्रह रहने पर यात्रा निषेध कहा जाता है दिगधिपति ग्रह और दिग्बली ग्रह लालाटी अर्थात् सन्मुखवर्ती होने पर यात्रादि न करे सम्मुख शुक्र में प्रति बुध, में और कालाशुद्धि समय में भी यात्रा परित्याग करनी चाहिये।।५६।।

अष्टदिक्षु लालाटिककथनम्

लग्नेऽर्के व्ययलाभयोर्भृगुसुते कर्म्मस्थिते भूमिजे ,
राहौ धर्म्मे विनाशयो रविसुते द्यूनेऽरिसून्वोर्व्विधौ ।
बन्धौ ज्ञे सहजार्थयोः सुरगुरावेवं ललाटोद्भवे,
योगे नाशमुपैति मानवपतिः पूर्वादि काष्ठां गतः ।।५७।।

लालाटिक योग का निर्णय होता है। यात्राकालीन लग्न में रवि लग्न की अपेक्षा बारहवें, अथवा ग्यारहवें, स्थान में शुक्र, दशवें स्थान में मंगल, नवें वा आठवें स्थान में राहु, सातवें स्थान में शनि, छठे अथवा पांचवें स्थान में चन्द्र. चौथे स्थान में बुध और तीसरे वा दूसरे स्थान में बृहस्पति होने पर ललाटोद्भव योग होता है उक्तयोग में पूर्वदिशा की ओर नरपति (राजा) जाने पर विनाश को प्राप्त होता है।।५७।।

पुरःशुक्रप्रतीकारः

सितमश्वं सितं वस्त्रं हेममौक्तिकसंयुतम् ।
ततोद्विजातये दद्यात्प्रतिशुक्रप्रशान्तये ।।५८।।

प्रतिशुक्र का प्रतीकार कहा जाता है। श्वेतवर्ण घोड़ा और शुक्ल वस्त्र एवं स्वर्ण मोती के सहित ब्राह्मण को प्रतिशुक्र का दोष शांत करने के लिये दान करे प्रतिबुध में भी इसी प्रकार करने से प्रतीकार होता है।।५८।।

चन्द्राद्यनिष्टम्

अतिबलिनीन्दौ सुखगे गमनं यत्नाद्विवर्ज्जयेन्नृपतिः ।
सप्ताहञ्च न यायत्त्रिविधोत्पातेष्वनिष्टेषु ।।५९।।

चन्द्रादि अनिष्ट में यात्रा निषेध कहा जाता है। अत्यंत बलवान् चन्द्र चौथे स्थान में अवस्थित होने पर राजा यत्नपूर्वक गमन परित्याग करे अनिष्ट दायक तीन प्रकार के उत्पात उपस्थित होने पर भी एक सप्ताहपर्यंत यात्रा परित्याग करना चाहिये।।५९।।

व्यतीपातादिषु यात्राफलम्

व्यसनं प्राप्नोति महद्व्यतिपाते निर्गतोऽथवा मृत्युम् ।
वैधृति गमनेऽप्येवं त्र्यहस्पृशि समुपदिशन्त्येके ।।६०।।

व्यतीपातादि योगमें यात्रा निषेध कहा जाता है। व्यतीपात योग

में गमन करने से मनुष्य को संताप शोकादि दुःख होता है। अथवा मृत्यु होती है और वैधृति योग में यात्रा करने पर भी शोक संतापादिदुःख अथवा मृत्यु होती है। किसी किसी पंडित के मत से त्र्यहस्पर्श में यात्रा करने से भी इसी प्रकार फल होता है।।६०।।

अवमादिषु यात्रानिषेधः

नावमात्रौ यायाद्दोषस्तत्राधिमासिके व्यसनम् ।
ऋत्वयनयुग समाप्तौ न विजयाकांक्षी नृपः प्रसरेत् ।।६१।।

अवमदिनादि में यात्रा निषेध कहा जाता है। अवम दिन में और मलमास में यात्रा करने से शोक संतापादि दुःख होता है। विजय की इच्छा करनेवाला राजा ऋतु समाप्ति के दिन अयन समाप्ति के दिन और युग समाप्ति के दिन यात्रा न करे।।६१।।

विवाहदिनादिषु यात्रानिषेधः

उद्वाहमकालोत्सवमभिषेकं चात्मजस्य यः कृत्वा ।
प्रस्थाता विहताशोऽभ्येति गतश्चोत्सवदिनेषु ।।६२।।

उद्वाहादि दिन में यात्रा निषेध कहा जाता है। जो राजा विवाह करके अथवा हठात् इच्छानुसार नृत्य गीतादि उत्सव करके अथवा पुत्र को युवराजपद में अभिषिक्त करके गमन करता है उसको हताश होकर लौटना पड़ता है। दुर्गोत्सवादि उत्सव के दिन में स्त्री पुत्रादि के गर्भाधानादि उत्सव के दिन में और चूडादि उत्सव के दिन में यात्रा करने पर भी हताश होकर लौटना पड़ता है। श्राद्ध के दिन में और विद्युत् गर्ज्जन (बिजली का कड़कना) के समय में भी यात्रा निषिद्ध है।।६२।।

धरित्रीप्रदयोगः

लाभशत्रुसहजेषु यमारौ सौम्यशुक्रगुरवो बलयुक्ताः ।
गच्छतो यदि ततोऽस्य धरित्री सागराम्बुरसना वशमेति

अनन्तर भूमीप्रद योग कहा जाता है। यात्रा कालीन लग्न से ग्यारहवें छठे अथवा तीसरे स्थान में शनि मंगल एक राशि में स्थित अथवा पृथक् २ राशि में अवस्थित हों और बुध शुक्र एवं बृहस्पति जिस किसी राशि में अवस्थित होकर बलवान् हो तो धरित्री प्रद योग होता है। उक्तयोग में यात्रा करने से यात्री के (ससागरा पृथ्वी) वशीभूत होती है।।६३।।

किम्बसुयोगः

केन्द्रोपगतेन वीक्षिते गुरुणा त्र्यायचतुर्थगे सिते ।
पापैरनवाष्ट सप्तगैर्वसु किन्तन्न यदाप्नुयाद्गतः ।।६४।।

किम्बसु योग कहा जाता है। यात्राकालीन लग्न से तीसरे ग्यारहवें अथवा चौथे राशि में स्थित शुक्र ग्रह केन्द्र में स्थित बृहस्पति से यदि दीखे एवं नववें आठवें और सातवें स्थान में पापग्रह वर्जित हो तो किम्बसुयोग होता है इस योग में यात्रा करने से जाने वाले को धन प्राप्त होता है।।६४।।

विना समरयोगः

शशिनि चतुर्थगृहं ह्युपयाते बुधसहितेऽस्तगते भृगुपुत्रे ।
गमनमवाप्य पतिर्म्मनुजानां जयति रिपून् समरेण विनैव

विना समरयोग कहा जाता है। यात्राकालीन चन्द्र यदि बुध के सहित लग्न के चौथे स्थान में अवस्थित हो और शुक्र ग्रह सातवां हो तो विना समर योग होता है। उक्तयोग में यात्रा करने से नरपति विना ही युद्ध किये जय कर सकता है।।६५।।

विनारणयोगः

सितेन्दुजौ चतुर्थगौ निशाकरश्च सप्तमे ।
यदा तदा गतो नृपः प्रशास्त्यरीन् विनारणम् ।।६६।।

विनारण योग कहा जाता है। यात्रिक लग्न के चौथे स्थान में यदि

शुक्र और बुध हो एवं सातवें स्थान में चन्द्र अवस्थित हो तो विनारण योग होता है। इस योग में यात्रा करने से भूपति विना ही युद्ध के शत्रु को जयकर सकता है।।६६।।

अरिप्रध्वंसयोगः ।

एकान्तरर्क्षे भृगुजात्कुजाद्वा सौम्ये स्थिते सूर्यसुताद्गुरोर्व्वा ।
प्रध्वंसतेऽरिस्त्वचिराद्गतस्य वेशाधिकोभृत्यु इवेश्वरस्य।६७।

अरिप्रध्वंस योग कहा जाता है। शुक्र अथवा मंगल से तीसरे स्थान में पापग्रह अयुक्त बुध अवस्थित होने पर और शनि से तीसरे स्थान में बृहस्पति होने से अरिप्रध्वंसनामक योग होता है। इसमें यात्रा करने से प्रभु के वेशाधिक (अतिशय परिधानयुक्त) भृत्य जिस प्रकार नष्ट होते हैं उसी प्रकार यात्रिक के शत्रु शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।।६७।।

शशितामरसयोगः

गुरुरुदये रिपुराशिगतोऽर्को यदि निधने न च शीतमयूखः ।
भवति गतोऽत्र शशीव नरेन्द्रो रिपुवनिताननतामरसानाम्।।

शशितामरसंयोग वर्णित होता है। यात्रा के समय में यदि लग्न में बृहस्पति और लग्न के छठे स्थान में रवि हो एवं लग्न के आठवें स्थान में चन्द्र अवस्थित न हो तो शशितामरस योग होता है। उक्त योग में यात्रा करने से नृपति, जिस प्रकार चन्द्र पद्म का सङ्कोच करनेवाला होता है उसी प्रकार शत्रु की स्त्रियों के मुख कमल का सङ्कोचक होता है।।६८।।

शिलाप्रतरणयोगः

लग्नारिकर्म्महिबुकेषु शुभेक्षिते ज्ञे,
द्यूनान्त्यलग्नरहितेष्वशुभ ग्रहेषु ।।
यातुर्भयं न भवति प्रतरेत्समुद्रं,

यद्यश्मनापि किमुतारि समागमेन ॥६९॥

शिलाप्रतरण योग कहा जाता है यात्रा के समय यदि लग्न में अथवा लग्न के छठे, दशवें वा चौथे स्थान में बुधग्रह अवस्थित होकर शुभग्रह से दीखे एवं लग्न के सातवें, बारहवें और लग्न स्थान में पापग्रह न हो, तो शिलाप्रतरण योग होता है। उक्त योग में यात्रा करने से यात्रिक मनुष्य पत्थर का आश्रय करके भी समुद्र पार हो सकता है और समागम से उसको क्या भय हो सकता है॥६९॥

अरिशलभयोगः

मूर्त्तिवित्तसहजेषु संस्थिताः शुक्रचन्द्रसुततिग्मरश्मयः ।
यस्य यानसमये रणानले तस्य यान्ति शलभा इवारयः ॥

अरिशलभयोग कहा जाता है। यात्रा के समय लग्न में शुक्र लग्न के दूसरे स्थान में बुध और तीसरे स्थान में रवि होने से अरिशलभ योग होता है इसमें यात्रा करने से यात्रिक मनुष्य की युद्धानल से शत्रु समूह पतङ्ग की समान नष्ट होता है॥७०॥

अरिवैनतेययोगः

शुक्रवाक्यपतिबुधैर्धनसंस्थैः सप्तमे शशिनि लग्नगतेऽर्के ।
निर्गतो नृपतिरेति कृतार्थो वैनतेयवदरीन् विनिगृह्य ॥७१॥

अरिवैनतेय योग कहा जाता है। यात्रा के समय शुक्र, बृहस्पति और बुध, ग्रह लग्न के दूसरे स्थान में अवस्थित हों और लग्न के सातवें स्थान में चन्द्र एवं लग्न में रवि हो तो अरिवैनतेय नामक योग होता है। उक्तयोग में यात्रा करने से गरुड़ जिस प्रकार शत्रुओं को नष्ट करता है उसी प्रकार राजा भी शत्रुओं को नष्ट करके कृतार्थ होता है॥७१॥

अरियोषाभरणयोगः

त्रिषण्णवान्त्येष्वबलः शशांकश्चान्द्रिर्ब्बली यस्य गुरुश्च केन्द्रे ।

तस्यारियोषाभरणैः प्रियाणि प्रियः प्रियाणां जनयन्ति सैन्ये ।।

अरियोषाभरणयोग कहा जाता है। यात्रा के समय यदि बलहीन चन्द्र लग्न के तीसरे, छठे, नवें अथवा बारहवें स्थान में हो और बली बुध, एवं बृहस्पति लग्न के केन्द्र स्थान में हो तो अरियोषा भरणयोग होता है। इसमें यात्रा करने से उस राजा की सेना शत्रुओं की स्त्रियों के गहनों से अपनी अपनी स्त्रियों को प्रसन्न कर सकती है।।७२।।

राजयोगः

वर्गोत्तमगते लग्ने चन्द्रे वा चन्द्रवर्जितैः ।
चतुराद्यैर्ग्रहदृष्टैर्नृपाद्वा विंशतिः स्मृताः ।।७३।।

अनंतर यात्रा में राजयोग कहा जाता है। यात्रिक की जन्मराशि अथवा जन्मलग्न यदि वर्गोत्तमगत हो और चन्द्रमा के सिवाय यदि चार ग्रह उक्त स्थान को देखे तो बाईस प्रकार का राजयोग होता है।।७३।।

राजयोगफलम्

जातकोक्तनृपयोगगतानां प्रतिदिनं भवति राज्यविवृद्धिः ।
वातघूर्णितमिवार्णवयानं परबलं समुपैति (क) विनाशम् ।।

राजयोग में यात्रा का फल कहा जाता है। जो राजा राजयोग में यात्रा करता है उसका राज्य दिन दिन बढ़ता है। और अर्णवयान जिस प्रकार वायु द्वारा घूमता है उसी प्रकार उसके शत्रुओं का दल नष्ट होता है।।७४।।

उषायोगप्रशंसा

आरक्तसन्ध्यं रजनीविरामं वदन्त्युषायोगमिति प्रवीणाः ।
तत्र प्रयातुः सकलार्थसिद्धिः संलक्ष्यते हस्ततलस्थितेव।।७५।।

(क) वैरिणो बलमुपैतीति पाठान्तरम् ।

उषा काल कहा जाता है। रात्रि के शेषभाग में पूर्व दिशा के लाल होने पर पंडित लोग उस काल को ही उषा कहते हैं। उक्त समय यात्रा करने से हाथ में स्थित की समान यात्रिक के समस्त कार्य सिद्धि होते हैं।।७५।।

विजयस्नानोपवेशनार्थं धर्म्मविशेषकथनम्

श्वेतस्य बभ्रोरथवा वृषस्य चर्म्मान्तरे व्याघ्रमृगेन्द्रयोश्च ।
तत्स्थस्य कुर्य्यान्मनुजेश्वरस्य जयाभिषेकं विधिवत्पुरोधाः ।।

विजय स्नान कहा जाता है। श्वेतवर्ण वैल अथवा पिंगल वर्ण (भूरे) बैल के बिछे हुए चर्म के ऊपर वा व्याघ्र चर्म अथवा सिंह चर्म के ऊपर बैठे हुए राजा का जय के लिये पुरोहित यथा विधान से अभिषेक करे।।७६।।

विजयस्नानम्

क्रमान्मही रौप्यसुवर्णकुम्भैः क्षीरेण दध्ना हविषा च पूर्णैः ।
स्नायात्तु तोयैः सह सप्तमृद्भिः पश्चाच्च सर्वौषधिगन्धतोयैः ।।

विजयस्नान की विधि कहते हैं। प्रथम मट्टी के कुम्भ में दुग्ध, चांदी के कुम्भ में दही और सुवर्ण के कुम्भ में घृत पूर्ण करके उसके द्वारा विजय स्नान करावे तदनंतर सप्त मृत्तिकासंयुक्त जल तथा सर्वौषधि संयुक्त जल और गन्धयुक्त जल द्वारा स्नान कराना चाहिये।।७७।।

यात्रायां लोकपालादिपूजा

पूजयेल्लोकपालांश्च ग्रहान्सम्यग्दिगीश्वरान् ।
ब्राह्मणान्देवतां श्चैव कुलस्य नगरस्य च ।।७८।।

यात्रा में लोकपालादि की पूजा कही जाती है। यात्रा के समय दशदिक् पाल नवग्रह दिगधिपति ब्राह्मण कुलदेवता और ग्राम देवता की गन्ध पुष्पादि उपहार द्वारा पूजा करके ब्राह्मण को गौ

और हिरण्य (सुवर्ण) दान करना चाहिये।।७८।।

प्रथमबलिदानम्

द्वारत्रिकचतुष्काट्टपुरनिष्कुटवासिनः ।
महापथनदीतीरगुहा गिरिनिवासिनः ।।७९।।
विश्वरूपा महासत्त्वा महात्मानो महाबलाः ।
प्रमथाः प्रतिगृह्णीध्वमुपहारं नमोऽस्तु वः ।।८०।।

प्रमथ बलिदान मंत्र कहते हैं। द्वार तिराया चौराया बाजार पुर बाग राजमार्ग नदी तीर गुहा और पर्वतवासी सर्वमय सात्विकाग्रगण्य (अतिसौम्य) उदारस्वभाव महाबल प्रमथगण यह पूजा का उपहार ग्रहण कीजिये। आपको नमस्कार करता हूं। इस प्रकार बलिदान करना चाहिये।।७९-८०।।

द्वितीयप्रमथबलिदानस्वीकारः

निवृत्तयात्रः पुनरप्यहं विभो ,
विजित्य शत्रून्भवतां प्रसादतः ।
अतो विशिष्टं बहुवित्तमुत्तमं,
बलिं करिष्ये विधिनोपपादितम् ।।८१।।

दूसरा प्रमथ बलिदान कहा जाता है। हे विभो! आपके प्रसाद से शत्रुओं को जीतकर लौटने पर फिर आपको विधि विहित बहुमूल्य उत्तम बलि प्रदान करूंगा दी हुई बलि स्वीकार करने के अर्थ यह श्लोक पढ़ना चाहिये।।८१।।

यात्राग्रहणम्

व्रजेद्दिगीशं हृदये निवेश्य यथेन्द्रमैन्द्यामपरांश्च तद्वत् ।
सुशुक्लमाल्याम्बरभृन्नरेन्द्रो विसर्ज्जयेद्दक्षिणपादमादौ ।।

यात्रा ग्रहण (यात्रा विधि) कही जाती है। यात्रा करनेकी दिशा में अधिपति देवता को (पूर्व की ओर इन्द्र इत्यादि के क्रम से) हृदय

में चिंतनकर श्वेत पुष्पकी माला धारण और श्वेत वस्त्र पहरकर राजा प्रथज्ञ अपना दक्षिण पैर उठावे॥८२॥

यात्राक्रमः

कल्याणनामसचिवाप्तजनायुधीय,
दैवज्ञ विप्रजनकञ्चुकिमध्यसंस्थः ।
द्वात्रिंशतं समुपगम्य पदानि भूमौ,
प्रागादिनागरथवाजिनरैः प्रयायात् ॥८३॥

यात्रा का क्रम कहा जाता है। यात्रा करनेवाला राजा कल्याण अर्थात् मङ्गल सूचक मङ्गलराज जयराज रणसिंह विजयराज शिव और शुभङ्कर इत्यादि नामधारी मंत्री आत्मीय अस्त्रधर स्वीय-योद्धा दैवज्ञ विप्र (पुरोहितादि) और कञ्चु की (अन्तःपुर के वृद्ध सेवक) इन सब के मध्यस्थित होकर भूमि में बतीस पग चल पूर्व की ओर हाथी पर चढ़कर दक्षिण की ओर रथ पर चढ़कर पश्चिम की ओर घोड़े पर चढ़कर और उत्तर की ओर नरयान (डोला इत्यादि) पर चढ़कर गमन करे॥८३॥

यात्रासमये हस्तिनोऽशुभेङ्गितानि

स्खलितगतिरकस्मात्स्तब्धकर्णोऽतिदीनः,
श्वसितिमृदु सुदीर्घन्यस्तहस्तः पृथिव्याम् ।
द्रुतमुकुलित दृष्टिः स्वप्नशीलो विलोलो,
भयकृदहितभक्षी नैकशो विड्विमुक्च ॥८४॥

यात्रा के समय में हाथी के अशुभ सूचक गमन लक्षण कहते हैं। हाथी के ऊपर चढ़ने पर यात्रा के समय यदि हाथी की अकस्मात् गति भंग हो अथवा स्तब्धकर्ण (निश्चल श्रोत्र) आलसी और भूमि में सूँड़ डालकर दीर्घ श्वांस छोड़े अथवा शीघ्र आँखें आकुंचित करे या निद्राकुल हो जाने के मार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग में जाय और

बहुत मल त्याग करे तो यात्रा करनेवाले पुरुष को वह यात्रा भयदायक होती है।।८४।।

वल्मीकस्थाणुयुग्मक्षुपतरुमथनः स्वेच्छया हृष्टदृष्टि-
र्यायाद्या त्रानुलोमं त्वरितपदगतिर्व्वक्त्रमुन्नम्य चोच्चैः ।
कक्षासन्नाहकाले जनयति सुमहत् शीकरं बृंहितं वा,
तत्कालं वा मदाप्तो जयकृदथ रदं वेष्टयन् दक्षिणञ्च ।।८५।।

यात्रा के समय में हाथी के शुभसूचक गमन के लक्षण कहते हैं। हाथी पर चढ़कर यात्रा करने के समय यदि हाथी बमई छिन्न शाखावृक्ष (जिसकी डाली कटी हों) गुल्म (बेल विहीन) और क्षुपवृक्ष इन सबको इच्छानुसार तोड़े स्फुट दृष्टि अंधा हो और त्वरित गति (शीघ्रगामी) से मुख ऊंचा उठाकर गन्तव्य दिशा में गमन करे एवं पार्श्व बंधन (कमर कसना) के समय मुख से जल निकाले तथा शब्द करे और मत्त होकर अपना दक्षिण दांत सूँड़ से पकड़े तो यात्रिक को यात्रा में जय प्राप्त होती है।।८५।।

यात्रासमयेऽश्वस्याशुभेङ्गितानि

मुहुर्मुहुर्मूत्रशकृत्करोति न ताडचमानोऽप्यनुलोमयायी ।
अकार्य्यभीतोऽश्रुविलोचनश्च श्रियं न भर्त्तुस्तुरगोऽभिधत्ते ।।

यात्रा के समय में घोड़े के अशुभ सूचक गमन के लक्षण कहते हैं। घोड़े पर चढ़कर गमन करने के समय घोड़ा यदि बार बार मल और मूत्र त्याग करे और ताड़ना करने पर भी गन्तव्य दिशा को चले अकारण भय और नेत्रों से जल गिरे तो उस अश्वपति यात्रिक मनुष्य का यात्रा में मंगल नहीं होता।।८६।।

यात्रासमयेऽश्वस्य शुभेङ्गितानि

आरोहति क्षितिपतौ विनयोपपन्नो
यात्रानुगोऽन्यतुरगं प्रति ह्रेषते च ।

वक्त्रेण वा स्पृशति दक्षिणमात्मपार्श्वं
योऽश्वः स यातुरचिरात्प्रतनोति लक्ष्मीम् ॥८७॥

यात्रा के समय घोड़े के शुभसूचक गमन का लक्षण कहते हैं। यात्रा के समय राजा के घोड़े के ऊपर चढ़ने पर वह घोड़ा यदि विनय युक्त होकर गन्तव्य दिशा की ओर चले और अन्य घोड़े को देखकर शब्द करे एवं मुख द्वारा अपना दक्षिणपार्श्व स्पर्श करे, तो उस अश्वारोही पुरुष को यात्रा में मंगल होता है॥८७॥

यात्रायां स्वयमशक्तौ द्रव्यप्रस्थापनविधि

कार्य्यवशात्स्वयमगमे भूभर्त्तुः केचिदाहुराचार्य्याः ।
छत्रायुधाद्यभीष्टं वैजयिकं विनिर्गमे कुर्य्यात् ॥८८॥

यात्रा में द्रव्य स्थापन कहे जाते हैं। कोई कोई पंडित लोग कहते हैं कि राजा यदि कार्य्यवशतः स्वयं यात्रिक शुभ लक्षण में यात्रा करने में असमर्थ हो तो विजय सम्बन्धी छत्र और आयुधादि की यात्रा करावे॥८८॥

प्रस्थानविधिः

यात्रां त्रिपञ्चसप्ताहात्पुनर्भद्रेण योजयेत् ।
कैश्चिदिष्टफलावाप्तौ यात्रा परिसमाप्यते ॥८९॥

यात्रा के अनन्तर राजा के अवस्थित होने पर फिर यात्रा कही जाती है। यात्रा करके यदि एक स्थान में तीन दिन पाँच दिन अथवा सात दिन ठहरे तो फिर शुभ मुहूर्त्त देखकर यात्रा करनी चाहिये। इस प्रकार कोई कोई पंडित लोग कहते हैं कि वास्तविक जिस स्थान को यात्रा करे उस स्थान में न पहुँचने तक यात्रा भङ्ग नहीं होती॥८९॥

माङ्गल्यद्रव्यादिकथनम्

सिद्धार्थकादर्शपयोऽञ्जनानि वद्धैकपश्वामिषपूर्णकुम्भाः ।
उष्णीषभृंगारनृवर्द्धमानपुंयानवीणातपवारणानि ॥९०॥

यात्रा में माङ्गल्य द्रव्य दर्शन और स्पर्शनादि कहते हैं। सिद्धार्थ (श्वेत सरसों) आदर्श (दर्पणं) पयः (दुग्ध) अञ्जन बन्धा हुआ एक पशु मांस, जलपूर्ण कुम्भ, उष्णीष (शिर से बांधने का दुपट्टा) भृङ्गार (जल पात्र विशेष) समृद्धि और यश द्वारा उच्चाभिलाषी मनुष्य को नरयान (पालकी इत्यादि) वीणा और छत्र यह समस्त द्रव्य मंगल जनक है।।९०।।

दधिमधुघृतरोचनाकुमार्य्यो ध्वजकनकाम्बुजभद्रपीठशंखाः ।
सितवृषकुसुमाम्बराणि मीनद्विजगणिकाप्तजनाश्च चारुवेषाः।।

दधि मधु घृत रोचन (गोरोचन के अभाव में हलदी) कुमारी (कन्या) ध्वज, स्वर्ण, पद्म, भद्रपीठ, (भद्रासन) शंख, श्वेतवर्ण बैल, पुष्प, वस्त्र, मत्स्य, द्विज, वेश्या, और मनोहर वेषधारी आत्मीय मनुष्य यात्रा में शुभजनक होते हैं।।९१।।

ज्वलितशिखिफलाक्षतेक्षुभक्ष्यद्विरदवरांकुशचामरायुधानि ।
मरकतकुरुविन्दपद्मरागस्फटिकमणि प्रमुखाश्च रत्न भेदाः।।

जलती हुई अग्नि, मनोहर फल, गन्ना भक्ष्यद्रव्य श्रेष्ठ हाथी अंकुश चामर शस्त्र मरकत पत्थर (मणि विशेष) कुरुविन्द पत्थर पद्मराग मणि स्फटिकमणि इत्यादि एवं अन्य जो सब रत्न हैं यह सभी मांगल्य द्रव्य हैं।।९२।।

स्वयमथ रचितान्ययत्नतो वा,
यदि कथितानि भवन्ति मङ्गलानि ।
स जयति सकलां ततो धरित्रीं ग्रहणदृगालभनश्रुतै रुपास्यः।।

पूर्वोक्त मांगल्य द्रव्य यदि यात्रा के समय अयत्न से अकस्मात् प्राप्त हो अथवा कहे जायँ तो यात्रिक राजा श्वेत सरसों इत्यादि द्रव्य भली भांति ग्रहणकर स्पर्श योग्य वेश्या का दर्शनकर तथा फलादिकों को स्वीकार कर और वीणा गीतादि को सुनकर यात्रा करने से समस्त पृथ्वी को जय कर सकता है।।९३।।

अमङ्गलद्रव्यकननं यात्रायां तेषांदर्शनादिभिरशुभ निर्द्देशश्च

कार्पासौषधकृष्णधान्यलवणक्लीबास्थितैलंवसा,

पकाङ्गारगुणाहिचर्म्मशकृतः केशाय सव्याधिताः ।

वान्तोन्मत्तजटीन्धनं तृणतुषक्षुत्क्षामतक्रारियो,

मुण्डाभ्यक्तविमुक्तकेशपतिताः काषायिणश्चाशुभाः ।।९४।।

यात्रा में अमङ्गल द्रव्य कहे जाते हैं। यात्रा के समय में कपास औषधि क्लीब (नपुंसक) अस्थि तैल वसा (मेद) पङ्क (कीच) अंगार गुड़ सर्प चर्म्म मल केश लोहद्रव्य (कुठारादिशस्त्र इत्यादि) रोग पीडित मनुष्य वमन वातुल (वादीयुक्त) जटाधारी मनुष्य काष्ठ तृण तुष(भुस्सी)दरिद्री मट्ठा शत्रु मुँड़ा हुआ शिर कृताभ्यंग (तैल लगाये) खुलेबाल पतित और ब्रह्मचारी इत्यादि का दर्शन करने से अमंगल होता है।।९४।।

स्वप्नदर्शनफलम्

यान्यत्र मङ्गलामङ्गलानि निर्गच्छतां प्रदिष्टानि ।

स्वप्नेष्वपि तानि शुभाशुभानि विष्ठानुलेपनं धन्यम् ।।९५।।

स्वप्न देखने का शुभाशुभ फल कहा जाता है यात्रा के समय जिस सब मांगल्य द्रव्यों का देखना और स्पर्शनादि में यात्रिक मंगला मंगल कहा गया है। स्वप्न में भी उन्हीं सब द्रव्यों के देखने और स्पर्शनादि से उसी प्रकार शुभा शुभ फल होगा। किंतु विष्ठालेपन करने से धन लाभ होता है।।९५।।

यात्रायां मनःशुद्धिप्रशंसा

शुभाशुभानि सर्व्वाणि निमित्तानि स्युरेकतः ।

एकतस्तु मनोयातुस्तद्विशुद्धिर्ज्जयावहा ।।९६।।

यात्रा में मन शुद्धि की प्रशंसा कही जाती है शुभ सूचक और अशुभ सूचक के कारण तिथि नक्षत्र एवं वार इत्यादि और यात्रिक का मन यह दोनों ही यात्रा में समान हैं। इसलिये तिथि नक्षत्रादि

श्रेष्ठ होने पर भी मन प्रसन्न न होने से यात्रा शुभदायक नहीं होती। अतएव मन प्रसन्न होने पर ही यात्रा का शुभ होता है।।९६।।

यात्रादिने भोजनार्थसाधितान्नादिभिरशुभशुभज्ञानम्

अस्वाद्वक्षत (१) कचमक्षिकानुविद्धं,
दुर्गंधं क्षयकृदभूरि यच्च दग्धम् ।
सुस्विन्नं शुचि रुचिरं मनोऽनुकूलं
स्वाद्वन्नं बहुविजयाययानकाले ।।९७।।

यात्रा के दिन में अन्न भक्षण द्वारा अशुभ और शुभ कहा जाता है। यात्रा के दिन राजा यदि स्वाद रहित अन्न अपक्व अन्न केश और मक्खी युक्त अन्न अल्प अन्न और दुग्ध का बना हुआ द्रव्य भोजन करके गमन करता है तो उसका विनाश होता है। अरि सुसिद्ध अन्न (शत्रु संपादित) पवित्र अन्न सुदृश्यान्न (उत्तम) मन को तृप्त करनेवाला अन्न सुस्वादु अन्न और बहुत अन्न भोजन करने से यात्रिक की जय होती है।।९७।।

पूर्व्वादिचतुर्द्दिक्षुभोजनविधिः ।

प्रागादिषु घृतं तिलौदनं मत्स्याः क्षीरमिति प्रदक्षिणम् ।
अद्यान्नृपतिर्यथादिशं नक्षत्रादिविहितञ्च सिद्धये ।।९८।।

पूर्वदिशा को विशेष गमन में भक्षणीय द्रव्य का विशेष कहा जाता है। राजा पूर्व दिशा की ओर प्रदक्षिण के क्रम से घृत तिलान्न मत्स्य और क्षीर भोजन करे। अर्थात् पूर्व की ओर गमन में घृत दक्षिण के गमन में तिलान्न पश्चिम के गमन में मत्स्य और उत्तर के गमन में दुग्ध भोजन करना चाहिये। जिस दिशा में जो द्रव्य कहा गया है। उस दिशा के गमन में उसी द्रव्य और नक्षत्र विहित द्रव्य भक्षण करने से यात्रिक की इष्ट सिद्धि होती है।।९८।।

---

(१) मक्षिकाकचसिकतानुविद्धमितिपुस्तकान्तरे पाठान्तरम् ।

यात्रासमये वातशुभलक्षणम् ।

अनुलोमगते प्रदक्षिणे सुरभौ देहसुखेऽनिले गतः ।
तिमिराणि गभस्तिमानिव प्रसभं हन्ति बलानि विद्विषाम् ।।

यात्रा के समय वायु के शुभलक्षण कहते हैं। यात्रा के समय वायु यदि गन्तव्य दिशा के अनुकूल ही चले सद्गन्धयुक्त और शरीर को सुखदायक हो तो सूर्य जिस प्रकार अंधकार समूह को नष्ट करता है उसी प्रकार यात्रिक शत्रु की सेना को सहसा नष्ट करता है।।९९।।

वैजयिकम्

उपपत्तिरयत्नतो यदा फलयानासनरत्नवाससाम् ।
प्रमदाक्षितिदन्तिवाजिनां विजयद्वारमनावृतं तदा ।।१००।।

फलादि के लाभ में शुभफल कहा जाता है। यात्रा के समय यात्रिक को अयत्नक्रम से यदि फल पान आसन रत्न वस्त्र स्त्री भूमि हाथी और घोड़ा प्राप्त हों तो निःसंदेह विजय होती है।।१००।।

यात्रासमये देहस्पन्दनफलम्

दक्षिणपार्श्वस्पन्दनमिष्टं हृदयं विहाय पृष्ठञ्च ।
कण्डूयनं नरपतेर्द्दक्षिणपाणौ जयायैव ।।१०१।।

यात्रा के समय देहस्पन्दन का फल कहा जाता है। यात्रा के समय यात्रिक मनुष्य के हृदय और पीठ के अतिरिक्त दक्षिणपार्श्व फड़कने पर शुभ फल होता है और राजा का दक्षिण हाथ खुजाने पर भी जय प्राप्त होती है।।१०१।।

यात्रासमये ध्वजभंगादिभिरशुभकथनम् ।

ध्वजातपत्रायुधसन्निपातः क्षितौ प्रयाणे यदि मानवानाम् ।
उत्तिष्ठतो वाम्बरमेति संगं पातोऽथवा तंनृपतेः क्षयाय। १०२।

यात्रा के समय ध्वजादि पतन द्वारा अनिष्ट फल वर्णित होता है। युद्ध में जाने के समय सैनिकों से यदि पृथ्वी में ध्वजा छत्र और

अस्त्र गिरे तो राजा का विनाश होगा और उठते समय यात्री का वस्त्र यदि किसी प्रकार भूमि में लगे अथवा गिरे तो भी राजा का विनाश होता है।।१०२।।

बलोत्साहेन शुभकथनम् ।

संग्रामे वयममरद्विजप्रसादाज्जेष्यामो रिपुबलमाश्वसंशयेन । यस्यैवं भवति बले जनप्रवादः सोऽल्पोऽपि प्रचुरबलं रिपुं निहन्ति ।।१०३।।

यात्रा के समय यात्रिक के बलोत्साह द्वारा शुभफल कहा जाता है। "हम देवता और ब्राह्मणों के प्रसाद से युद्ध में शीघ्र ही निःसंदेह शत्रु की सेना को जीत सकेंगे" इस प्रकार जनप्रवाद युद्ध में जाने के समय जिस राजा की सेना में उपस्थित हो उस राजा की थोड़ी सेना होने पर भी शत्रु की बहुत सी सेना का नाश कर सकते हैं।।१०३।।

यात्रायां क्रव्यादपक्षिभिः शुभाशुभकथनम् ।

वाहिनीं समुपयाति पृष्ठतो मांसभुक्खगगणो युयुत्सवः । तस्य चाशु बलविद्रवो महानग्रगैस्तु विजयो विहङ्गमैः ।।१०४।।

सेना के गमन काल में मांस भोजी पक्षियों द्वारा शुभाशुभ वर्णित होता है। जो रण की इच्छा करनेवाले राजा की सेना के पीछे मांस भोजी गृध्रादि पक्षिगण गमन करें तो उस राजा की सेना शीघ्र ही क्षय को प्राप्त होती है। और सेना के सामने होकर पक्षिगणों के अनुकूल दिशा को गमन करने पर युद्ध में जय प्राप्त होती है।।१०४।

गच्छतो वामहस्तशुभशकुनानि

शिवा श्यामा बला छुच्छूः पिंगला गृहगोधिका ।

सूकरी परपुष्टा च पुंनामानश्च वामतः ।।१०५।।

गमन काल में वामदिक् स्थित शुभ शकुन कहे जाते हैं। शृंगाली (गीदड़ी) कपोतिका (कबूतरी) बला (बगली) छछूंदर

(छिपकली) पिंगला टीक्टीकी सूकरी और कोकिल यह सब और अन्य पुंसंज्ञक पक्षिगण गमनकाल में यात्रिक के बायें भाग में होने से शुभफल होता है।।१०५।।

गच्छतो दक्षिणस्थशुभशकुनानि

स्त्रीसंज्ञाश्चाषभषककपिश्रीकर्णचित्कराः ।
शिखिश्रीकण्ठ पिप्पीकरुरुश्येनाश्च दक्षिणाः ।।१०६।।

गमनकाल में दक्षिण भाग स्थित शुभशकुन कहे जाते हैं। स्त्री संज्ञकपक्षि शुक, भसक (पक्षि विशेष), वानर, श्रीकर्ण, चित्कर (मृग विशेष), मोर, श्रीकण्ठ, चातक, हरिण और श्येनपक्षि यह सब यात्रिक के दक्षिण भाग में होने से शुभ होते हैं।।१०६।।

दग्धादिनिर्णयः

मुक्तप्राप्तैष्यासु फलं दिक्षु तथाविधम् ।
अंगारदीप्तधूमिन्यस्ताश्च शांतास्ततोऽपराः ।।१०७।।

दिक्भेद से शकुन सम्बन्ध में शुभाशुभ वर्णित होता है। चक्र के भ्रमणवशतः जिस दिशा में सूर्य अवस्थित हो उस दिशा का नाम प्राप्त सूर्य्या है उसके पीछे की दिशा का नाम मुक्तसूर्य्या और उसके सन्मुख भाग का नाम ऐष्य सूर्य्या है। रात्रि के शेष चार दण्ड से दिन के चार दण्डपर्य्यंत ऐशानीदिक् मुक्तसूर्य्या पूर्वदिक् प्राप्त सूर्य्या और आग्नेयीदिक् ऐष्यसूर्य्या है इस प्रकार दिन चार दण्ड के पीछे से डेढ़ प्रहर पर्य्यंत आग्नेयीदिक् मुक्तसूर्य्या दक्षिणदिक् प्राप्त सूर्य्या नैर्ऋतीदिक् ऐष्यसूर्य्या ढ़ाई प्रहर से साढ़े तीन प्रहर तक दक्षिणदिक् मुक्तसूर्य्या नैर्ऋतीदिक् प्राप्त सूर्य्या पश्चिमदिक् ऐष्यसूर्य्या दिन के साढ़े तीन प्रहर पीछे से रात्रि के चार दण्डपर्य्यंत नैर्ऋतीदिक् मुक्तसूर्य्या पश्चिमदिक् प्राप्तसूर्य्या वायवीदिक् ऐष्यसूर्य्या रात्रि चारदण्ड पीछे से रात्रि डेढ़ प्रहर पर्य्यंत पश्चिमदिक् मुक्तसूर्य्या

वायवीदिक् प्राप्तसूर्य्या उत्तरादिक् ऐष्यसूर्य्या रात्रि डेढ़ प्रहर के पीछे से ढ़ाई प्रहर पर्यंत वायवीदिक् मुक्तसूर्य्या उत्तरादिक् प्राप्त सूर्य्या ऐशानीदिक् ऐष्यसूर्य्या और रात्रि के ढ़ाईप्रहर के पीछे से साढ़े तीन प्रहरपर्य्यंत उत्तरादिक् मुक्तसूर्य्या ऐशानीदिक् प्राप्त सूर्य्या और पूर्वदिक् ऐष्यसूर्य्या होती है। मुक्तसूर्य्या दिशा का नाम अङ्गार प्राप्त सूर्य्या दिशा का नाम दीप्त और ऐष्यसूर्य्या दिशा का नाम धूमिनी है। यात्रा के समय इन सब दिशाओं में शकुन अवस्थित होने पर नामानुरूप अशुभफल होता है। इन तीन दिशाओं के अतिरिक्त अन्य पांच दिशाओं का नाम शांता है, शांता दिशा में शकुन उपस्थित होने पर शुभ होता है।।१०७।।

हर्म्यादिस्थानस्थितशकुनस्य शुभकारकत्वकथनम्

हर्म्म्यप्रासादमांगल्यमनोज्ञस्थानसंस्थिताः ।
श्रेष्ठामधुरसक्षीरफलपुष्पद्रुमेषु च ।।१०८।।

अट्टालिकादि स्थानस्थित शकुन के लक्षण कहे जाते हैं। ईंटों से बना हुआ गृह देवग्रह गोबर इत्यादि से लिपा हुआ स्थान पुष्पादियुक्त स्थान मधुर वृक्ष अर्कादि वृक्ष और पुष्पयुक्त वृक्ष इन सब स्थानों में यात्रा के समय बैठा हुआ शकुन (पक्षि) शुभफल देता है।।१०८।।

चितादिस्थानावस्थितशकुनस्याशुभत्वम्

चिताकेशकपालेषु मृत्युबन्धभयप्रदाः ।
कण्टकिकाष्ठभस्मस्था कलहायासदुः खदाः ।।१०९।।

चिता स्थान में बैठे हुए शकुन अशुभ लक्षण कहा जाता है। यात्रा के समय श्मशान में बैठा हुआ पक्षि देखने से यात्रिक की मृत्यु केशमध्य स्थित (बालों के ऊपर) पक्षि देखने से बन्धन और मनुष्य के मस्तक पर बैठा हुआ पक्षि देखने से भय होता है। और कांटेदार

वृक्ष के ऊपर बैठा हुआ पक्षि देखने से कलह तथा काष्ठ के ऊपर बैठा हुआ पक्षि देखने से परिश्रम एवं भस्म के ऊपर बैठा हुआ पक्षि देखने से यात्रिक को दु:ख उपस्थित होता है।।१०९।।

यात्रायां काकस्य शुभत्वम्

ध्वाङ्क्षःपार्श्वद्वयेनापि शस्तो यात्रानुलोमगः ।
यातुः कर्णसमो ध्वाङ्क्षः क्षेमेणार्थप्रसाधकः ।।११०।।

यात्रा में काक के सम्बंध में शुभफल कहा जाता है। काक यात्राकालीन दोनों पार्श्व में ही अनुकूल दिशा में जाने से श्रेष्ठ होता है। और यदि काक यात्रा के समय यात्री के कर्ण समस्थानगत हो (कान की बराबर ऊंचे स्थान में बैठा हो) तो मंगलार्थ साधक होता है।।११०।।

यात्रायां काकाशुभत्वम्

विरुवंश्चाग्रतः पक्षौ धुन्वन्ध्वाङ्क्षो भयप्रदः ।
प्रत्युरश्चोपसर्पंस्तु संस्पृशंश्च भयङ्करः ।।१११।।

काक के सम्बन्ध में अशुभ फल कहा जाता है। यात्रा के समय काक यदि दोनों पंखों को हिलाकर यात्री के सन्मुख शब्द करे तो यात्रा भयदायक होगी। और यात्रा के समय काक यात्री का वक्षः देश स्पर्श करने पर भी यात्रा भयदायक होती है।।१११।।

गवादिचेष्टावशेन शुभाशुभकथनम्

अनुलोमे वृषो नर्द्दन्धन्यो गौर्म्महिषस्था ।
गमनप्रतिषेधाय खरः प्रत्युरसि स्थितः ।।११२।।

यात्रा के समय गौ इत्यादि की चेष्टादि देखने से शुभाशुभ फल कहा जाता है। यात्रा के समय बैल गौ और भैंस अनुलोमादिगत (यथाक्रम) होकर शब्द करने से यात्री को शुभफल होता है। किंतु यात्री के सन्मुख यदि गधा प्रतिलोमगत (विपरीत) हो तो यात्रा से

निवृत्त होना श्रेष्ठ है।।११२।।

शिवाचरितशुभाशुभकथनम्

प्राच्युदीच्योः शिवा शस्ता शान्ता सर्व्वत्र शोभना ।
धूमिताभिमुखी हन्ति स्वरदीप्ता दिगीश्वरान् ।।११३।।

शिवाचरित्र कहा जाता है। यात्रा के समय शिवा यदि पूर्वदिशा अथवा उत्तर दिशा में अवस्थित हो तो शुभदायक होती है। और शब्द शून्य शिवा सब दिशाओं में शुभदायक होती है। एवं पूर्वोक्त धूमिताभिमुखी होकर शिवा यदि क्रूररव करे तो उस दिशा का जो अधिपति (क) हैं उनकी मृत्यु होती है।।११३।।

कुक्कुरशुभाशुभकथनम्

नृहयातपवारणेभशस्त्रध्वजदेहानवसूत्रयाञ्जयाय । सभयो
सभयो विचरन्विना निमित्तं,
न शुभश्चाभिमुखे भ्रमँल्लिखन्गाम् ।।११४।।

कुक्कुर का चरित्र कहा जाता है। यात्रा के समय कुत्ता यदि मनुष्य, घोड़ा, छत्र, हाथी, शस्त्र और ध्वजदण्ड के चारों ओर भ्रमण करे तो यात्री की जय होती है किंतु निमित्त के अतिरिक्त कुत्ते के भययुक्त होकर भ्रमण करने पर वा मार्ग के सामने शब्द करने से अथवा नखद्वारा भूमि खोदने पर यात्री को शुभफल नहीं होता।।११४।।

शकुनापवादः

द्वन्द्वरोगार्दितास्त्रस्ताः कलहामिषकांक्षिणः ।
आपगान्तरिता मत्ता न ग्राह्याः शकुनाः क्वचित् ।।११५।।

शकुनापवाद कहा जाता है। यात्रा के समय स्त्री और पुरुष,

(क) बृहद्यात्रा में राजा कुमार नेता और दूतादि क्रम से दिगधिपति वर्णित हुए हैं।

शकुन (पक्षि) परस्पर स्नेह पीडित रोगार्त्त भीत कलहाकांक्षी, मांसाभिलाषी, नदीव्यवहित (नदी के दोनों तट पर) अथवा कामार्त्त होने से यात्री के सम्बन्ध में शुभाशुभ फल प्रदान नहीं करते।।११५।।

युगपदृष्टस्य शुभाशुभशकुनद्वयस्य बलाबलयोगफलनिर्द्देशः

विसर्ज्जयति यद्येको एकश्च प्रतिषेधति ।
स विरोधोऽशुभो यातुर्ग्राह्यो वा बलवत्तरः ।।११६।।

एक कालीन शुभाशुभ दो शकुनों का फल कहा जाता है। यदि यात्रा के समय एक शकुन शुभदायक और अन्य शकुन अशुभदायक हो तो यात्री को अशुभ होता है। किंतु बलहीन और बलयुक्त ग्रहण करके शुभाशुभ विचारना चाहिये।।११६।।

रिक्तकुम्भस्यानुकूलत्वादिनाशुभकथनम्

रिक्तः कुम्भोऽप्यनुकूलः शस्तोऽम्भोर्थं पिपासतः ।
चौर्य्यविद्या वणिज्यार्थमुद्यतानां विशेषतः ।।११७।। (क)

शून्यकुम्भ के सम्बन्ध में शुभफल कहा जाता है। यात्रा के समय शून्य कुंभ लेकर यदि कोई जल लाने के लिये यात्रानुकूल दिशा में जाय तो यात्री को शुभ होता है। चौर्य्य विद्या (चुराने की विद्या) और वाणिज्यार्थी मनुष्य को ऐसा कुम्भ देखने से विशेष शुभ होता है पूर्ण कुम्भ अथवा शून्य कुम्भ प्रतिकूलगामी होने से शुभदायक नहीं होता। स्थापित पूर्ण कुम्भ शुभफल दायक और स्थापित शून्य कुम्भ अशुभ सूचक होता है।।११७।।

यात्रायामुत्तानशय्यादीनां दर्शनादिभिरशुभकथनम्

उत्तानशय्यासनवातसर्पनिष्ठचूतदुर्द्दर्शनमैथुनानि ।

(क) रिक्तकुम्भोऽनुकूश्च शस्तोऽस्तोऽर्थीयियासत इत्येव पाठः टीकासम्म ततया समीचीनः ।

नेष्टानि शब्दाश्च तथैव यातुरागच्छतिष्ठप्रविशस्थिराद्याः ।।

उत्तानशय्यादि (ऊंची खड़ी) देखने में अशुभ फल कहा जाता है। यात्रा के समय ऊर्द्धमुख खट्वादि विपरीत आसन अधोवायु त्याग निष्ठीवन थूथू और श्लेष्म कफ विष्ठादि देखना एवं मैथुन देखना यात्री को शुभ दायक नहीं होता और यदि आगमन कर ठहर प्रवेश कर स्थित होओ इत्यादि आह्वान सूचक वाक्य कोई कहे तो यात्री को शुभफल नहीं होता।।११८।।

क्षुतफलम्

सर्व्वतः क्षुतमशोभनमुक्तं गोक्षुतं मरणमेव करोति ।
केचिदाहुरफलं बलात्कृतं वृद्धपीनसितबालकृतश्चयत् ।११९।

क्षुत अर्थात् हुचकी का फल कहा जाता है। यात्रादि समस्त कार्यों में और प्रवेश में हुचकी अशुभदायक होती है यात्रा में गौ की हाँची (हुचकी विशेष) मृत्युजनक होती है। कोई कोई कहते हैं कि तृष्णादि द्वारा बलपूर्वक कृत हाँचीर (कृत्रिमहुच की) वृद्ध की हुचकी श्लेष्म रोग जनित हुचकी और बालक की हुचकी यह सब शुभाशुभ कुछ भी नहीं देती। यह अनेक पंडितों का मत है।।११९।।

अशुभशकुनप्रायश्चितम्

क्रोशादूदक्रूदर्ध्वं शकुनचरितं निष्फलं प्राहुरेके ,
तत्रानिष्टे प्रथमशकुने मानयेत्पञ्च षड्वा ।
प्राणायामान्नृपतिरशुभे षोडशैव द्वितीये ,
प्रत्यागच्छेत्स्वभवनमतो यद्यनिष्टं तृतीयम् ।।१२०।।

अशुभ शकुन के सम्बन्ध में प्रायश्चित्त कहा जाता है। एक कोश से ऊपर शकुन के सम्बन्ध में शुभाशुभ फल कुछ भी नहीं होता, ऐसा अनेक पण्डितों का मत है, एककोश के मध्य में अनिष्ट सूचक शकुन दिखाई देने पर नरपति पांच वार अथवा छै वार प्राणायाम करके

गमन करै। दूसरी वार अशुभ सूचक शकुन दिखाई देने पर राजा को सोलह वार प्राणायामपूर्वक गन्तव्य दिशा में गमन करना उचित है और तीसरी वार अनिष्ट सूचक शकुन दिखाई देने पर गन्ता (यात्री) यात्रा भंग करके अपने घर लौट आवे।।१२०।।

बलादिषु दद्रुविचर्च्चिकादिरोगोत्पत्त्या अशुभफलनिर्द्देशः

दद्रुप्रतिश्यायविचर्चिकाद्याः कर्णाक्षिरोगाः पिटकोद्भवाश्च ।
प्रायो बलेनेतरि वा नृपे वा जानीत राज्ञो भयंकारणं तत् ।।

सैन्यादिकी रोगोत्पत्ति द्वारा अशुभफल वर्णित होता है। दाद, पीनस, विचर्चिका, (कुष्ठ विशेष) कर्ण और अक्षिपीड़ा (नेत्र रोग) एवं विस्फोटकादि रोग यदि सैन्य सेनापति अथवा राजा के शरीर में हो, तो राजा की यात्रा भय का कारण होगी। हे पण्डितो! तुम इस विषय से ज्ञात होओ।।१२१।।

सुखोदर्कजयलक्षणानि

शुभा मृगपतत्त्रिणो मृदुसमीरणाह्लादकृद्ग्रहाः ।
स्फुटमरीचयो विगतरेणुदिङ्मण्डलम् ।
यदन्यदपि वैकृतं न विजयावसाने,
भवेत्तदा सुखमकण्टकं नृपतिरत्ति देशं रिपोः ।।१२२।।

युद्ध जीतने के पीछे शुभ सूचक लक्षण कहे जाते हैं। युद्ध जीतने के पीछे यदि मृग और पक्षिगण शुभ सूचक हो अर्थात् शांत दिशा में अवस्थित होकर शांत शब्द करे और मृदु वायु आह्लादजनक हो ग्रहगण स्फुटकिरण हो, दिङ्मण्डल धूलि रहित हो और किसी प्रकार वैकृत (उत्पात) उत्पन्न न हो, तो राजा निष्कण्टक शत्रुका राज्य भोग सकता है।।१२२।।

असुखोदर्कजयलक्षणानि ।

दिग्दाहक्षतजरजोऽश्मवृष्टिपातैर्निर्घातक्षितिचलनादिवैकृतैश्च ।

युद्धान्ते मृगशकुनैश्च दीप्तनादैर्नो भद्रं भवति जितेऽपि पार्थिवस्य

युद्ध जीतने के पीछे अशुभ सूचक लक्षण कहे जाते हैं। युद्ध जीतने के पीछे यदि दिग्दाह, रक्तवृष्टि, पाषाण वृष्टि, निर्घात (गर्जना) और भूमिकम्पादि वैकृत (उत्पात) उपस्थित हों, एवं मृग और शकुन (पक्षी) क्रूरनाद करें और सूर्य के सम्मुख अवस्थित हों, तो राजा के युद्धमें जयलाभ करने पर भी शुभफल नहीं होगा।। १२३।।

ब्राह्मणादीनां धनग्रहणनिषेधस्त्यक्तवाहनादीनांहननिषेधश्च

परविषयपुराप्तौ साधुदेवद्विजस्वं,
कुलजनवनिताश्चक्ष्माधिपो नोपरुन्ध्यात् ।
विगजतुरगशस्त्रानार्त भीतांश्च हन्यात् ,
शुभ तिथिदिवसर्क्षे हृष्टसैन्योविशेच्च ।।१२४।।

युद्ध जीतने के पीछे ब्राह्मणों का धनग्रहण निषेध और त्यक्तवाहन मनुष्यों (जिन्होंने सवारी का परित्याग किया हो) की हिंसावर्जन कथित होता है। राजा शत्रु के राज्य और नगर को सम्यक् प्रकार प्राप्त होकर साधु देवता और ब्राह्मणों का धन हरण अथवा कुल स्त्रियों का अवरोध (रोक लेना) न करे और पलायन के समय में हाथी तथा घोड़े से गिरे अस्त्ररहित पीड़ित और भीत मनुष्यको हनन न करे। शुभतिथि, शुभदिन,और शुभ नक्षत्र में सेना के प्रसन्न चित्त होने पर अपनी पुरी में प्रवेश करना चाहिये।। १२४।

यथोक्तशास्त्रार्थकारिणो राज्ञः परमाभ्युदयकथनम्

इति मनुजपतिर्यथोपदेशं भगणविदां प्रकरोति यो वचांसि ।
स सकलनृपमण्डलाधिपत्यं व्रजति दिवीव पुरन्दरोऽचिरेण ।।

यथोक्त शास्त्रार्थ के प्रति श्रद्धावान् राजा का परम मंगल कथित होता है। जो राजा ज्योतिर्विदों के इस यथोक्त वाक्य का आचरण करता है, वह शीघ्र ही स्वर्गस्थ इन्द्र की समान समस्त राजमण्डल

के ऊपर आधिपत्य स्थापन कर सकता है।।१२५।।

अथ परीक्षाविधिः

नो शुक्रास्तेऽष्टमेऽर्केगुरुसहितरवौजन्ममासेऽष्टमेन्दौ,
विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ ।
नाडीनक्षत्र हीने गुरुरविरजनीनाथताराविशुद्धौ ,
प्रातः कार्या परीक्षा द्वितनुचरगृहांशोदये शस्तलग्ने ।।१२६।।

अब मिथ्यापवाद ग्रस्त मनुष्य की सर्प घटादि द्वारा परीक्षा कही जाती है। शुक्रग्रह अस्तगत न होने पर गोचर में रवि अष्टम के अतिरिक्त स्थान में होने से एवं गुर्वादित्य योगजन्ममास, अष्टम चन्द्र, विष्टिभद्रा, मलमास, और शनिवार, जन्मतारा एवं नाड़ी नक्षत्र के अतिरिक्त बृहस्पति, रवि चन्द्रमा, और ताराशुद्ध होने से द्व्यात्मक और चरलग्न के नवांश में प्रशस्त लग्न में प्रातः समय परीक्षा करनी चाहिये।।१२६।।

अग्निग्रहणम्

वह्निग्रहं कुजगुरुज्ञदिनेशवारे ,
माघादिषट्सु च मृदुध्रुववह्निभेषु ।
कुम्भाजभांशकविलग्नमशुद्धकालं ,
लग्नस्थशीतगुसितौ च विहाय कुर्यात् ।।१२७।।

अग्निग्रहण रूप परीक्षा के सम्बन्ध में विशेष कथित होता है। मंगल, बृहस्पति, बुध और रविवार में, माघादि छः मास में, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी और कृत्तिका नक्षत्र में कुम्भ, मेष और जलज राशि का नवांश और लग्न के अतिरिक्त काल शुद्धि परित्याग करके लग्न में चन्द्रमा और शुक्र के न होने पर अग्निग्रहण करे।१२७।

मोक्षदीक्षा

जीवार्केन्दूडुशुद्धौ ध्रुवमृदुभगणे चोत्तरस्थे दिनेशे ,
प्रव्रज्येशे स्ववीर्य्ये स्थिरभवनविलग्नस्थितेऽर्केज्य वारे ।
प्रव्रज्याख्येषु योगेष्वशुभगगनगैर्वीयहीनैः सुवीर्ये,
जीवे धर्मस्मरे वा स्थिर भवननवांशोदये मोक्षदीक्षा ।।१२८।।

मोक्षदीक्षा कथित होती है। बृहस्पति, रवि और चंद्र गोचर मे शुद्ध होने से ताराशुद्धि होने पर उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, और रेवती नक्षत्र में उत्तरायण में प्रव्रज्याधिपति ग्रह बलवान् अवस्था से स्थिर लग्न में होने से रवि अथवा बृहस्पतिवार में प्रव्रज्याख्य योग में अशुभग्रहों के हीनवीर्य होने पर बलवान् बृहस्पति नवम वा सप्तम स्थान में होने से स्थिर राशि की लग्न में अथवा नवांश के मोक्षदीक्षा (संन्यास ग्रहण) करै।।१२८।।

जन्मसमये मरणसमये वा मोक्षनिर्णयः

षष्ठाष्टमकण्टकगो गुरुरुच्चे भावमानलग्ने वा ।
शेषैरबलैर्ज्जन्मनि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः ।।१२९।।

मोक्षगति का निर्णय होता है। जिसके जन्मकाल वा मरणकाल में उच्चगृहस्थित बृहस्पति लग्न छठे और आठवें में हो अथवा लग्न में वा लग्न के चौथे, सातवें और दशवें राशिगत हो, उस मनुष्य की मोक्ष गति होती है और जन्म काल वा मरण समय में मीन लग्न में बृहस्पति अवस्थित होने पर और अन्य ग्रहगण बलहीन होने पर भी मोक्ष गति होती है। इस प्रकार ज्योतिर्विदों ने कहा है।।१२९।।

निधनस्थग्रहवशेन मरणनिर्णयः

सूर्य्यादिभिर्निधनगैर्हुतवहसलिलायुधज्वरामयजः ।
तृट्क्षुत्कृतश्च मृत्युः परदेशादौ चरादिभे निधने ।।१३०।।

अष्टमस्थित ग्रहद्वारा मृत्यु का निर्णय होता है। जन्म के समय लग्न के आठवें स्थान में सूर्यादि ग्रह अवस्थित होने पर क्रमशः अग्नि, जल, अस्त्र, ज्वर, अन्यरोग, तृष्णा और क्षुधाकृत मृत्यु होती है अर्थात् रवि आठवें स्थान में होने पर अग्नि से चन्द्रमा होने पर जल से मंगल होने पर अस्त्र से बुध होने पर ज्वर से बृहस्पति होने पर अन्य रोग से शुक्र होने पर तृष्णा से और शनि आठवें स्थान में होने पर क्षुधा से मृत्यु होती है और चरराशि अष्टम स्थान स्थित होने पर विदेश में मृत्यु स्थिर राशि अष्टम स्थानस्थ होने पर विदेश में मृत्यु और द्व्यात्मक राशि अष्टम स्थान स्थित होने पर मार्ग में मृत्यु होगी।।१३०।।

बलवद्ग्रहदर्शनादिभिर्न्निर्याणनिर्णयः

यो वा बलवान्निधनं पश्यति तद्धातुकोपजो मृत्युः ।
लग्नात्र्यंश पतिर्व्वा द्वाविंशत्कारणं मृत्योः ।।१३१।।

अष्टम स्थान में ग्रहों के अवस्थित न होने पर उसकी मृत्यु कथित होती है। जन्म लग्न की अपेक्षा यदि अष्टम स्थान ग्रह शून्य हो तो इस स्थान में जिस ग्रह की दृष्टि होगी उस ग्रह के धातु प्रकोपज रोग से जातक की मृत्यु होती है बहुत ग्रह द्वारा अष्टम स्थान अवलोकित होने से जो ग्रह अधिक बलवान् हो, उसकी धातु प्रकोपजरोग से मृत्यु होती है, अष्टमस्थान यदि ग्रहहीन हो, अथवा किसी ग्रह की दृष्टि न हो, तो जन्मलग्न द्रेष्काण की अपेक्षा द्वाविंश द्रेष्काणाधिपति की धातु प्रकोपजरोग से मृत्यु होती है।।१३१।।

अग्न्यादिना शवपरिणतिनिर्णयः

पापद्रेष्काणे दाहो द्वाविंशे शुभद्रेष्काणे क्लेदः ।
शोषो मिश्रद्रेष्काणे विष्ठान्तो व्याडवर्गे च ।।१३२।।

मृतशव का परिणाम कहा जाता है। जन्मलग्न द्रेष्काण की अपेक्षा

द्वाविंश द्रेष्काणाधिपति पापग्रह होने पर मृत (शव) अग्निदग्ध होता है। शुभग्रह होने पर मृत (शव) का क्लेद (मार्दन) होता है और जन्मलग्न द्रेष्काण की अपेक्षा द्वाविंश द्रेष्काण यदि पूर्वोक्त मिश्र संज्ञक हो तो मृतशरीर शुष्क होगा और व्याडद्रेष्करण होने से मृत शरीर शृगाला (कुक्कुरादि) द्वारा भक्षित होकर विष्ठा में परिणत होता है।।१३२।।

विबुधपितृतिरोनारकान्गुरुडुपसितावसृग्रवीज्ञयमौ ।
रिपुरन्ध्रत्र्यंशकपा नयन्ति चास्तारिनिधनस्थाः ।।

मृतक की देवलोकादि प्राप्ति कथित होती है। जिसके जन्मलग्न की अपेक्षा सातवें छठे वा आठवें स्थान में बृहस्पति अवस्थित हो, वह मनुष्य देवलोक में जाता है। चन्द्र और शुक्र जन्म के समय उक्त सब स्थानों में रहने से मृतव्यक्ति को पितृलोक की प्राप्ति होती है। मंगल और रवि सप्तमादि स्थान में अवस्थित होने से मृत मनुष्य को तिर्यक्योनि प्राप्त होती है एवं बुध और शनि जन्मलग्न के सातवें छठे वा आठवें स्थान में होने से मृतव्यक्ति नरक में गिरता है और रिपुत्र्यंशपति तथा रंध्रत्र्यंशपति अर्थात् जन्मलग्न द्रेष्काण की अपेक्षा षोडशद्रेष्काणपति और द्वाविंशद्रेष्काण पति इन दोनों ग्रहों में जो ग्रह बलवान् हो उसी ग्रह के निर्दिष्ट देवलोकादि को मृतव्यक्ति प्राप्त होता है।।१३३।।

सुविस्तरे ज्योतिषि यत्नतो मया,
समस्तकर्मव्यवहारदर्शिकाम् ।
श्री श्रीनिवासेन समाहृतामिमाम-
मत्सराः पश्यत शुद्धिदीपिकाम् ।।१३४।।

अब उपसहार कहा जाता है। श्री निवास कर्त्तृक अत्यंत विस्तृत ज्योतिष शास्त्र से यत्नपूर्वक समस्त व्यवहार कार्य का आदर्शरूप

'शुद्धिदीपिका' नामक यह ग्रन्थ संगृहीत हुआ है। द्वेषविहीन पण्डितगण! आप यह ग्रंथ देखिये।।१३४।। इति महिन्तापनीय सभा पण्डित श्री श्रीनिवासविरचितायां शुद्धिदीपिकायां मुरादाबाद निवासी कात्यायनगोत्रोत्पन्न मिश्रसुखानन्दसूरिसूनु पण्डित कन्हैयालालमिश्रकृत भाषाटीकायां यात्रानिर्णयो नामाष्ट-मोऽध्यायः ।।८।।

मयेयं निर्मिता टीका सर्वतत्त्वार्थबोधिनी ।
एतदाश्रयमासाद्य सुखं ज्ञास्यन्ति मानवाः ।।१।।
केषांचिदुपकारश्चेदनया क्रियते शुभम् ।
श्रमोस्माकं तदा भूयात्फलवानिति मे मतिः ।।२।।
कृतः कन्हैयालालेन भाषार्थः सुमनोहरः ।
साधूनां मनसः प्रीत्यै भूयाद्देवप्रसादतः ।।३।।
येनेदं मुद्रितं सम्यक्खेमराजेन सुन्दरम् ।
सर्वलोकहितार्थाय जीयात्स सुचिरं समाः ।।

इति श्रीशुद्धिदीपिका समाप्ता।

पुस्तकें मिलने के स्थान :–

१. खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
सातवीं खेतवाड़ी खम्वाटा लेन
बम्बई–४०० ००४

२. गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस,
व बुक डिपो,
अहिल्या बाई चौक, कल्याण,
(जि० ठाणे–महाराष्ट्र)

३. खेमराज श्रीकृष्णदास, चौक–वाराणसी (उ. प्र.)

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS